मध्य पहाड़ी भाषा (गढ़वाली कुमाँऊनी) का अनुशीलन और उसका हिन्दी से सम्बन्ध

डा. गुणानन्द जुयाल

MISRA

मध्य पहाड़ी भाषा (गढ़वाली कुमाऊँनी) का अनुँशीलन और उसका हिन्दी से सम्बन्ध

(शोध प्रबन्ध)

लेखक

डा० गुणानन्द जुयाल

एम. ए. पी. एच. डी.

—: प्रकाशक :—

नवयुगग्रन्थागार

सी ७४७ महानगर, लखनऊ

श्री रामस्वरूप आर्य,
प्रो० वर्द्धमान कालेज बिजनौर
को सस्नेह भेंट ।

२४ . ३ . ६७
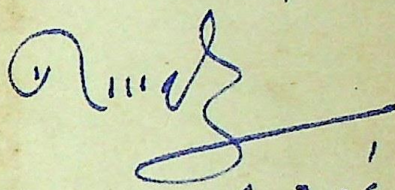
मध्य पहाड़ी भाषा [गढ़वाली कुमाउँनी] का अनुशीलन और उसका हिन्दी से सम्बन्ध

[आगरा विश्वविद्यालय द्वारा स्वीकृत शोध प्रबन्ध]

1954.
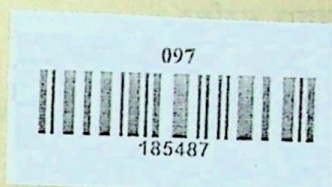
लेखक

डा० गुणानन्द जुयाल, एम० ए० पी० एच० डी०

अध्यक्ष हिन्दी विभाग

बरेली कालेज, बरेली
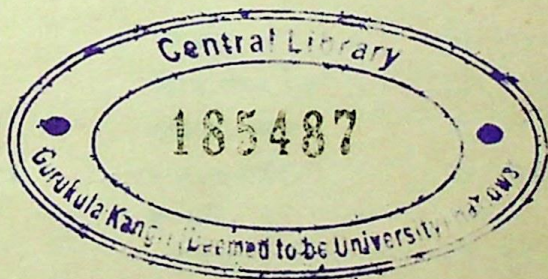
प्रकाशक

नवयुग ग्रन्थागार

सी ७४७ महानगर, लखनऊ

प्रकाशक
नवयुग ग्रन्थागार
७४७, सी० महानगर
लखनऊ

प्रथम बार
१९६७

मूल्य ८.००

मुद्रक
विद्या मुद्रणालय
१३७, ड्योढ़ी आगामीर
लखनऊ

उदाहृत पुस्तकें तथा उनके लिए संक्षिप्त अक्षर

	पुस्तक	रचियता	संकेत
१.	अमरकोष	--	अ० को
१अ०	अष्टाध्यायी	पाणिनि	अ० पा०
१ब०	एलिमेंट आफ़ दि साइंस आफ़ लैंगुयेज	डा० इ० ज० स० तारापोरवाला	ए० सा० लैं०
२	एवोल्यूशन आफ़ अवधी	डा० बाबूराम सक्सेना	बा० अ० भा०
३	ऐंसेन्ट जियोग्रफी आफ़ इंडिया	कनिंघम	ए०, जि० आ० इ०
४	ओरिजन ऐंड डेवलपमेन्ट आफ़ दि बंगाली लैंगुयेज	डा० सु० कु० चटर्जी	च० ब० ल०
५	कुमाऊँ का इतिहास	बद्रीदत्त पांडे	कु० इ०
६	कुमाउँनी भाषा-गीत	रामदत्त पंत	कु० भा० गी०
७	कुमारसंभव	कालिदास	कु० सं०
८	गढ़वाल का इतिहास	हरिकृष्ण रत्यूड़ी	ग० इ०
९	गढ़वाली कवितावली (संग्रह)	गढ़वाली प्रेस, देहरादून	ग० क०
१०	गढ़वाली पखाणा	शालिग्राम वैष्णव	ग० प०
११	गुजराती लैंगुयेज ऐंड लिट्रेचर	एन० वी० डिवाटिया	गु० लैं० लि
१२	गुमानी कवि विरचित काव्य-संग्रह	गुमानी पंत	गु० वि० का०
१३	चित्रावली	उसमान	चि० उ०
१४	दातुलै की धार	श्यामाचरण पंत	दा० श्या०
१५	ध्रुवस्वामिनी	जयशंकरप्रसाद	ध्रु० ज०
१६	पर्वतीय भाषा-प्रकाश	गंगादत्त उप्रेती	प० भा० प्र०
१७	पदमावत	जायसी	प०जा०
१८	पंजाबी-हिन्दी	दुलीचन्द	पं० हि० दु०
१९	पाइअ सद महण्णवो	हरिगोविन्ददास	पा० स म०
२०	पाली जातकावली (संग्रह)	आद्यादत्त ठाकुर	पा० जा०
२१	पृथ्वीराज-रासो	चंदबरदाई	पृ० रा०

२२	प्रहलाद नाटक	भवानीदत्त थपलियाल	प्र० ना० भ०
२३	भागवत पुराण		भा० पु०
२४	भारतीय प्राचीन लिपिमाला	गौ० ही० ओझा	भ० प्रा० लि०
२५	भोटप्रकाश	वि० शे० भट्टाचार्य	भो० प्र०
२६	मनुस्मृति		मनु०
२७	महाभारत । वनपर्व ।		महा० भा०
२८	मित्रविनोद	शिवदत्त सती	मि० वि०
२९	रघुवंश	कालिदास	र० का०
३०	राजतरंगिणी	कल्हण	रा० त० क०
३१	राजस्थानी भाषा और साहित्य	मोतीलाल मनेरिया	रा० भा० सा०
३२	लिंग्विस्टिक सर्वे आफ इण्डिया	सर चार्ज ग्रियर्सन	लि० स० इ०
	अ—वौल्यूम १ पार्ट २	लि० स० ई वौ० अ०	१ भा० २ या १/२
	आ— ८ २	,, ,,	८ ,, २ या ८/२
	इ— ८ २	,, ,,	९ ,, २ या ९/२
	ई— ९ ४	,, ,,	९ ,, ४ या ९/४
३३	विद्यापती की पदावली	रामवृक्ष शर्मा बेनीपुरी	वि० प०
३४	विल्सन फाइलोलाजीकल लेक्चर्स	आर० जी० भंडारकर	वि० फ० ले०
३५	शिवाबावनी	भूषण	शि० भू०
३६	संस्कृत इंगलिश डिक्शनेरी	आपटे	आ० सं० इ० डि०
३७	सदेई	तारदत्त गैरोला	स० ता०
३८	सिद्धराज	मैथिली शरण गुप्त	सि० मै०
३९	सिद्धान्त कौमुदी	भट्टोजी दीक्षित	सि० कौ०
४०	स्कन्द पुराण (केदारखंड)		स्क० के०
४१	हिन्दी भाषा और साहित्य	डा० श्यामसुन्दरदास	श्या०हि०भा०सा०
४२	हिन्दी भाषा का इतिहास	डा० धीरेन्द्र वर्मा	धी० हि०भा० इ०
४३	हिन्दी व्याकरण	कामताप्रसाद गुरू	का० हि० व्या०
४४	हिन्दी विश्वकोष	नगेन्द्रनाथ बसु	न०हि०वि० को०
४५	हिस्ट्री आफ़ औरंगजेब	यदुनाथ सरकार	हि०आ०औ० य०
४६	ब्रजभाषा व्याकरण	डा० धीरेन्द्र वर्मा	धी० ब्र० व्या०

नवीन ध्वनि-चिह्न जो देवनागरी में नहीं हैं

अऽ	दीर्घ अ	घऽर (गढ़वाली में)
अां	अ और अ के बीच की ध्वनि	दगांडां (कुमाउँनी में)
आऽ	प्लुत आ	लाऽल (अत्यन्त लाल)
इऽ	प्लुत ई	भलीऽ (अत्यन्त भली)
ए॑	ह्रस्व ए	एति (यहाँ)
एऽ	प्लुत ए	सफ़ेऽद (अत्यन्त सफ़ेद)
ऐं	ह्रस्व ऐ	हैं (से अपादान कमाउँनी)
ऐऽ	प्लुत ऐ	ऐंन मौका (ठीक अवसर पर)
औ	ह्रस्व ओ	उनरों (उनका), चलणो (चलना)
ओऽ	प्लुत ओ	भलोऽ नौनो (अत्यन्त भला लड़का)
ओं	ह्रस्व ओ	म्होतारि (माता)
क़	अलिजिह्वय क, केवल ल़ से पूर्व	क़ालो़ (काला)
ख़	अलिजिह्वय ख, केवल ल़ से पूर्व	उखाल़ (कै)
ग़	अलिजिह्वय ग केवल ल़ से पूर्व	ग़ाली़ (गाली)
न्ह	न की महाप्राणि ध्वनि	न्है गयो
म्ह	म की महाप्राण ध्वनि	म्होतारि
ल़	दन्तार्ग ल	क़ालो़
ल॰	मूर्द्धन्य ल	अकाल (पश्चिमी पहाड़ी बोलियों में)
ल्ह	ल की महाप्राण ध्वनि	ल्हास,
व़	द्वयोष्ठय व	भाव, वह
॒	स्वराघात का चिह्न	भितेर

शब्द संकेत

आधुनिक भारतीय आर्य भाषा	आ० भा० आ० भा०
कुमाउँनी	कु०
खड़ी बोली	ख० बो०
गढ़वाली	ग०
प्राकृत	प्रा०
प्राचीन भारतीय आर्य भाषा	प्रा० भा० आ० भा०
ब्रजभाषा	ब्र० भा०
राजस्थानी	राज०
मध्यकालीन भारतीय आर्य भाषा	म० भा० आ० भा०
संस्कृत	सं०

विषय-सूची

१--प्रस्तावना

(अ) नामकरण तथा बोलियाँ

पहाड़ी शब्द पहाड़ पर ई प्रत्यय लगाने से बना हुआ है। संस्कृत में इनि प्रत्यय जोड़कर जो सम्बन्ध सूचक[1] संज्ञायें बनती हैं उनका एक वचन कर्ता का रूप ईकारान्त होता है जैसे—धन-धनिन्-धनी। यद्यपि संस्कृत में यह प्रत्यय किसी देश के निवासी या उनकी भाषा के नामकरण के लिए काम में नहीं लाया जाता किन्तु हिन्दी में इसी के अनुकरण पर किसी देश विशेष के निवासी या भाषा के नामकरण के लिए 'ई' प्रत्यय जोड़ा जाता है जैसे, पंजाब से पंजाबी या पंजाब के निवासी तथा उनकी भाषा। यह भी सम्भव है कि अरबी और फारसी का ई प्रत्यय कालान्तर में हिन्दी[2] में भी ग्रहण कर लिया गया हो और उपर्युक्त भाषाओं के समान ही हिन्दी में भी निवासी और भाषा के सूचक-शब्द ई प्रत्यय लगाकर बनने आरम्भ हो गए हों। जैसे, अरब से अरबी, फारस से फारसी, उसी प्रकार हिन्द से हिन्दी या हिन्दवी और पहाड़ से पहाड़ी।

पहाड़ शब्द की व्युत्पत्ति पाषाण[3] से की जाती है। पाषाण–पाखाण या पाहाण पाहन या पाहाड़ अथवा पहाड़। संस्कृत में पाषाण का अर्थ पत्थर होता है हिन्दी में उससे दो तद्भव शब्द बने हैं–पाहन और पहाड़। पाहन शब्द मूल अर्थ को लिए हुए है। इसके विपरीत पहाड़ शब्द लक्षणा से पर्वत के अर्थ में प्रयुक्त होता है। हिन्दी की प्राचीनतम[4] पुस्तकों में भी पहाड़ शब्द पर्वत के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है किन्तु पहाड़ी शब्द का प्रयोग कहीं नहीं पाया जाता है। अंग्रेजी राज्य की स्थापना के पश्चात् ही इस शब्द का अनेक अर्थों में प्रयोग

---

१. तदस्याऽस्त्यास्मिन्निति मतुप। ५।२।९४। अत इनिठनी ५।२।११५ अ०पा०

२. का० हि० व्या० पृ० ४३३ और ४४१।

३. वि. फा. ले.—पृ० ८६।

४. मनो साम पाहार बग पंत, पंती—पृ० रा० 'पद्मावती' समय। कीन्हेसि मेरु खिखिंद पहारा—पद्मावत, जायसी ग्रन्थाबली पृ० १।

होने लगा। पहाड़ पर ई प्रत्यय जोड़कर पहाड़ी ऊनवाचक संज्ञा बनती है जो अंग्रेजी के हिल्स का रूपान्तर है जैसे, खसिया या जयँतिया की पहाड़ियाँ। इसी प्रकार आवागमन की सुविधा के कारण हिमालय के प्रत्येक भाग—काश्मीर से लेकर आसाम तक के निवासी तथा विन्ध्याचल पर्वत के निवासी, सिन्ध-गंगा-ब्रह्मपुत्र से सिंचित मैदानी भाग में जीविकोपार्जन के लिए आने लगे। अतः स्थान विशेष को याद रखने की कठिनाई से बचने के लिए सब के लिए मैदान में एक सामान्य शब्द पहाड़ी का प्रयोग होने लगा। पंजाब, उत्तर-प्रदेश, बिहार और बंगाल में हिमालय के दक्षिणी ढाल पर बसने वाले लोगों को तो पहाड़ी कहा ही जाता है, उनके अतिरिक्त विन्ध्य पर्वत पर रहने वाले लोगों को भी उत्तर-प्रदेश, बिहार और और बंगाल में पहाड़ी कहा जाता है। कभी कभी तिब्बतियों को जो जाड़े के दिनो में उत्तर-भारत के मैदानों के प्रमुख नगरों में यत्र तत्र दिखाई देते हैं पहाड़ी शब्द से सम्बोधित किया जाता है। किन्तु व्यापक रूप से यह शब्द हिमालय के दक्षिण ढाल पर रहने वालों के लिए ही प्रयुक्त होता है। कई दरिद्र पहाड़ी उत्तर-प्रदेश तथा पंजाब के पर्वत के समीप के बड़े नगर देहरादून, अम्बाला, मुरादाबाद, बरेली आदि में घरेलू नौकरों का कार्य करते हैं, अतएव कभी कभी अर्थापकर्ष के कारण पहाड़ी शब्द का अर्थ उपर्युक्त नगरों में नौकर भी हो जाता है। मैदान के पढ़े लिखे लोग भी जो भाषा-विज्ञान से अनभिज्ञ हैं जिस प्रकार हिमालय के सभी भागों के रहने वालों के लिए पहाड़ी शब्द का प्रयोग करते हैं। उसी प्रकार उनकी भाषा चाहे काश्मीरी हो या भूटानी सबके लिए पहाड़ी शब्द काम में लाते हैं।

भाषा-विज्ञान के अध्ययन में इस समानीकरण से काम नहीं चलता क्योंकि काश्मीर से आसाम तक के पर्वतीय भूभाग पर अनेकों भाषायें उपभाषायें तथा उनकी बोलियाँ और उपबोलियाँ बोली जाती हैं। पारिवारिक दृष्टि से भी इनमें बहुत भिन्नता है। इनमें से अधिकाँश भारोपीय परिवार की भाषायें हैं, किन्तु बीच बीच में ऐसी भी बोलियाँ हैं जिनका अभी तक वर्गीकरण नहीं हुआ है। साथ ही काश्मीर से नैपाल तक केवल सीमा पर ही नहीं देश के अन्तर्गत भी चीनी परिवार की बोलियाँ बोली जाती हैं। नेपाली भूटानी भाषायें समीपवर्तिनी होने पर भी पारिवारिक दृष्टि से एक दूसरी से सर्वथा भिन्न हैं।

भाषा-विज्ञान में इसीलिए पहाड़ी शब्द इतने व्यापक अर्थ में नहीं लिया जाता। आजकल भारतीय आर्यभाषा-परिवार की वे सब भाषायें तथा बोलियाँ जो हिमालय के दक्षिणी ढाल पर रहनेवाले लोग बोलते हैं पहाड़ी कहलाती हैं।

काश्मीरी[1] अपनी समीपवर्तिनी पहाड़ी बोलियों की अपेक्षा दरद बोलियों से अधिक समीप है इसीलिए उसे पहाड़ी भाषा के अंतर्गत नहीं लिया गया है । सिक्कम और भूटान की बोलियाँ चीनी परिवार से संबंधित हैं । इसलिए उन्हें भी पहाड़ी के अंतर्गत नहीं लिया जाता । पहाड़ी शब्द को इस संकुचित अर्थ में प्रयोग करनेवाले बेन्स[2] महोदय हैं । आजकल सभी भाषा विज्ञानी पहाड़ी शब्द का प्रयोग इसी संकुचित अर्थ में करते हैं जो व्यावहारिक अर्थ से सर्वथा भिन्न है । अतः काश्मीर की दक्षिण पूर्वी सीमा पर भद्रवाह से नेपाल के पूर्वी भाग तक बोली जानेवाली भारतीय आर्य-भाषा-परिवार से संबंधित सभी बोलियाँ आ जाती हैं । इन बोलियों को भी तीन भागों में विभक्त किया गया है । पूर्वी पहाड़ी, मध्य-पहाड़ी और पश्चिमी पहाड़ी । यह विभाजन कुछ सीमा तक भाषा वैज्ञानिक है और कुछ सीमा तक भौगोलिक । पश्चिम की ओर बढ़ने पर पहाड़ी बोलियों पर दरद भाषाओं का प्रभाव अधिक लक्षित होता है और पूर्व की ओर बढ़ने पर तिब्बत-बर्मी परिवार की भाषाओं का प्रभाव बढ़ता जाता है । भौगोलिक दृष्टि से पश्चिमी पहाड़ी की पूर्वतम बोली जौनसारी है । मध्य-पहाड़ी की गढ़वाली बोली और जौनसारी के बीच यमुना नदी प्रायः सीमा का काम करती है । इसी प्रकार मध्य-पहाड़ी की कुमाउँनी बोली और पूर्वी पहाड़ी की पालपा बोली के बीच काली नदी (शारदा) सीमा निर्धारित करती है । पहाड़ों पर अधिक जलवाली शीघ्रगामिनी नदियों पर नावें नहीं चल सकतीं । पुल बनाना भी सरल कार्य नहीं है अतएव यमुना और शारदा जैसी बड़ी नदियाँ यातायात में भयंकर पर्वतों और घने जंगलों से भी अधिक प्रतिबन्ध उपस्थित करती हैं ।

पश्चिमी पहाड़ी की भी कई बोलियाँ हैं । जौनसारी, सिरमौरी, बघाती, क्यूँथाली, कुलुई, मंड्याली, चम्याली आदि । इन बोलियों के नाम उन्हीं भूँभागों के अनुसार हैं जिसमें ये बोली जाती हैं । पूर्वी पहाड़ी जो नेपाल में बोली जाती है, खसकुरा, नैपाली या गोखाली भी कही जाती है । पूर्वी पहाड़ी की पालपा बोली को छोड़कर अन्य बोलियाँ नहीं हैं । खसुकरा समस्त नैपाल में बोली जानेवाली राजपूताने से आये हुए राजपूत विशेषताओं या उन से पहले आये हुये खस राजपूतों की भाषा है । नेपाल के पूर्वी भाग में खसकुरा से प्रभावित तिब्बत-बर्मी परिवार की बोलियाँ बोली जाती हैं । मध्य-पहाड़ी की दो मुख्य बोलियां[3] हैं । गढ़वाली और कुमाउँनी ।

---

१. लि. स. इ. वो० ८ भाग २ पृ० २४१ ।
२. लि. स. इ. वो० ९ भाग ४ पृ० १८ ।
३. देखिए मानचित्र आरम्भ में ।

कुमाउँनी कुमाऊँ की बोली है। राजनैतिक दृष्टि से कुमाऊँ आजकल एक कमिश्नरी है जिसके अंतर्गत गढ़वाल, अल्मोड़ा और नैनीताल के तीन जिले सम्मिलिति हैं। देशी राज्यों के विलीनीकरण के पश्चात् टिहरी गड़वाल भी कुमाऊँ कमिश्नरी का एक जिला बना लिया गया है। किन्तु भाषा की दृष्टि से गढ़वाल अर्थात गत ब्रिटिश-गढ़वाल और टिहरी गढ़वाल तोनों की भाषा गड़वाली है[1]। अल्मोड़ा तथा नैनीताल जिले का पहाड़ी भाग कुमाँऊ कहलाता है। और इस भूभाग की भाषा कुमाउँनी कहलाती है।

कुमाउँनी शब्द कुमाँऊ पर ई प्रत्यय लगकर बना है कुमाऊँ कूर्मांचल का तद्भव रूप है। कूर्माचलो-कुम्भाअओ-कुमाऊँ कुमाऊँ शब्द हिन्दी की प्राचीन[2] तथा मध्य-कालीन[3] रचनाओं में भी पाया जाता है। अल्मोड़ा जिले के दक्षिण पूर्व में काणा-देव नाम का पर्वत शिखर है जिसको ऊँचाई ७००० फीट है। कहा जाता है कि इस चोटी पर भगवान विष्णु, कूर्मावतार धारण करते समय तीन वर्ष तक तप करते रहे, अतएव इस चोटी के आप पास का देश कूर्माचल कहलाया। इस पर्वत की बनावट कूर्म के आकार की है। कदाचित् इसी कारण इस पर्वत का नाम कूर्माचल पड़ गया हो। कालान्तर में कूर्माचल या कुमाऊँ शब्द एक विस्तृत भूभाग के लिए प्रयुक्त होने लगा। पुराणों में हिमालय स्थित प्रदेशों का वर्णन इस प्रकार है।

खण्डा: पंच हिमालयस्य कथिता नेपालकूर्माचलौ।
केदारोऽथ जलंधरोऽथ रुचिर: काश्मीर संज्ञोऽन्तिम: ॥

इस श्लोक में आए हुए नेपाल, कूर्माचल और काश्मीर नामक प्रदेशों की स्थिति तो आज भी स्पष्ट है किन्तु केदार और जलन्धर नाम के प्रदेश हिमालय में कहीं भी नहीं हैं। गढ़वाल जिले में केदारनाथ का मन्दिर अवश्य है और इसी प्रकार पंजाब के मैदानी भाग में जलंधर नाम का नगर भी है। ऐसा प्रतीत होता है कि जलन्धर से यहाँ तात्पर्य पंजाब के उत्तर पूर्व का समस्त पहाड़ी प्रदेश है। इसी प्रकार केदार-खण्ड से तात्पर्य गढ़वाल से है। 'गढ़वाल' शब्द सोलहवीं शताब्दी[4] से पूर्व का नहीं है। कालिदास ने मेघदूत में कनखल तक तो अपना भौगोलिक ज्ञान अच्छा दिखाया

---

१. सन् १९६० से मध्य-पहाड़ी भाषी क्षेत्र के गढ़वाल (पौड़ी), गढ़वाल (चमोली गढ़वाल (टिहरी), गढ़वाल (उत्तरकाशी), अल्मोड़ा, पिथौरागढ़ और नैनीताल जिले कर दिए गए हैं।
२. पृथ्वीराज रासो—पद्मावती समय।
३. चित्रावली—उसमान, शिवाबावनी—भूषण।
४. गढ़वाल का इतिहास—अजयपाल—१५५७-१५७२।

है किन्तु उसके आगे हिमालय और अलकापुरी का वर्णन सामान्य रूप से कर दिया है। इससे यही ज्ञात हो सकता है कि वर्तमान गढ़वाल पर उस समय कुबेर का राज्य था। जिसकी राजधानी अलकापुरी थी जो कहीं वर्तमान अलकनन्दा नदी के किनारे स्थित थी। स्कन्दपुराण में केदारखण्ड[1] का जैसा वर्णन दिया गया है वह वर्तमान गढ़वाल से मिलता है। मुसलमान शासकों ने इस पर्वतीय भूभाग में बहुत कम प्रवेश किया उनके आक्रमण शिवालिक (सपादलक्ष) की पहाड़ियों तक ही सीमित रहे। इसी लिए उससे आगे के ऊँचे भूभाग को भी वे शिवालिक ही कहते रहे। मुसलमानों द्वारा रचित इतिहासों में औरंगजेब के समय तक भी गढ़वाल अपनी राजधानी श्रीनगर के नाम से ही प्रसिद्ध था। उस समय के इतिहासवेत्ता गढ़वाल का राजा न लिखकर सदैव श्रीनगर[2] का राजा लिखते रहे। इस भूभाग का नाम गढ़वाल, राजा अजयपाल १५५७-१५७२ के समय में पड़ा। अजयपाल से पूर्व गढ़वाल ५२ छोटे छोटे ठकुरी राजाओं के अधिकार में था जो लूटपाट के भय से पर्वत शिखरों पर गढ़ बना कर रहते थे। अजयपाल ने सब को जीत कर विस्तृत राज्य स्थापित किया तभी से इस भूभाग का नांम गढ़वाल पड़ा। किन्तु बाहरी लोग एक शताब्दी पश्चात् तक भी इसे गढ़वाल न कहकर शिवालिक या श्रीनगर का राज्य कहते रहे। क्योंकि श्रीनगर प्राचीन काल से ही प्रसिद्ध रहा है। पुराणों में इसे श्रीपुर कहा गया है। और यह सुबाहु की राजधानी कही गयी है। स्वर्गारोहण के समय पाण्डव[3] सुबाहु से मिले थे। अतः केदार खण्ड के पश्चात् बहुत समय तक इस भूभाग का नाम श्रीपुर या श्रीनगर रहा। गढ़वाल शब्द गढ़वाल से निकला है। अनेक गढ़ों के कारण ही इस देश का नाम गढ़वाल पड़ा। इसी घढ़वाल शब्द पर ई प्रत्यय जोड़कर गढ़वाली बना है।

आ—क्षेत्र

यह पहले ही बताया जा चुका है कि भद्रवाह से लेकर नैपाल तक बोली जानेवाली सभी भारतीय-आर्य-परिवार की बोलियाँ पहाड़ी कहलाती हैं। इस पहाड़ी भाषा-प्रान्त के उत्तर में तिब्वत है जिसमें चीनी परिवार की बोलियाँ बोली जाती हैं। पूर्व में सिक्कम और दारजिलिंग की पहाड़ियाँ हैं इनमें तिब्बत वर्मी परिवार कीं बोलियाँ बोली जाती हैं। पहाड़ी प्रदेश के दक्षिण में भारतीय आर्य भाषाओं का क्षेत्र है। दक्षिण में डोगरी से आरम्भ करके क्रमशः पंजाबी, खड़ी बोली, ब्रज, अवधी, भोजपुरी, बिहारी बोली जाती हैं। पश्चिम में भी डोगरी

---

१. स्कन्दपुराण-केदार खण्ड—४० वाँ अध्याय। श्लोक २७·२८-२९।
२. यदुनाथ सरकार। हिस्ट्री आफ़ औरंगजेब जिल्द २, पृ० २२५।
३. महाभारत। वनपर्व, अध्याय १४०, श्लोक २५-२६।

जो पंजाबी की ही एक बोली है और काश्मीर जो दरद भाषा वर्ग में से है बोली जाती हैं। काश्मीर की सीमा से लेकर यमुना तक पश्चिमी पहाड़ी भाषा भाषी प्रदेश है जिसके दक्षिण में पंजाबी और खड़ीबोली का प्रदेश है। पूर्वी पहाड़ी काली नदी (शारदा) से आरम्भ होकर नेपाल के पूर्वी भाग तक बोली जाती है। बीच बीच में तिब्बत-बर्मी परिवार की बोलियाँ भी हैं। नेपाल के दक्षिण में पीलीभीत जिले में ब्रज, लखीमपुर-खीरी, बहराइच, गोंडा और बस्ती जिलों में अवधी, गोरखपुर में भोजपुरिया और उत्तरी बिहार में मैथिली भाषाएँ बोली जाती हैं।

मध्य-पहाड़ी का क्षेत्र पूर्वी तथा पश्चिमी पहाड़ी भाषाओं के क्षेत्र से कम है। इसका विस्तार पश्चिम में यमुना से लेकर पूर्व में शारदा तक है। यमुना के उद्गम यमुनोत्तरी से ३० मील दक्षिण तक जहाँ यमुना यातायात में अधिक बाधक नहीं है। यमुना के पश्चिम में भी खाँई पर्गन्ना में भी मध्य पहाड़ी की गढ़वाली बोली ही बोली जाती है। यद्यपि खाँई की बोली पर जौनसारी का बहुत अधिक प्रभाव है। पूर्व में काली (शारदा) यमुना की अपेक्षा अधिक जलवाली नदी है। अतएव वह अपने उद्गम से ही यातायात में बाधक होने के कारण मध्य-पहाड़ी और पूर्वी पहाड़ी की स्वाभाविक मर्यादा है।

मध्य-पहाड़ी के दक्षिण में सहारनपुर और बिजनौर के जिलों में खड़ी बोली और मुरादाबाद, रामपुर, बरेली तथा पीलीभीत के जिलों में खड़ीबोली से प्रभावित ब्रजभाषा बोली जाती है। सहारनपुर से लेकर पीलीभीत तक के जिलों का उत्तरी भाग तराई भावर है। जिसमें घने जंगल हैं और सब ऋतुओं में वहाँ मलेरिया का प्रकोप रहता है। यह स्थान सदैव ही डाकुओं या राजनैतिक कारणों से भागे हुए लोगों को छिपने के लिए सुरक्षित स्थान है। इसीलिए खड़ी बोली और ब्रज, मध्य-पहाड़ी पर अपना प्रभाव डालते हुए भी उसका मूलोच्छेद न कर सकीं। उत्तर में तिब्बत में प्रवेश करने के लिए टिहरी-गढ़वाल में निलंगघाटा गढ़वाल में भाणा और नीति घाटा और अल्मोड़ा में किंगरी बिंगरी तथा उंटाघुरा के दर्रे हैं। ये सभी घाटे या दर्रे १५००० फीट से अधिक ऊँचे हैं इसीलिए तिब्बत से केवल वर्षा ऋतु में अत्यन्त सीमित मात्रा में व्यापार होता है और तिब्बत-बर्मी परिवार की भाषाओं का मध्य-पहाड़ी बोलियों पर कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ा। तिब्बत की सीमा पर गढ़वाल में गंगोत्तरी, यमुनोत्तरी, बद्रीनाथ के आसपास तथा अल्मोड़ा के जोहार पर्गन्ने के लोग दोभाषिये होते हैं। कुछों के पूर्वज तिब्बत के ही रहने वाले थे जो हिमालय की इस ओर आकर बस गये हैं। ये लोग मध्य-पहाड़ी ही नहीं, खड़ी बोली को भी समझ लेते हैं और बोल भी सकते हैं।

मध्य-पहाड़ी-भाषा-क्षेत्र के बीच में केवल अस्कोट के राजियों की भाषा ही ऐसी है जो अनार्य परिवार की है। राजी प्रायः जंगलों में झोपड़ी बनाकर रहते हैं। इनकी संख्या अब तीन चार सौ से अधिक नहीं है। ये काठ के बर्तन बनाकर जीविकोपार्जन करते हैं। शिकार में अभी भी तीर कमान से काम लेते हैं। छोटी छोटी नदियों में मछलियाँ पकड़कर अपनी जीविका चलाते हैं। इस वंश के लोग नेपाल में भी पाये जाते हैं। इनकी भाषा के सम्बन्ध में अभी कोई खोज नहीं हुई है किन्तु नेपाल के किरात तो तिब्बत-बर्मी परिवार की भाषा बोलते हैं। राजी अपने को राजकिरात भी कहते हैं। उनकी भाषा में कुछ शब्द तिब्बत-बर्मी परिवार के हैं, जैसा कि आगे चलकर बताया जायेगा किन्तु भाषा का रूप अस्पष्ट है। सम्भव है कि राजियों की भाषा भी तिब्बत-बर्मी परिवार की हो। यह भी सम्भव है कि यह मुण्डा परिवार की भाषा हो जिसमें तिब्बत-बर्मी शब्द आ गये हों।

देहरादून के उत्तर पूर्वी पहाड़ी भाग, गढ़वाल (टिहरी), गढ़वाल (उत्तरकाशी), गढ़वाल (चमोली), गढ़वाल (पौड़ी) में गढ़वाली तथा अल्मोड़ा, पिथौरागढ़ और नैनीताल जिले के पहाड़ी भाग में कुमाउँनी बोली जाती है। गढ़वाली बोली का क्षेत्र कुमाउँनी की अपेक्षा अधिक है और उसके बोलनेवालों की संख्या भी अधिक है। गढ़वाली पश्चिम में टिहरी के खाँई पर्गन्ने से लेकर गढ़वाल के बधांण पर्गन्ने तक अनेक उपबोलियों में जैसे—टिर्‌याली-श्रीनगरी-नागपुरिया-राठी वधाणी और सलौणी के रूप में बोली जाती है। इस भूभाग का क्षेत्रफल लगभग दस हजार वर्ग मील और जनसंख्या लगभग पन्द्रह लाख है। कुमाउँनी गढ़वाल की पूर्वी सीमा से लेकर काली (शारदा) नदी तक बोली जाती है। इस भूभाग का क्षेत्रफल सात हजार वर्गमील और बोलनेवालों की संख्या लगभग बारह लाख है। पहाड़ी प्रान्तों की जनसंख्या का ठीक-ठीक निश्चय करना कठिन है क्योंकि जाड़े की ऋतु में बहुत बड़ी संख्या में पहाड़ी लोग मैदान मे उतर आते हैं। गर्मियों में पुनः वापिस हो जाते हैं। गढ़वाली और कुमाउँनी के बीच कोई प्राकृतिक सीमा नहीं है, इसलिए कहीं गढ़वाली क्षेत्र के अन्तर्गत कुमाउँनी का प्रभाव है और कहीं कुमाउँनी क्षेत्र पर गढ़वाली का प्रभाव। गढ़वाल के उत्तरीपूर्वी भाग की बोली मंझ-कुमय्‌याँ कहलाती है। जबकि पाली पछाऊँ और सल्ट की कुमाउँनी बोली पर गढ़वाली की सलाणी उपबोली का बहुत अधिक प्रभाव है।

इ—ऐतिहासिक परिचय

पहाड़ी बोलियों में से नेपाली में तो कुछ साहित्य उपलब्ध है किन्तु वह भी अधिक प्राचीन नहीं है। मध्य-पहाड़ी में गत एक सौ वर्षों में कभी कभी साहित्यिक रचनाएँ होती रही हैं। पश्चिमी पहाड़ी में लोक गीतों को छोड़ कर कोई भी साहि-

त्यिक रचनाएँ नहीं हुई हैं। अतएव, भाषा-विज्ञान की दृष्टि से इन बोलियों का क्रमिक इतिहास प्रस्तुत करना कठिन ही नहीं असम्भव है। इन दुर्गम पर्वतीय प्रदेशों की शृंखलाबद्ध सामाजिक, धार्मिक या राजनैतिक परम्परा भी नहीं है जिसके आधार पर वर्तमान बोलियों पर क्रमागत सामाजिक राजनैतिक तथा धार्मिक परिवर्तनों का प्रभाव दिखाया जा सके। पहाड़ी भाषा क्षेत्र काश्मीर की पूर्वी दक्षिणी सीमा से लेकर सिक्कम की सीमा पर मिला हुआ है। अतएव इस १००० मील से भी अधिक लम्बे क्षेत्र में उपर्युक्त परिवर्तनों की एकरूपता ढूंढना भी व्यर्थ है। इस पर भी कुछ परिवर्तन ऐसे हुए हैं जिनका उल्लेख कहीं-कहीं भारतवर्ष के स्वयं विश्रंखल इतिहास में भी पाया जाता है और कहीं पौराणिक कथाओं के रूप में उपलब्ध होता है और जिनकी अभिव्यक्ति इस भूभाग के रहनेवाले भिन्न भिन्न वर्गों के रहन-सहन, आचार विचार तथा शारीरिक गठन आदि से हो जाती है। इन परिवर्तनों में से कुछ तो इतने व्यापक प्रभाव को लेकर जाए कि उन्होंने इस भूभाग की बोलियों में आमूल परिवर्तन कर दिया। तात्पर्य यह है कि सूक्ष्मता से अध्ययन करने पर जिस प्रकार वर्तमान सामाजिक तथा धार्मिक पद्धतियों में उसी प्रकार भाषा में भी प्रागैतिहासिकता की झलक दृष्टिगोचर होती है किन्तु उस पर वैज्ञानिक अनुशीलन की भित्ति खड़ा करना असम्भव है।

आर्यों की प्राचीनतम पुस्तकों से ज्ञात होता है कि पहाड़ी भाषा क्षेत्र, धूमिल अतीत में यक्ष, गंधर्व, किन्नर जातियों का निवास-स्थान था। अमरकोष[1] में एक श्लोक इन जातियों के संबंध में इस प्रकार है।

विद्याधरो ऽ प्सरसोयक्षरक्षो गंधर्वकिन्नराः ।
पिशाचांगुह्यकाः सिद्धाः भूतोऽमी देवयोनयः ॥

यह तो कहा नहीं जा सकता कि आर्यों की यह कोरी कल्पना थी। अप्सराओं को गंधर्वों की पत्नियाँ[2] बताया गया है। वेदों से लेकर पुराणों तक समस्त भारतीय वाङमय में गन्धर्वों और यक्षों से आर्यों का घनिष्ठ संबंध बताया गया है। आज भी मालन या मालिनी नदी जिसके किनारे कण्व ऋषि का आश्रम था गढ़वाल से निकलकर बिजनौर जिले में बहती है। नजीबाबाद के उत्तर पश्चिम में प्राचीन खण्डर इसकी याद दिलाते हैं। गढ़वाल और अल्मोड़ा जिलों में कई स्थानों पर नायक जाति के लोग बसते हैं जिनका मुख्य व्यवसाय नृत्य और संगीत है यद्यपि आर्थिक कठिनाइयों तथा सामाजिक दुर्व्यवस्थाओं ले कारण उनकी कन्यायें वेश्या वृति भी

१. अमरकोष—प्रथम कांड—११-श्लोक।
२. आ० सं० इ० डि० पृ० १२४।

धारण कर लेती थीं। इनकी उत्पत्ति के संबंध में नाना कल्पायें[1] की गई हैं किन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि ये लोग प्रागैतिहासिक गन्धर्वों के वंशज हैं जिनकी चारित्रिक दुर्बलता प्राचीन काल से ही मेनका-रंभा-उर्वशी आदि अप्सराओं के कार्यों से पुष्ट हो जाती है। इसी प्रकार यक्ष और रक्ष भी कोरी कल्पना नहीं है। कुबेर यक्षों का सम्राट था और उसकी राजधानी अलकापुरी अलकनंदा नदी के किनारे थी। यह नदी आज भी विष्णु प्रयाग से देवप्रयाग में भागीरथी के संगम तक अलकनंदा कहलाती है। गढ़वाल में कई स्थानों पर घंडियाल (घंटाकरण) यक्ष की पूजा होती है। कुबेर देवताओं का कोषाध्यक्ष बताया गया है। इसका कारण भी स्पष्ट है। कोलर की स्वर्ण-खानों का पता लगने से पूर्व उत्तर-भारत में स्वर्ण की आयात इसी प्रदेश से होती थी। बद्रीनाथ के समीप की प्राचीन जाति तगण जिसका उल्लेख पाण्डुकेश्वर के ताम्रपत्रों में भी है महाभारत में प्रसिद्ध है। उन्होंने अपने प्रतिनिधि द्वारा महाराजा युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ में पिपीलिका स्वर्ण[2] भेंट स्वरूप भेजा था। कुछ ही वर्ष पूर्व तक कर्ण प्रयाग, नन्द प्रयाग आदि स्थानों पर अलकनंदा के बालू को छानकर स्वर्ण तैयार किया जाता था, किन्तु अब इस कार्य को अनार्थिक समझकर बन्द कर दिया गया है। महाभारत काल तक तो आर्यों का दक्षिण देश से सम्बन्ध हो गया था किन्तु अत्यन्त प्राचीनकाल में आर्य जाति को सोना इसी भूभाग से प्राप्त होता था। इसी लिए इस भूभाग के राजा को कुबेर या धनपति कहा जाता था। आर्यों के इन जातियों से युद्ध[3] भी होते थे। ध्रुव के भाई उत्तम का यक्षों द्वारा मारे जाने पर ध्रुव और यक्षों के बीच घोर युद्ध हुआ था। ये लोग अनार्य थे, इसका समर्थन इस बात से हो जाता है कि कुबेर का भाई रावण था। गंगा के मैदान में आर्यों के जनपद थे किन्तु बिन्ध्य तथा हिमालय में तब तक आर्य प्रवेश नहीं कर पाये थे। जातकों में भी इसका उल्लेख है कि दक्षिण द्वीपों में भी यक्षों की बस्तियां[4] थीं।

पिशाचों के सम्बन्ध में सन्देह की कोई बात नहीं रह गई है। गुणाढ्य की वृहत्कथा (वड्डकहा) पैशाची प्राकृत में लिखी गई है। काश्मीर का पश्चिमोत्तर प्रदेश पिशाचों का देश था। उनकी भाषा पैशाची का पंजाबी और पश्चिमी तथा मध्य-पहाड़ी भाषा पर पर्याप्त प्रभाव पड़ा है।

---

१. कु. इ. पृ० ६४०।
२. लि० स० इ० ९।४ पृ० ३
३. भागवत पुराण
४. पाली जातकावली—बलाहस्स जातक।

गन्धर्व, यक्ष आदि जातियों के वंशज गढ़वाल तथा कुमाऊँ में नायक तथा डोम आदि हैं। जोखश, गुर्जर तथा राजपूतों की क्रमिक दासता के कारण आज इस अधोगति को पहुँच गए हैं। इन आक्रमणकारियों ने उनके सब अधिकार ही नहीं छीन लिए बल्कि उनको चाण्डालों की भाँति गावों से अलग रहने को बाध्य किया। आज भी उनकी बस्तियाँ गावों से अलग एक ओर को होती हैं। ये लोग भूमिहीन हैं और लोहार दर्जी आदि का व्यवसाय करके अपना जीवन निर्वाह करते हैं। इनके आचार-विचार, रहन-सहन, खस, राजपूत और ब्राह्मणों से जो बिट कहलाते हैं सर्वथा भिन्न हैं। ये गाय भैंस का मांस भी खा लेते हैं। स्त्रियों में पातिव्रत धर्म को अधिक महत्व नहीं दिया जाता। अस्वच्छता भी इनका प्रमुख लक्षण है। इनके भाषण का ढंग या लहजा भी विशेष प्रकार का होता है। इसीलिए श्री गंगादत्त उपरेती ने अपने पर्वतीय भाषा-प्रकाशक[1] में इनकी बोली का नमूना बिटों की बोली से भिन्न ही दिया है। गन्धर्व और यक्षों की भाषा के शब्द मध्य पहाड़ी हैं या नहीं, यह कहना कठिन है। सम्भव है कि अनेक देशज शब्द इन्हीं की भाषा के अवशेष हों जो अन्य किसी भारतीय आर्य भाषा में नहीं पाये जाते। जैसे गैणा (तारे) गिच्चो (मुख)।

उपर्युक्त जातियों के पश्चात् इस देश में किरात पुलिन्द तथा तगणों का होना पुराणों में बताया जाता है। तगणों का उल्लेख पहले हो चुका है। किरातों के वंशज अल्मोड़ा जिले के अस्कोट पर्गन्ने में रहते हैं। ये अपने को राजकिरात कहते हैं। इनकी बोली मध्य पहाड़ी से सर्वथा भिन्न है। यद्यपि कई कुमाउँनी शब्दों ने भी इनकी बोली में प्रवेश कर लिया है। किन्तु ये लोग प्रायः जंगलों में रहते हैं इसलिए इनकी भाषा में अधिक विकार उत्पन्न नहीं हुआ है। इनकी बोली के कुछ शब्द कुमाऊँ के इतिहास[2] में दिए गए हैं। किन्तु किसी विशेष दृष्टिकोण से न लिखे जाने के कारण वे भाषा के स्वरूप को समझने में सहायता नहीं पहुँचाते। कुछ शब्द ऐसे अवश्य हैं जो राजी-बोली, गढ़वाल के धुर उत्तर में बोली जाने वाली मार्छा बोली तथा अल्मोड़ा के धुर उत्तर की बोली (पुरानी जोहारी) में समान रूप से पाये जाते हैं। साथ ही वे शब्द तिब्बती भाषा में भी मिलते हैं।

---

१. प्र. भा. प्र. भूमिका।
२. कु. इ. पृ० ५२३।

म० प०[5]	रा०[1] बो०	मा०[2] बो०	पु० जो०[3] बो०	तिब्बती[4]
पाणी	ती	ती	ती	त्सि
आग	म्है	...	मैं	में
द्वी (दो)	नी	न्हीस	....	ग्निस (निस)
खाना	जा	जै	हुजै	जा
आदमी	मी	मी	मी	मी
लकड़ी	....	सींग	सींग	....

उपर्युक्त शब्दों की तालिका देखने से पता चलता है कि राजियों की भाषा या तो तिब्बत-बर्मी परिवार की है और किरातों ने तिब्बत से ही भारत में प्रवेश किया है। क्योंकि नैपाल के किरात आज भी तिब्बत बर्मी भाषा बोलते हैं, अथवा किरात भारतीय अनार्य जाति है जिस पर कालान्तर में तिब्बत-बर्मी प्रभाव बहुत अधिक मात्रा में पड़ गया है।

महाभारत तथा पुराणों में उत्तराखंड, जहाँ मध्य-पहाड़ी बोली जाती है किरात पुलिंद तथा तगणों का निवास स्थान[6] बताया गया है। किरातों की बोली के सम्बन्ध में विवेचन हो चुका है। पुलिंद और तगणों की भाषा का कोई अवशेष प्राप्त नहीं है। इतना ही निश्चित है कि किरातों पुलिंदों और तगणों का नाम साथ साथ आया है। ये जातियाँ अवश्य ही एक विशाल परिवार की शाखा रही होंगी।

उपर्युक्त जातियों के अतिरिक्त इस प्रदेश में बसने वाली एक प्राचीन जाति किन्नर भी है। जिसके सम्बन्ध में कुछ भी निश्चय के साथ नहीं कहा जा सकता है कि वह तिब्बत-बर्मी परिवार की ही एक जाति थी। यक्ष और गन्धर्व के साथ प्रायः किन्नर शब्द भी आया है। किन्तु किन्नरों को यक्ष गन्धर्वों से भिन्न बताया गया है। इनको अश्वमुख कहते हैं। किन्नर (किम्+नर) शब्द इस बात का द्योतक है कि आर्य लोग इनके सम्पर्क में आकर यह निश्चित नहीं

---

१. कु. इ. पृ० ५२०।
२. प्र. भा. प्र. पृ० ८५।
३. कु. भा. इ. पृ० ६३५।
४. मों. प्र. वोकेबुलरी।
५. म. प.—मध्य-पहाड़ी। रा. बो.—राजी बोली। मा. बो—मार्दा बोली। पु. जो. बो.—पुरानी जोहारी बोली।
६. ग. इ. पृ० २५४। कुमार संभव १।६। स्कंद पुराण- केदार खण्ड अध्याय २०६ श्लोक ४।

कर पाते थे कि पुरुष है या स्त्री क्योंकि मंगोल परिवार के लोगों के मुख पर के बाल (भौंह, मूछें, आदि) कम होते हैं और तिब्बत के लोगों के स्त्री पुरुष के पहनाव में अन्तर भी अधिक नहीं होता है, अतएव गढ़वाल अल्मोड़ा तथा नैपाल की सीमा पर बसने वाले मंगोल-वंशजों को ही किन्नर कहा जाता होगा। महाभारत तथा पुराणों में जितना अधिक उल्लेख यक्ष और गन्धर्वों का है उतना किन्नरों का नहीं है। इसका कारण यही है कि ये लोग पर्वतीय प्रदेश के धुर उत्तर, तिब्बत की सीमा पर रहते थे अतएव आर्य लोगों को इनके सम्पर्क में आने का बहुत कम अवसर प्राप्त होता था। कालिदास[1] ने भी रघु की दिग्विजय के प्रसंग में किन्नरों का उल्लेख किया है किन्तु कालिदास के समय तक इस भूभाग पर खसों का अधिकार हो गया था। कालिदास ने भी महाभारत आदि पुस्तकों के आधार पर इस प्रदेश में सिद्ध, विद्याधर और किन्नरों के रहने का उल्लेख किया है। नैपाल में तो मंगोल जाति के लोग पूर्ण रूप से अपना प्रभुत्व जमा बैठे थे। अतएव वहाँ की साधारण जनता में मंगोल रक्त बहुत अधिक मात्रा में है। नैपाल में खस और आर्य भाषा का प्रवेश बहुत पीछे हुआ। आज भी खसकुरा या नैपाली केवल उच्च वर्ग के लोगों की भाषा है। जो वहाँ की राजकीय भाषा है और पश्चिमी नैपाल की बोलचाल की भाषा, किन्तु शेष प्रदेश में तिब्बत-बर्मी परिवार की बोलियाँ बोली जाती हैं। जिनमें से कुछ पर खसकुरा का बहुत प्रभाव पड़ गया है और उन्होंने शब्द ही नहीं किन्तु खसकुरा की रूपात्मकता[2] को भी ग्रहण कर लिया है। गढ़वाल के नीति, माणा तथा नेलंग घाटों के समीप बसने वाले मार्छा और कुमाऊँ के दारमा और मिल्लम घाटों के पास बसने वाले शौक मंगोल परिवार के ही हैं। वे तिब्बती भाषा के साथ साथ गढ़वाली कुमाउँनी भी जानते हैं। तिब्बती को, गढ़वाल और कुमाऊँ के रहने वाले, हुँड़ियाँ बोली कहते हैं। इन लोगों की बोलियाँ गढ़वाली और कुमाउँनी होते हुए भी किसी किसी में बहुत अधिक तिब्बती भाषा के शब्द आ गए हैं। गढ़वाल के मार्छों की भाषा तिब्बती से बहुत अधिक प्रभावित है। इसके विपरीत जोहार के शौकों की भाषा कुमाउँनी से अधिक भिन्न नहीं है। यहाँ मार्छा बोली और वर्तमान जोहारी बोली के उदाहरण[3] दिए जाते हैं।

माछी—पेला जमाना काल् पूर्व पछिन काल् न्हीस भड़त मुलाकात ह्वँज थै। बड़ा हिज् तिन पुर्व दिशा त कोणा पर हिज् दोसरो पछिन तिसा त हुंकनहिज्।

---

१. रघुवंश, ४।७८।
२. लि. स. ह ९।४ पृ० १९।
३. अ. भा. प्रा. पृ० ८५, २८।

जोहरी—क्वै दिनन मा द्वी बड़ा हामदार भड़ अथिया। एक पूर्व का क्वाणा मां और दोहरो पछिम का क्वाणा मां रौंथी।

सारांश यह है कि मध्य-पहाड़ी पर तिब्बत बर्मी भाषा का प्रभाव नहीं है। केवल सीमा तक ही उसका प्रभाव रहा। मार्छा और पुरानी जोहारी बोलियों पर ही उसका कुछ प्रभाव है। मध्य-पहाड़ी में न तो तिब्बती ही शब्द हैं और न ध्वनियाँ ही।

मध्य-पहाड़ी भाषा प्रदेश पर सबसे बड़ा आक्रमण खस जाति का हुआ। इस प्रदेश में डोमो को छोड़कर बिटों (सवर्णों) में दो तिहाई से भी अधिक खस लोग हैं। पहले इनके विवाह सम्बन्ध मैदान से आए हुए राजपूतों या यात्रियों से नहीं होते थे किन्तु अब धीरे धीरे भेद भाव दूर होता जा रहा है। खस लोग सब अपने को खस-राजपूत या केवल राजपूत कहने लगे हैं। खसों के आचार-विचार रहन - सहन शुद्ध राजपूतों या क्षत्रियों से भिन्न हैं। मनु[1] ने भी खस जाति को वृषलत्व प्राप्त क्षत्रिय माना है।

खस राजपूत तथा अन्य राजपूतों में कुछ शारीरिक बनावट की दृष्टि से भेद है। खस राजपूत अधिक ऊँचे कद के नहीं होते किन्तु अन्य राजपूतों से शारीरिक गठन में अधिक दृढ़ होते हैं साथ ही अधिक परिश्रमी और उद्योगशील भी होते हैं। पहाड़ी चट्टानों को तोड़कर हरे भरे खेतों में परिणत कर देना इन्हीं का काम है। यह ठीक है कि मैदान से प्रवेश करनेवाले आर्य, ब्राह्मण और क्षत्रियों ने इस पराक्रमी जाति को अपने अधीन कर लिया किन्तु इसका कारण यही है कि मैदान से आने वाले ब्राह्मण-क्षत्रिय अधिक संस्कृत और नये अस्त्र शस्त्रों से अधिक सुसज्जित थे।

खस लोग इस प्रदेश में कब आए और किस दिशा से आए यह प्रश्न भी विवदास्पद रहा है। यद्यपि यह प्रश्न ऐतिहासिक है और इसका भाषा-विज्ञान से सीधा सम्बन्ध नहीं है किन्तु बिना इस प्रश्न पर कुछ विचार किए हुए मध्य-पहाड़ी बोलियों की कई प्रवृत्तियों के लिए जो अन्य भारतीय आर्य भाषाओं में नहीं हैं कोई कारण ज्ञात नहीं होता। साथ ही यह प्रवृत्तियाँ उन सभी भूभागों की बोलियों में पाई जाती हैं जहाँ खस जाति के लोग बसे हुए हैं।

खस जाति के सम्बन्ध में नाना विचार व्यक्त किए गए हैं। इस जाति का उल्लेख महाभारत[2] और पुराणों[3] में कई स्थानों में हुआ है। मध्यकालीन हिन्दी

---

१. मनुस्मृति १०.—४३, ४४।
२. महाभारत—द्रोणपर्व—अध्याय १२१ श्लोक ४३।
३. पुराण—भागवत—स्कंध २—अध्याय ४—श्लोक १८

साहित्य[१] में भी खस जाति का उल्लेख है। कुछ लोगों का विचार है कि यक्ष शब्द ही कालान्तर में खस शब्द में परिणत हो गया है किन्तु वैदिक या संस्कृत का 'य' प्राकृत या वर्तमान आर्य भाषाओं में 'ज' में परिवर्तित होता है न कि 'ख' में। इसी प्रकार 'क्ष' का ख होता है न कि 'स' या 'श'। प्रमुख बौद्ध-धर्म-ग्रन्थों के आधार पर निर्मित पाली शब्द कोष[२] में खस या खश शब्द नहीं है। यज्ञ शब्द का पाली रूप यक्ख है। संस्कृत शब्दकोषों[३] में यक्ष तथा खस शब्द अलग-अलग दिए हुए हैं। कहीं भी उन्हें पर्यायवाची नहीं माना गया है। प्राकृत शब्दकोषों[४] में यक्ष का जक्ख हो जाता है। बौद्ध-धर्म की पुस्तकों में खस शब्द के न आने का कारण यह हो सकता है कि तब तक खस जाति ने या तो भारत में प्रवेश ही नहीं किया था या मध्य और पूर्वी भारत के लोगों से उनका परिचय नहीं हो पाया था जहां बौद्ध धर्म-ग्रंथों का निर्माण हुआ। संस्कृत ग्रंथों में यक्ष शब्द जाति के अर्थ में अलकापुरी निवासी कुबेर के सेवकों के लिए ही प्रयुक्त हुआ है। मध्य-पहाड़ी-भाषा-प्रदेश में यक्ष का तद्भव रूप जगस या जगश है। जिसका अर्थ भीमकाय प्रेत होता है।

खस शब्द केवल जाति के अर्थ में प्रयुक्त होता है। यह अलकापुरी के रहनेवालों के लिए नहीं किन्तु समस्त पर्वतीय प्रान्त (नैपाल से लेकर काश्मीर तक) की एक जाति विशेष का द्योतक है। यह भी संभव नहीं है कि अलकापुरी के यक्ष ही कालान्तर में समस्त पर्वतीय प्रदेश में फैल गए हों और यक्ष के स्थान पर खस कहलाए गए हों, क्योंकि खस और दरद शब्द प्रायः एक साथ आए हैं। अतएव यह भी स्पष्ट है कि खसों का संबंध भारत की सीमा पर या उससे बाहर रहनेवाले दरदों से ही अधिक है। श्री ग्रियर्सन[५] ने भी उसका भारत में प्रवेष उत्तर पश्चिम से ही बताया है।

श्री हरिकृष्ण रत्युड़ी[६], गढ़वाल के आदिम निवासियों पर विचार करते हुए इस तथ्य पर पहुंचे हैं कि खस जाति असम के खसिया पहाड़ से आई है किन्तु मेजर गुर्डन[७] का विचार है कि खासी जाति, खस जाति से सर्वथा भिन्न है। नैपाल और

---

१. रामचरितमानस–उत्तरकांड। उसमान—चित्रावली खंड पृ० ४१-१८ दोहा।
२. पाली इंगलिश डिक्शनरी।
३. संस्कृत पाली डिक्शनरी।
४. पा. स. म. पृ० ४२९।
५. लि. स. इ. वा० ९ भाग ४ पृ० २।
६. ग. इ. पृ० २६७।
७. दि खासीज बाइ मेजर गुर्डन (कु. इ. पृ० ५४२)

असम के बीच के प्रदेश सिक्कम और भूटान से खस जाति का कोई संबंध नहीं है। यदि खस जाति, असम से पश्चिम की ओर बढ़ती और सारे हिमालय को घेर लेती तो बीच के प्रदेशों में अपना चिह्न किसी न किसी रूप में अवश्य छोड़ती। नैपाल में खस प्रभाव अधिक नहीं रहा यद्यपि उन लोगों ने भी वहां कुछ काल तक पश्चिमी भाग पर राज्य किया। मैदान से आए हुए राजपूत तथा खसों की मिश्रित भाषा ही खसकुरा कहलती है। किन्तु नैपाल के उत्तर-पूर्व की साधारण जनता तिब्बत-बर्मी परिवार की ही बोलियाँ बोलती है जिस पर खसकुरा का प्रभाव पड़ता जाता है। इसके विपरीत मध्य-पहाड़ी भाषा-प्रदेश से जितना ही उत्तर पश्चिम की ओर बढ़ा जाय उतना ही खस प्रभाव अधिक लक्षित होता है। अतः खस लोगों का संबंध असम की खासी जाति से बताना कोरी कल्पना है।

मध्य-पहाड़ी-भाषा-प्रदेश के दक्षिण या दक्षिण-पश्चिम में सहस्त्रों वर्षों से आर्य जाति बसी हुई है। उनमें भी कभी कोई खस जाति नहीं रही जो मैदान से जाकर पहाड़ पर बसी हो जैसा कि आगे चलकर नवीं दसवीं शताब्दी में मैदान के राजपूत या क्षत्रीय राजाओं ने किया। अतः स्पष्ट है कि गढ़वाल कुमाऊँ में खस जाति काश्मीर तथा वर्तमान हिमांचल प्रदेश होती हुई आई।

इस जाति के आदिम स्थान के संबंध में भी मतभेद है। क्योंकि खस खश या कश शब्द पश्चिम में कैसिप्यन सागर से लेकर पूर्व में नैपाल की खसकुरा से जुड़ा हुआ है। बीच में यह शब्द[1] कई स्थानों, नदियों तथा से भी संबंधित है। खस जाति के संबंध में पुराणों ने भ्रम फैलाया है। कई पुराण, जैसे हरिवंश और मार्कंडेय, बहुत पीछे के बने हुए हैं। उनके निर्माण काल तक खस नेपाल तक पहुँच

---

१ अ. काश्मीर को काश्मीर भाषा में कशीर कहा जाता है जो खशीर से निकला हुआ है क्योंकि दरद भाषाओं में अल्पप्राणत्व और अघोषत्व की प्रवृत्ति है।

आ. खेआत अफगानिस्तान की नदी।

इ. खसु—एक ज ि जो काश्मीर के दक्षिण में झेल और चुनाब के बीच में रहती है।

ई. काश्मीरी में खस का मतलब पहाड़ होता है जो खश का बिगड़ा हुआ रूप मालूम होता है।

उ. खैस्यांल घाटी जो खशालम का बिगड़ा हुआ रूप है, काश्मीर के दक्षिण पूर्व में है।

ऊ. खसिया या खस गढ़वाल कुमाऊँ की एक जाति।

ए. खसकुरा नेपाली भाषा।

गए थे। हरिवंश[१] में खसों का अयोध्या के राजा सगर द्वारा पराजित होना दिखाया गया है। मार्कंडेय[२] पुराण में उनका निवास स्थान तिब्बत और नेपाल के बीच बताया गया है। किन्तु भरत[३] मुनि के नाट्य शास्त्र में खसों की भाषा बाह्लीक मानी गई है। महाभारत में उनकी गिनती प्रायः दरदों के साथ की जाती है। आज भी जहाँ खस जाति बसी हुई है वहाँ की भाषा की कुछ प्रवृत्तियाँ पाई जाती हैं। अतः इस जाति का आदि स्थान कैसिप्यन सागर से लेकर कश्मीर तक के प्रदेश के बीच में रहा होगा।

यह जाति गढ़वाल कुमाऊँ में कब आई, इतिहास के अभाव में इसका उत्तर देना कठिन है। इतना निश्चित है कि इस प्रदेश में राजपूतों के प्रवेश से पूर्व खसों का राज्य था। यह भी स्पष्ट है कि खस भी आर्यों की एक शाखा है जो आर्यों के भारत में प्रवेश करने के पूर्व ही उनसे अलग हो गई थी। खसो के कई आचार-विचार[४] भारतीय आर्यों के बहुत अधिक सम्पर्क में आने पर भी सर्वथा भिन्न हैं। ये आचार-विचार हिन्दू-मिताक्षरी-न्याय के प्रतिकूल हैं। खस-

---

१. हरिवंश पुराण—लि. स. इ. पृ०।४।९।१४।
२. मार्कंडेय पुराण–अध्याय ५७ श्लोक ५६।
३. भरत मुनि का नाट्य-शास्त्र—अध्याय १७—श्लोक ५२।
४. कु० इ० अ. घरजवाँई—किसी व्यक्ति को अपने घर पर अपनी लड़की के लिए पति रख लेना। किन्तु सम्पति पर लड़की का ही अधिकार होना।
 आ. असल और कमसल सन्तान का सम्पति में बराबर भाग।
 इ. झँटेला—पुर्नविवाह में स्त्री के पहले पति से सन्तान का नये पति के सम्पति में पूरा हक होता है।
 ई. सम्पति का बटवारा पुत्रों की संख्या के अनुसार न होकर स्त्रियों की संख्या के अनुसार करना।
 उ. टेकुवा—स्त्री विधवा होने पर अपने घर ही पर अपने लिए पुरुष रख ले और सन्तान पूर्व पति के नाम से चले।
 ऊ. गोत्र का विशेष ध्यान न रखना।
 ए. रुपया देकर स्त्री खरीदना और विवाह के समय पुरुष का विवाह में सम्मिलित होना आवश्यक नहीं है।
 ऐ. यज्ञोपवीत धारण करना आवश्यक नहीं है। आज कल क्षत्रियों और राजपूतों की देखादेखी जनेऊ का रिवाज बढ़ता जा रहा है,

प्राकृत, दरद प्राकृत (पैशाची) के समान ही ईरानी और प्राचीन भारतीय आर्य भाषाओं के बीच की भाषा रही होगी, जिसमें कालान्तर में भारतीय आर्य-भाषाओं के प्रभाव से आमूल परिवर्तन हो गया।

दरद भाषाओं की कुछ विशेषतायें[1] जो मध्य पहाड़ी में पाई जाती हैं :—

१—घोष महाप्राण के स्थान पर घोष-अल्पप्राण ध्वनि। यद्यपि यह प्रवृत्ति दरद भाषाओं के समान व्यापक नहीं है। यह परिवर्तन केवल शब्द के मध्य और अन्त में होता है।

हिन्दी	दूध,	बाँधना,	बाध,	बोझ,	बाढ़,	कभी
म० प०	दूँद,	बाँदणों,	बाग,	बोजो,	बाड़,	कबी, कबै

२—अघोष महाप्राण के स्थान पर अघोष-अल्पप्राण-ध्वनि का होना।

हिन्दी	सिखाना,	हाथ,	साफसुथरा
म० प०	सिकाणो,	हात,	साफसुतरो।

३—घोष का अघोष हो जाना। यथा, त्रिवेणी-त्रिपेणी, तबला-तपला, कागज-कागच, मदद-मदत, झंडी-झंटी (कुमाउँनी), चबाणों-चपाणों।

४—र ध्वनि का बीच में आने पर कभी कभी लोप।

मारना-मन्नो, करना-कन्नो।

५—कभी काश्मीरी की भाँति र का परवर्ती व्यंजन से संयोग होने पर लोप न होकर विपर्यय हो जाना।

कर्ण-कंदूड़ (गढ़वाली),

गर्दभ गदुड़ो (गढ़वाली)

६—ल के स्थान पर कभी व हो जाना।

बाल-वाव, बादल-बादव, गलना-गवणो (कुमाउँनी)

७—कश्मीरी में अन्तिम स्वर या तो अर्द्ध हो जाता है या प्रायः लुप्त हो जाता है। यह प्रवृत्ति कुमाउँनी की खसपरजिया बोली में बहुत अधिक है।

चेला – च्याल् बोझा – ब्वाज्

इन ध्वनिमूलक प्रवृतियों के अतिरिक्त कुछ शब्द ऐसे हैं जो वर्तमान भारतीय आर्य भाषाओं में नहीं पाये जाते या प्रयोग में नहीं आते किन्तु पहाड़ी और दरद भाषाओं में उनका प्रयोग समान रूप से बहुत अधिक होता है।

निम्नांकित शब्द गढ़वाली कुमाउँनी के अतिरिक्त कई अन्य पश्चिमी पहाड़ी

१. लि. स. इ. वो० ८ भाग २ पृ० १४९।

बोलियों में भी पाये जाते हैं। गढ़वाली-कुमाउँनी तथा दरद भाषाओं के रूप दिये जाते हैं।

हि०	ग०	कु०	काश्मीरी	शिणा	दोसिरानी	रम्बानी	कोहिस्तानी
पैर	खुटो	खुट	कोर	पा	कुर	कुर	कुर
दास	कैमी	कैमि	—	—	कामौ	काम	—
चाँद	जून	जून	जुन	यून	—	—	याखुन
माँ	बोई	हजा	योज	अजे	ई	अम्मा	यायि
बाल	झंकरा	झंकारा	—	जकुर	—	—	—
मेंढ़ा	खाडु	खाडु	काट	करेलो	—	—	—
हूं	छऊं	छुँ	छुस्	हनुस्	छिस्	छुस्	सु

इसके अतिरिक्त मध्य पहाड़ी और दरद भाषाओं में रूपात्मक साम्य भी है जो हिन्दी में नहीं पाया जाता। जिस प्रकार गढ़वाली में निश्चयात्मक सर्वनाम के पुलिंग और स्त्रीलिंग रूप अलग अलग होते हैं, इसी प्रकार यह बात दरद भाषाओं—काश्मीरी और रम्बानी में भी पाई जाती हैं।

	पु०	स्त्री०	पु०	स्त्री०
गढ़वाली	यो	या	वो, स्यो	वां, स्या
काश्मीरी[1]	यिह	यिह	हुह, सुह	होह
रम्बानी[2]	यिह, यु	एई	ओ	उसेर

जिस प्रकार गढ़वाली और कुमाउँनी में निश्चयात्मक सर्वनाम (दूर) के दृष्टिगत और अदृष्टिगत दो भेद होते हैं ऐसे ही काश्मीरी, रम्बानी, गारबीकोहिस्तानी के भी दो भेद होते हैं।

	समीप या दृष्टिगत	बहुतदूर या अदृष्टिगत
कुमाउँनी	तौ	बो
गढ़वाली	स्यो	वो
काश्मीरी[3]	हुह	सुह
रम्बानी[4]	वो	सु
गारवी[5] कोहिस्तानी	ऐ	ऐआँ

---

१. लि. स. इ. वौ० ८ भाग २ पृष्ट २८०
२. " " ४६६
३. " " २८०
४. " " ४६६
५. " " ५०८

यहाँ तक तो मध्य-पहाड़ी में अनार्य तथा दरद भाषाओं का प्रभाव दिखाया गया है। अब आर्य-भाषा जैसे राजस्थानी, अवधी आदि का प्रभाव भी देखना चाहिए जिनके बोलनेवाले गढ़वाल कुमाऊँ में जाकर बस गए।

राजपूतों का प्रवेश इस भूभाग में विक्रम की दसवीं शताब्दी से आरम्भ हुआ किन्तु कई आर्य क्षत्रिय राजाओं ने अपने राज्य खसों के आने से भी पूर्व स्थापित कर लिए थे। कुछों ने खसों के समयय में भी पर्वतों में प्रवेश किया। निषध देश के राजकुमार नल का विवाह विदर्भ की राजकुमारी दमयन्ती से होना इस बात का प्रमाण है। निषध[1] देश की राजधानी अलका थी और वह वर्तमान कुमाऊँ का एक भाग था। यह तो सम्भव नहीं कि कोई आर्य सम्राट अपनी कन्या का विवाह किसी अनार्य राजकुमार खस से करता। नल, पुष्कर आदि नाम भी आर्यों के ही हैं। चाहे यह कथा कल्पित ही हो किन्तु नैषध-चरित्र के रचयिता श्री हर्ष जिनका समय बारहवीं शताब्दी का पूर्वार्द्ध है आर्य राजकुमारी की विवाह की कल्पना वृषलत्व प्राप्त खस राजकुमार से कभी न करते यदि उस समय तक गढ़वाल कुमाऊँ में क्षत्रिय राजाओं के राज्य स्थापित न हो गए होते।

क्षत्रिय शब्द सदैव वर्ण विशेष के अर्थ में प्रयुक्त होता रहा है। क्षतात्किल त्रायत इतिक्षत्रः। यह आवश्यक नहीं था कि एक क्षत्रिय, राजा या राजवंश का ही हो। कभी कभी राजन्य शब्द भी क्षत्रिय का पर्यायवाची हो जाता है, किन्तु ऐसे स्थल पर राजन्य का अर्थ भी वर्ण विशेष से ही होता है। इसके विपरीत राजपूत शब्द का अभिधेयार्थ ही राजा की सन्तान है और लक्षणा से उसका अर्थ राजवंश का व्यक्ति हो जाता है। पांचवी छठी शताब्दी के पूर्व राजपुत्र या राजपूत शब्द, क्षत्रिय वर्णवालों के लिए प्रयोग में नहीं लाया जाता था। अब हूण आभीर और गुर्जरों के काफिले पर काफिले भारत में प्रवेश करने लगे और पश्चिमी राजपूताना तथा गुजरात में अपने राज्य स्थापित करने लगे और हिन्दू धर्म में प्रविष्ट होने लगे, तो वर्ण व्यवस्था को रूढ़िगत मानने वाले ब्राह्मण इन लोगों को क्षत्रिय कहने के लिए उद्यत नहीं थे। अतएव इनके लिए राजपुत्र या राजपूत शब्द काम में लाया गया जो जो कालान्तर में क्षत्रिय का पर्यायवाची हो गया। पूर्वी प्रान्तों में जहाँ राजपूतों का प्रभाव अधिक नहीं बढ़ा क्षत्रिय शब्द को राजपूत शब्द से अधिक गौरव दिया जाता है और इसका प्रयोग भी अधिक होता है। क्षत्रिय शब्द आज भी अधिक महत्व लिए हुए है और द्वितीय वर्ण के लिए प्रयुक्त होता है। राजपूत शब्द विशेष महत्व को नहीं लिए हुए है। गढ़वाल कुमाऊँ

---

१. संस्कृत इंगलिश डिक्शनरी पृ० ११९४।

में खस लोग भी अपने को राजपूत कहने लगे हैं किन्तु अपने को क्षत्रिय कभी नहीं बताते।

खस राजा पर्वतों के शिखरों पर गढ़ बना कर रहते थे। इनके साथ साथ क्षत्रिय राजा भी जो बौद्धिक और सांस्कृतिक दृष्टि से खसों से बहुत आगे बढ़े हुए थे अपने राज्य स्थापित कर लिया करते थे। और कभी कई खस राजाओं को अपने अधीन कर चक्रवर्ति सम्राट बन जाते थे। इन क्षत्रिय राजाओं में कत्यूरी विशेष उल्लेखनीय हैं। इनके ताम्रपत्र और शिलालेख भी उपलब्ध हैं। चार ताम्र-पात्र गढ़वाल जिले के पाण्डुकेश्वर में स्थान में जो बद्रीनाथ से ११ मील दक्षिण में है सुरिक्षत हैं। एक विजयेश्वर महादेव कुमाऊँ में है। एक शिलालेख वागेश्वर के मन्दिर में जो सरयू[१] और गोमती[२] के संगम पर है सुरक्षित है। ये सब ताम्रपत्र तथा शिलालेख अशुद्ध संस्कृत भाषा और ब्राह्मी-लिपि में लिखे गए हैं। जिनका रूपान्तर देवनागरी लिपि में हो चुका है। कत्यूरियों का राज्य गढ़वाल और कुमाऊँ पर दीर्घकाल तक रहा। कुमाऊँ में चंद राजाओं के उदय के पश्चात् कत्यूरी माण्डलिक राजाओं के रूप में रह गए। अस्कोट का रजवार वंश जो संवत् १२७९[३] में कत्यूर छोड़कर अस्कोठ चला गया था अब भी एक बड़े जागीरदार के रूप में चला आ रहा है। नैपाल के पश्चिमी भाग डोटी में और अलमोड़ा के पश्चिमी भाग वाली-पछाऊँ में अभी भी कत्यूरियों के वशज थोकदार[४] हैं। रजवार शब्द भी राजपरिवार से निकला हुआ है। जब कत्यूरी माण्डलिक राजा-मात्र रह गए तब से रजवार कहलाये गए। कुमाऊँ की की भाषा पर कत्यूरियों का बहुत अधिक प्रभाव पड़ा अतएव यह जान लेना आवश्यक है कि कत्यूरी कौन थे और कब इस प्रदेश में आए।

१–इस वंश के राजाओं के पाँच ताम्रपत्र और शिलालेख उपलब्ध हैं। ताम्रपत्रों पर प्रवर्धमान विजय संवत्सर लिख दिया गया है। किन्तु इस प्रकार का कोई संवत्सर प्राचीन काल में प्रचलित नहीं था। इन ताम्रपत्रों में संवत्सरों की गणना अधिक से अधिक पच्चीस और कम से कम पाँच है। और साथ ही परवर्ती राजा के दानपत्र के संवत्सर की संख्या पूर्ववर्ती राजा के दान पत्र के संवत्सर से कम है इससे अधिकांश पुरात्ववेत्ता इस निष्कर्ष पर पहुचे हैं कि इस संवत्सर को प्रत्येक राजा अपने राज्या-रोहण काल से आरम्भ करता था। इन ताम्रपत्रों के संवतों के आधार पर कत्यूरियों का समय निर्धारण नहीं हो सकता। ये ताम्रपत्र बंगाल के

१–कुमऊँ की एक नदी जो शारदा की सहायक है।
२– ,, जो सरयू की सहायक है।
३–क. इ. पृ० २१५।
४–थोक – इलाका।

सम्राट देवपाल देव के क्रमशः मुंगेर और भागलपुर में प्राप्त शिलालेखों से सर्वथा मिलते जुलते हैं। ये ताम्रपात्र आठवीं और दसवीं शताब्दी[1] के बीच के हैं। कत्यूरियों और पालों के ताम्रपत्रों की शैली और लिपि आदि में ही समानता नहीं है अपितु राजकर्मचारियों[2] के नाम भी समान हैं। अतः कत्यूरियों और पालों का आपस में कुछ संबंध अवश्य था। अस्कोट के रजवारों की वंशावली से पता चलता है कि उनके अस्कोट पहुँचने से पूर्व उनके वंश के पचास राजा राज्य कर चुके थे। यदि प्रत्येक सम्राट का समय कम से कम पंद्रह वर्ष भी लगाया जाए तो कत्यूरी राज्य की स्थापना ईसवी सन् ५०० से पूर्व ही हो चुकी होगी। अतः या तो कत्यूरियों ने अपने ताम्रपत्रों में बंगाल के सम्राटों का अनुकरण किया या कत्यूरियों में से ही किसी ने जाकर पालवंश की स्थापना की जिसका कोई प्रमाण हमारे पास नहीं है। कत्यूरी राजाओं के नाम भी पालवंशीय राजाओं के नामों के समान ही देव या पाल से अन्त होते हैं। जैसे ललित सूरदेव पद्मटदेव या निर्भय पाल, जगतपाल आदि। किसी निश्चित ऐतिहासिक तथ्य के अभाव में हम केवल इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि कत्यूरियों का पूर्वी भारत से घनिष्ठ सम्बन्ध था।

२–कत्यूर शब्द कार्तिकेयपुर का अपभ्रंश रूप है। यह वंश कार्तिकेयपुर राजधानी होने के कारण ही कत्यूरी कहलाया। यद्यपि अटकिन्सन्[3] कत्यूरियों का संबंध काबुल के कटौर वंश से जोड़ते हैं किन्तु इसके लिए कोई प्रमाण नहीं है। कत्यूरी अपने को अयोध्या के राजा उत्तानुपात की सन्तान बताते हैं। अयोध्या के सम्राट उत्तानुपात के पुत्र ध्रुव[4] का अलकापुरी पहुँचकर यक्षों को जीतने की कथा प्रसिद्ध है। कत्यूरियों की राजधानी पहले बद्रीनाथ से २० मील दक्षिण जोशीमठ में थी। वहीं से ये कार्तिकेयपुर गए और कत्यूरी कहलाये। संभव है कि ध्रुव के समय से ही जोशीमठ में सूर्यवंशी क्षत्रिय राज्य स्थापित हो गया हो। यह अनुमान इस बात से भी दृढ़ हो जाता है कि कत्यूरी ताम्रपत्रों में राजाओं के आगे कुशली जुड़ा हुआ है। यह कुशल शब्द कौशली का बिगड़ा हुआ रूप प्रतीत होता है। कोशल से आने के कारण पहले ये सम्राट कौशली कहलाते थे अतः यहाँ भी हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि मागधी या अर्द्धमागधी भाषा प्रान्त से कत्यूरियों का घनिष्ट सम्बन्ध था।

३—समुद्रगुप्त के समय में कत्यूरी गुप्तों के अधीन मांडलिक राजा बन गए

१–हि० वि० को० (पाल शब्द)

२–क० इ० पृ० २०४—२०५।

३–ऐटकिनसन गजेटियर जि० ११ पृ० ३८१–३८२।

४–भागवत पुराण–स्कंध ४–अध्याय १०।

थे। अयोध्या से, जो पाटलिपुत्र के पश्चात् गुप्तों का सबसे बड़ा नगर था इस उत्तर देश का शासन चलता था। समुद्रगुप्त की मृत्यु के पश्चात शकों ने कार्तिकेयपुर पर अधिकार कर लिया था। समुद्रगुप्त के पुत्र रामगुप्त और शकों की सेना में कार्तिकेयपुर[1] के पास युद्ध हुआ था। रामगुप्त शकों के द्वारा घेर लिया गया था। किन्तु उसके भाई चन्द्रगुप्त ने जो इतिहास में चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य के नाम से प्रसिद्ध है अपने बुद्धि-कौशल और अमित साहस से शकों को नष्ट कर दिया और कत्यूरी पुनः अयोध्या के अधीन माँडलिक राजा हो गए। उपर्युक्त कथन शृंखला-बद्ध इतिहास के अभाव में बहुत कुछ अनुमान के आधार पर है किन्तु इससे भी हम इसी निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि कत्यूरियों का अर्धमागधी भाषा प्रान्त से सम्बन्ध था।

कत्यूरियों के पश्चात चंद वंशीय क्षत्रिय राजाओं का राज्य कुमाऊँ पर स्थापित हो गया और अंग्रेजी राज्य की स्थापना तक चलता रहा। इनके सम्बन्ध में दो किंवदंतियाँ हैं। बहुमत उन्हें, झूंसी[2] से जो प्रयाग के उस पार है, आया हुआ बताते हैं और कुछ लोग उन्हें कन्नौज से आया हुआ कहते हैं। कहा जाता है कि झूंसी से चंदेला राजकुमार सोमचंद सम्वत ७५० के लगभग उत्तराखंड की यात्रा के लिए आए। काली-कुमाऊँ के कत्यूरी राजा ब्रह्मदेव ने अपनी पुत्री का विवाह सोमचंद से कर दिया और एक जागीर भी दे दी इस प्रकार चंदों का एक ठकुरी राज्य स्थापित हो गया। जैसे-जैसे कत्यूरी दुर्बल पड़ते गये चंदों का राज्य-विस्तार होता गया और अन्त में सारे कुमाऊँ पर उनका प्रभुत्व हो गया। बीच में २०० वर्षों के लिए खसों ने पुनः पूर्वी कुमाऊँ पर अधिकार कर लिया और चंदों का राज्य केवल तराई भावर तक ही सीमित रहा किन्तु सम्वत ११२२ में राजा वीर-चंद ने पुनः कुमाऊँ पर अधिकार कर लिया। चंद राजाओं के साथ पाण्डेय, त्रिपाठी आदि ब्राह्मण तथा कई क्षत्रिय और शूद्र भी कुमाऊँ में बस गये। कुमाऊँ के ब्राह्मण क्षत्रियों में छुआछूत और खानपान के भेद-भाव गढ़वाल की अपेक्षा अधिक हैं। यह बात भी इसका समर्थन करती है कि ये लोग पूर्वी प्रान्तों के रहने वाले थे जिनके सम्बन्ध में कहावत प्रसिद्ध है "नौ कन्नौजिया तेरह चूल्हे।" अतः इस बात से भी स्पष्ट हो जाता है कि चंद लोग अर्ध-मागधी प्रान्त से जहाँ अब अवधी भाषा

---

१. ध्रुवस्वामिनी जयशंकर प्रसाद पृ० ८।

२. कु० ई० पृ० २२९।

झूंसीग्राम समागत्य जातः कूर्माचले नृपः।
सोमचंद्रस्तु शीतांशु सदृशः शंभूपूजकः॥

बोली जाती है आए थे इसीलिए अवधी की कई प्रवृत्तियाँ कुमाउँनी में पाई जाती हैं जो इस प्रकार हैं।

१—अवधी की भाँति अंतिम स्वर का ह्रस्वत्व की ओर झुकाव।

ख० बो०	ग०	कु०	अव०
ऐसा	इनो	एसु	अस
कैसो	कनो	कसो कसु	कस
गोरा	गोरो	ग्वार	गोर
सोना	सोनो	सुन	सोन

२—अवधी और कुमाउँनी का अन्य पुरुष एक वचन का रूप समान है।

ख० बो०	ग०	कु०	अवधी
वह	वो	उ	उ

३—खड़ी बोली और गढ़वाली में केवल उत्तम और मध्यम पुरुष सर्वनामों के सम्बन्ध कारक के रूप रकारान्त होते हैं। किन्तु कुमाउँनी में अन्य पुरुष एक वचन का रूप रकारान्त नहीं होता है किन्तु बहुबचन का रूप अवधी की भाँति रकारान्त हो जाता है।

ख० बो०	ग०	कु०	अव०
उनका	ऊँको	उनरो	ओंकर

४—खड़ी बोली और गढ़वाली में बहुबचन बनाने के लिए शब्दों पर ओं जोड़ा जाता है। किन्तु कुमाउँनी में अवधी की ही भाँति न लगाकर बहुवचन बनना है।

ख० बो०	ग०	कु०	अव०
बापों को	बबौं कू	बापन कणि	बापन का
बापों का	बबौं को	बापन को	बापन केर

५—कुछ शब्द ऐसे हैं जो कुमाउँनी और अवधी में तो व्यावहारिक हैं किन्तु गढ़वाली और खड़ी बोली में वे इतने अधिक व्यावहार में नहीं हैं।

ख० बो०	ग०	कु०	अव०
सिर	मुंड	ख्वारो	कपार
कुत्ता	कुत्ता	कुकूर	कूकर
माँ	मोइ	म्हौतारि	महतारि
बैल	सांड (बल्द)	बलद	वर्दा
बच्चा	नौनो	चेलो	चेलरा

६—कुमाउँनी में कुछ मागधी-प्राकृत का प्रभाव भी है। गढ़वाली की अपेक्षा

कुमाउँनी में श का प्रयोग अधिक होता है जैसे साहब (हि०), साब (ग०) शैब (कु०), सिंह (हि०), स्यू (ग०), श्यु (कु०)

गढ़वाल के खसों के छोटे छोटे ठकुरी राज्य थे जिसके कारण आगे चलकर इस प्रदेश का नाम गढ़वाल हुआ। वहाँ कोई प्रसिद्ध क्षत्रिय राज्य स्थापित नहीं हुआ। खस राजा कभी स्वतन्त्र और कभी कत्यूरियों के आधीन रहे। उत्तर-काशी (टिहरी) में विश्वनाथ के मन्दिर के सामने २१ फीट लम्बी एक लोहे की त्रिशूल है। उस पर भी प्राचीन ब्राह्मी लिपि में प्राकृत मिश्रित संस्कृत में लेख खुदा हुआ है। किसी माला वंशीय राजा ने अपने पुत्र के राज्याभिषेक के उपलक्ष में इसकी स्थापना की है। कत्यूरियों की एक शाखा मल्ल[1] कहलाई जाती थी। संभव है इसी मल्ल या माल वंश का कोई राजा कत्यूरियों की ओर से अवनियोगास्थान[2] (देशिक शासक) रहा हो और उसी ने यह त्रिशूल स्थापित किया हो। नाम और संवत् मिट गए हैं। उस समय कदाचित् प्रमार वंशीय राजाओं का प्रभाव केवल गढ़-वाल के एक सीमित भाग पर था। सम्भव है तब वे भी कत्यूरियों के अधीन माण्डलिक राजा रहे हों प्रमार वंश का राज्य प्रसार संवत् १५५७ के पश्चात् हुआ जब महाराज अजयपाल गद्दी पर बैठे।

गढ़वाल कुमाऊँ के निवासी अशोक के पूर्व ही बौद्ध धर्मावलम्बी हो गए थे। उन्हीं के लिए अशोक को देहरादून से पश्चिम, २५ मील की दूरी पर, कालसी नामक स्थान पर शिलालेख स्थापित करने की आवश्यकता पड़ी। काला-न्तर ने इन प्रान्तों में बौद्ध धर्म का प्रभाव इतना बढ़ा कि शंकराचार्य को बौद्ध धर्म की समाप्ति के लिए इन दुर्गम प्रदेशों में प्रवेश करना पड़ा। आज भी बौद्ध धर्म के वज्रयान शाखा के अवशेष गढ़वाल कुमाऊँ के शैव साधुओं (जोगी जोगिनियों) के व्यवहार में दिखाई देते हैं। चीनी यात्री ह्वेनसांग हरिद्वार से उत्तर की ओर ब्रह्मपुरी तक गया था। कनिंघम[3] ब्रह्मपुरी को गढ़वाल में बताते हैं। ह्वेनसांग का कहना है कि ब्रह्मपुरी में कुछ लोग बौद्ध और कुछ लोग हिन्दू हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि ब्रह्मपुरी किसी खस राजा की राजधानी थी। उस समय तक इस भूभाग का नाम गढ़वाल नहीं पड़ा था। गढ़वाल पर खसों का ही प्रभुत्व अधिक रहा। कुमाऊँ की भाँति गढ़वाल पर भारत के पूर्वी प्रान्तों का प्रभाव नहीं पड़ा। प्रमारवंशीय राजाओं का प्रभाव सोलहवीं शताब्दी तक थोड़े से भूभाग पर सीमित रहा। फलस्वरूप आज भी गढ़वाल में खस प्रवृति

---

१. कु० इ० पृ० २१५।
२. कु० इ० पृ० २०४—२०५।
३. ऐनंसेण्ट जाग्राफी आफ इन्डिया…कनिंघम (ग० इ० पृ० ३३३)।

कुमाऊँ की अपेक्षा अधिक है और बौद्ध धर्म के प्रभाव से खान पान के भेद-भाव भी अधिक नहीं हैं। प्रमार वंशीय राजा पश्चिमी राजपूताने से आए थे अतएव गढ़वाली पर कुमाउँनी की अपेक्षा राजस्थानी प्रभाव भी अधिक पड़ा। इसका यह तात्पर्य नहीं है कि राजस्थान से लोग कुमाऊँ की ओर नहीं गए। मुसलमानों के आक्रमण के पश्चात् समस्त भारतवर्ष से विशेषकर राजस्थान से लोग पहाड़ी प्रान्तों में जाकर बस गए। गढ़वाल में बसने के पश्चात् कई राजपूत जातियाँ कुमाऊँ की ओर[1] गई और कई कुमाऊँ से गढ़वाल में आकर बस गई। अतएव राजस्थानी प्रभाव कुमाऊँ पर भी पर्याप्त मात्रा में पड़ा। यहाँ तात्पर्य यही है कि गढ़वाल में प्रमार-वंशीय राजपूत राजाओं के कारण राजस्थानी प्रभाव कुमाऊँ की अपेक्षा अधिक पड़ा।

प्रमार-वंशीय राजपूत विक्रम की दसवीं शताब्दी में गढ़वाल में आए और पहले पहल चाँदपुर गढ़ में बसे। चाँचपुर गढ़ से जहाँ प्रमार वंश के प्रथम राजा कनकपाल ने राज्य किया एक शिलालेख[2] प्राप्त हुआ है उसमें कनकपाल का परिचय दिया गया है। चाँदपुर गढ़ के राजा भानुप्रताप ने अपनी कन्या का विवाह कनकपाल से कर दिया और उसे अपना उत्तराधिकारी भी बना दिया। उसके पश्चात् राजपूताने से अनेकों जातियाँ आकर गढ़वाल और कुमाऊँ में बसती गईं। जिन्होंने गढ़वाल-कुमाऊँ की भाषा में ध्वन्यात्मक ही नहीं रूपात्मक परिवर्तन भी उपस्थित कर दिया। प्रमार लोग गुर्जर थे जिनके सम्बन्ध में पर्याप्त छान-बीन के पश्चात् देवदत्त आर० भांडारकर[3] ने निम्नांकित तथ्य दिए हैं।

१—गुर्जर शिथियन थे जिन्होंने पाँचवीं शताब्दी में भारत में प्रवेश किया।

२—पाँचवी शताब्दी के अन्त तक उन्होंने वर्तमान गुजरात, भरौच और बलभी को भी अपने अधीन कर लिया। भिनामाल गुर्जरों की बहुत समय तक राजधानी रही।

३—नवीं शताब्दी तक उन्होंने दो बड़े राज्य, गुजरात के उत्तर पूर्व और दक्षिण-पूर्व में स्थापित कर लिए थे। किन्तु इसके पश्चात् उन्हें पश्चिम से अरबों ने और दक्षिण के क्षत्रियों ने ढकेलना आरम्भ कर दिया। फलस्वरूप सन् ९५३ में भिनामाल का गुर्जर राज्य छोटे-छोटे राज्यों में बँट गया। साँभर में चौहान, मालव में प्रमार और अणिहलवाड़ा में सोलंकी गुर्जर राज्य

१—कु० इ० पृ० ६०२।

२—शायकाब्दि नव सवंत वर्षे विक्रमस्य विधु वशंज पूज्यः।
श्री नृपः कनकपाल इहाप्तः शौनकर्षिकुलजः प्रमरोऽयम्॥

३—गु० लैं० लि० ज़िल्द १ पृष्ठ ३५।

स्थापित हो गये। अतः उपर्युक्त विवेचन से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि जिस समय मालव के गुर्जर भिनामाल के बड़े गुर्जर राज्य से अलग हुए उसी समय के लगभग कनकपाल मालव से चलकर गढ़वाल पहुँचे।

राजतरंगिनी[१] के अनुसार चनाव के दोनों ओर पंजाब के वर्तमान गुजरात और गुजरानवाला जिलों पर एक गुर्जर राज्य था। जिसको नवीं शताब्दी में कश्मीर के राजा शंकरवर्मन् ने जीता था।

सर जार्ज गियर्सन[२] का कहना है कि काबुल की स्वात नदी से लेकर हजारा, काश्मीर, मरी, जम्मू आदि के तराई के इलाकों में जो पशुपालन करने वाली गुर्जर या गुज्जर जाति है उनकी भाषा राजस्थानी का ही एक रूप है। यद्यपि उसमें स्थानीय शब्द भी आ गए हैं। इससे वे इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि गुर्जर भारत में तीन ओर से आए। कुछ सिन्ध से गुजरात होते हुए पश्चिमी राजस्थान में पहुँचे, कुछ सीधे सिन्ध से उत्तरी राजस्थान होते हुए आगे बढ़े और कुछ उत्तर की ओर से हिमालय की तराई में होते हुए गढ़वाल कुमाऊँ तक फैल गए। वहीं से कुछ राजस्थान की ओर चले गए और मुसलमानों के आक्रमण के समय हिमांचल-प्रदेश शिवालिक, गढ़वाल और कुमाऊँ की ओर आ गए। चौहान और चालुक्य आदि गुर्जर-वंशीय राजपूत शिवालिक (सपादलक्ष) से ही राजस्थान गए।

प्रसिद्ध इतिहासवेत्ता विन्सेन्ट स्मिथ[३] का विचार है कि पाँचवीं छठी शताब्दी में हूण, गुर्जर आदि जातियाँ पश्चिम से भारत में आईं। उनमें से जो राज-काज करते रहे वे राजपूत कहलाए और खेती करने वाले जाट कहलाए। जो अपने पुराने व्यवसाय पशुपालन में ही लगे रहे वे गुर्जर, गुज्जर, गुजुर या गूजर नाम से पुकारे जाते रहे। अतः गूजर राजपूत और जाटों में रक्तभेद नहीं है। केवल व्यवसाय भेद है। सोलंकी, प्रमार, चालुक्य और चौहान ये सब जातियाँ गुर्जर या उनसे सम्बन्धित किसी अन्य विदेशी जाति के वंशज हैं। इनका सबसे अधिक प्रभाव पहले-पहल दक्षिणी-पश्चिमी राजपूताना और गुजरात में लक्षित होता है। भारत में बसने पर वे हिन्दू स्त्रियों से विवाह करने लगे और उनके आचार विचार और भाषा ग्रहण करने लगे। वहीं से ये लोग उत्तर और उत्तर-पूर्व की ओर फैल गए। जो राजकार्य और कृषि में लगे रहे उन्होंने स्थानीय भाषा सीख ली किन्तु जो अपने पुराने व्यवसाय, पशुपालन को ही ग्रहण किए रहे वे कुमाऊँ की तराई से लेकर पश्चिम की ओर बढ़ते चले गए और धीरे-धीरे तराई के जंगलों में आगे बढ़ते हुए स्वात तक

१—राजतरंगिणी। कल्हण। ५ तरंग—१४३—१५०।

२—लि० स० इ० वाल्यूम ९ भाग ४ भूमिका।

३—लि० स० इ० जिल्द ९ भाग ४ पृष्ठ ११।

पहुँच गए। उनकी भाषा में अधिक रूपात्मक परिवर्तन नहीं हुआ है यद्यपि स्थानीय शब्द पर्याप्त मात्रा में आ गए हैं। स्मिथ महोदय का विचार है कि गुर्जर लोगों ने काबुल या खैबर दर्रे से भारत में प्रवेश नहीं किया। गियर्सन महोदय के विचारों से स्मिथ महोदय का विचार अधिक समीचीन प्रतीत होता है। गियर्सन महोदय का यह कहना कि चौहान या चालुक्य सपादलक्ष से राजस्थान गए भ्रमपूर्ण प्रतीत होता है। इन जातियों की उत्पत्ति अर्बुद पर्वत पर यज्ञ की अग्नि से बताई जाती है। यह बात भी स्पष्ट संकेत करती है कि अर्बुद पर्वत के आस-पास गुर्जर आदि विदेशी जातियाँ आ आकर बसने लगीं। उनको हिन्दू धर्म में स्थान दिया गया और वे ही राजपूत कहलाये। किन्तु जो बस्तियों से दूर जंगलों में पशुओं को लिए हुए घूमते रहे वे गुर्जर गुजुर या गूजर कहलाए जाते रहे। राज पूताने से सपादलक्ष होते हुए वे तराई के जंगलों में पशुपालन के लिए पश्चिम की ओर बढ़ते गए और स्वात नदी की घाटी तक पहुँच गए।

इस प्रकार गुर्जर राजपूत भी गुजरात या पश्चिमी राजपूताने तक ही सीमित न रहे। पूर्व में उनका राज्य कन्नौज[1] तक और उत्तर में गढ़वाल[2], सपादलक्ष, हिमांचल प्रदेश तथा पंजाब में नवीं दसवीं शताब्दी से लेकर बारहवी शताब्दी तक कई छोटे बड़े राज्यों के रूप में फैल चुका था। बारहवीं शताब्दी में जब पाटन में सिद्धराज सौलंकी-गुर्जर राज्य करता था तब अजमेर के चौहान गुर्जरों का राज्य सपादलक्ष तक फैला हुआ था। अजमेर के सम्राट अरुणोराज को शाकम्भरी भूप या सपादलक्ष-नरेश[3] कहा गया है। शाकम्भरी-देवी का मन्दिर सहारनपुर में है और सपादलक्ष उसी से मिला हुआ पर्वतीय प्रदेश है। चम्बा से लेकर नेपाल तक के पर्वतीय भूभाग पर मुसलमानों के आक्रमण के पश्चात् राज-पूताने से बराबर लोग आकर बसते रहे। कुछ तो खसों को जीत कर उनके स्थान पर अपने ठकुरी[4] राज्य स्थापित करते चले गए और कुछ कृषि-कार्य में लग गए। यह क्रिया सोलहवीं सतरहवीं शताब्दी तक चलती रही। गढ़वाल में प्रमार राज्यवंश की स्थापना तो दसवीं शताब्दी में हो चुकी थी किन्तु इसके पश्चात् कई राजपूत और ब्राह्मण जातियाँ समय समय पर गड़वाल-कुमाऊँ में बसती गई। कुछ राजपूत जातियाँ सीधे कुमाऊँ में जाकर बस गईं और कुछ गढ़वाल से कुमाऊँ को गईं।

---

१. गु० लैं० लि०, जिल्द १ पृ० ३४।
२. गढ़वाल का प्रमार, वंश संवत् ९४५।
३. सिद्धराज, मैथिलीशरण गुप्त।
४. छोटे छोटे राज्य।

अतः मध्य पहाड़ी में ध्वन्यात्मक ही नहीं रूपात्मक परिवर्तन भी उपस्थित हुआ। यहाँ राजस्थानी की—मध्य पहाड़ी से समानता दिखाई जाती है।

१—मध्य पहाड़ी में राजस्थानी या ब्रज-भाषा के समान ही हिन्दी के अकारान्त शब्द ओकारान्त हो जाते हैं। कुमाउँनी में शब्द लिखे तो ओकरात जाते हैं किन्तु भाषण में अर्द्ध ओ और कभी कभी अ मात्र रह जाते हैं। जैसे—

हि०	रा०	ग०	कु०
मेरा	मेरो	मेरो	मेरो-म्यार
वह	वो	वो	उ
उसका	वेको	वैको	बिको
सोना	सोनू	स्रोनो	सुन
घोड़ा	घोड़ो	घोड़ो	घोड़ो-घ्वाड़

२—न के स्थान पर राजस्थानी में ण का बहुलता से प्रयोग होता है इसके विपरीत ब्रज और खड़ी बोली में ण के स्थान पर भी न हो जाता है। मध्य-पहाड़ी में राजस्थानी की भाँति ण की बहुलता है।

हि०	रा०	ग०	कु०
किसान	किसाण	किसाण	किसाण
पानी	पाणी	पाणी	पाणि
बहिन	बाहण	बैंण	बेणि
हिरन	हिर्ण	हिरण	हिरण
चलना	चल्णू	चलणों	हिटणों

हिन्दी की क्रियार्थे संज्ञायें ना से अन्त होती हैं। मध्य पहाड़ी में वे णो से अन्त होती हैं।

३—मध्य पहाड़ी में राजस्थानी की भाँति स्वतः अनुनासिकता की प्रवृत्ति बहुत अधिक है। गढ़वाली की अपेक्षा कुमाउँनी ने इस प्रवृति को अधिक ग्रहण किया है।

ग० पैंसा, तँय्यार।

कु० पैंसा, तँय्यार, गाँति (गात), बाँकि (शेष)।

रा० माँण (मान), असमाँन, राधाँ।

४—हिन्दी की हो धातु के स्थिति-सूचक सहकारी रूपों के स्थान पर राजस्थानी में छ के रूप चलते हैं। यह प्रवृत्ति दरद भाषाओं में भी पाई जाती है। यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता कि मध्य पहाड़ी ने यह प्रवृत्ति दरद भाषाओं से ग्रहण की या राजस्थानी से। अब होना विकारी अर्थ में आता है तब होना के स्थान पर होणों क्रियार्थ संज्ञा हो जाती है।

वर्तमान काल ।

	हि०		रा०		ग०		कु०	
	अ. ब.	ब. व.	ए. बए.	ब, व	ए. ब	ब. थ.	ए. ब,	ब. ब,
उ. पु.—	हूं	हैं	छूँ	छाँ	छौं	छवां	छूं	छूं
म. पु—	है	हो	छै	छो	छई	छवा	छै	छौ
अ. प.—	है	हैं	छै	छै	छ	छन्	छ्	छन्

भूत काल

	हि०		रा०		ग०		कु०	
	ए. ब,	ब. ब.	ए. ब.	ब, ब.	ए. ब.	ब. ब.	ए. ब.	ब. व.
उ. पु.—	था	थे	छो	छा	छयो	छया	छियुं	छियाँ
म. पु.—	था	थे	छो	छा	छयो	छया	छिये	छिया
अ. पु.—	था	थे	छो	छा	छयो	छया	हियो	छिय्

हिन्दी, गढ़वाली, कुमाउंनो तथा कुछ दरद बोलियों के वर्तमान काल के एक बचन के रूप दिए जाते हैं। इन में भी हिन्दी को छोड़ छ धातु की प्रधानता है।

हि०	ग०	कु०	काश्मीरी	पोगाली	दो०सि०	रम्बानी
उ—हूं	छौं	छुं	छुस्	छुस	छिस् छि	छुस्
म०—हो	छई	छै	छुहू	छुस्	छिस् छि	छुस्
अ०—है	छ	छ्	छुहू	छु	छु	छु

५—राजस्थानी में भविष्यत् काल के दो प्रत्यय हैं। सी और लो। ऐसा प्रतीत होता है कि सी प्रत्यय पुराना है और लो प्रत्यय गुर्जर प्रभाव है। मध्य-पहाड़ी में भी लो ही भविष्यत् काल का प्रत्यय है। खड़ी बोली में लो के स्थान पर गा हो जाता है।

हि०	रा०	ग०	कु०
उ० पु०—मारूँगा	पिटूंलो	मारूंलो	मारूँलो
म० पु०—मारेगा	पिटेलो	मारिलो	मारलै
अ० पु०—मारेगा	पिटैलो	मार्लो	मारलो

दरद बोलियों में दो दासिराजी में भी भविष्यत् काल का प्रत्यय ला है। उसमें क्रमशः मारालो मरैलो और मरेलो रूप होते हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि दोदासिराजी ने यह प्रवृत्ति पश्चिमी पहाड़ी से ग्रहण की है।

१—लि-स-इ बो० १ भाग २ पृ. २५३—२५८

६—कुछ कारक चिन्ह भी मध्य-पहाड़ी और राजस्थानी[1] में समान हैं। यद्यपि भिन्न-भिन्न कारकों में प्रयुक्त होते हैं।

रा०	ग०	कु०
सूं (करण)	सणि (सम्प्रदान)	सुं (सम्प्रदान)
थी (अपादान)	थें (कर्म सम्प्रदान)	थें (सम्प्रदान)
हूंत (अपादान)	—	है (अपादान)
मां (अधिकरण)	माँ (अधिकरण)	में (अधिकरण)

मध्य-पहाड़ी बोलियों पर मुसलमानों का प्रभाव बहुत कम पड़ा। मध्य-पहाड़ी भाषा प्रदेश में उनका आधिपत्य कभी नहीं रहा। कुछ अरबी-फारसी और तुर्की शब्द मध्य-पहाड़ी में अवश्य आ गये हैं जिनकी गणना एक प्रतिशत भी नहीं है। भाषा की ध्वनियों और रूपों में कोई नवीनता नहीं आई और न कोई विकार ही उत्पन्न हुआ। समय-समय पर मुसलमानों के भय से अपने धर्म की रक्षा के निमित्त जो ब्राह्मण तथा क्षत्रिय पर्वतों की शरण लेते रहे वे अपने बोलचाल में अरबी-फारसी के शब्द भी साथ में ले गए।

ग०	कु० ख्वेन
खसम (पति–हीनता सूचक)	(ख्वामिन्द)
खीसा (जेब)	खीस
मालिक (पति)	मालिक (पति)
सैद (एक प्रकार के भूत-प्रेत जो उन रूहेलों की प्रेतात्मायें हैं जो गढ़वाल पर आक्रमण करते समय मारे गये थे।)	—

अंग्रेजी राज्य स्थापित होने पर अरबी-फारसी के शब्द अदालतों में बहुलता से प्रयोग में आने लगे। इनका उल्लेख शब्द-प्रकरण में किया जायेगा। मध्य-पहाड़ी भाषा प्रदेश में अदालतों की लिपि देवनागरी ही रही किन्तु भाषा पूर्णतः उर्दू हो गयी थी। ग्रामीण लोगों के लिए अदालतों से जो सम्मत भेजे जाते थे उनका आरम्भ इस प्रकार होता था :—"सम्मन बगरज़ इनफ़िसाल मुकद्दमा"। किन्तु इसके लिए सधारण जनता को उर्दू पढ़ने की आवश्यकता नही पड़ी। अतः भाषा पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा।

गोरखों ने सन् १७९० में अल्मोड़ा पर अधिकार कर लिया था और सन्

१–रा. में. सं. पृ ३९–४०।

१८०३ में गढ़वाल को भी जीत लिया। कुमाऊं में आंतरिक कलह के कारण अधिक विरोध नहीं हुआ किन्तु गढ़वाल में उनका पग-पग पर विरोध होता रहा। नैपाल और अल्मोड़ा की सम्मिलित शक्ति के सामने गढ़वाल का विरोध अधिक न चल सका। किन्तु गढ़वालियों के इस विरोध के कारण गोरखों ने गढ़वाल में त्राहि-त्राहि मचा दी थी। मैंदान की नादिरशाही और पहाड़ की गोरखाली समानार्थक हैं। कविवर गुमानी पन्त ने गोरखा राज्य के सम्बन्ध में लिखा है।

दिन-दिन खजाना का भार बोकनाले।
शिव ! शिव !! चुलि में का बाल मैं एक कैका ॥
तबपि मुलुक तेरी छोड़ि नै कोई भाजा।
इति बदति गुमानी धन्य गोरखालि राजा ॥

गोरखा बहुत बड़ी संख्या में देहरादून जिले के पर्वतीय भाग में बस गये हैं। देहरादून के पहाड़ी भाग की भाषा गढ़वाली थी। वहां गढ़वाली खड़ी बोली और नैपाली के संयोग से एक मिश्रित बोली प्रचलित हुई जिसे शुद्ध गढ़वाली बोलने वाले कठमाली कहते हैं। शेष भाग में अल्पकालिक गोरखा शासन का कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ा।

सन् १९१५ में अंग्रेजी राज्य की स्थापना हो गई थी। सम्पूर्ण कुमाऊं अंग्रेजों के अधिकार में चला गया। गढ़वाल के भी दो भाग हो गए। अलकनन्दा से पूर्व का गढ़वाल अलग जिला बनाया गया। और उसका नाम ब्रटिश गढ़वाल रक्खा गया। और कुमाऊँ कमिश्नरी में सम्मिलित कर लिया गया। अलकनन्दा से पश्चिम का भाग टिहरी गढ़वाल सन् १९४८ तक देशी राज्य के रूप में चलता रहा, अब वह भी कुमाऊं कमिश्नरी का जिला बन गया है। देहरादून जो गढ़वाल का ही एक भाग था, अंग्रेजी शासन के आरम्भ से ही मेरठ कमिश्नरी का एक जिला बना लिया गया। अंग्रेजों के आने पर कई यूरोपीय भाषाओं के शब्द मध्य-पहाड़ी में आए, विशेषकर अंग्रेजी पुर्तगाली और फ्रांसीसी शब्द। किन्तु मध्य पहाड़ी में विदेशी ध्वनियों ने प्रवेश नहीं किया।

गढ़वाल कुमाऊं की साहित्यिक भाषा हिन्दी है। पढ़े लिखे लोग प्रायः खड़ी बोली में ही रचना करते हैं। कभी-कभी कोई मातृ-भाषा का प्रेमी इन बोलियों में रचना कर लेता है। किन्तु राष्ट्रीयता के प्रभाव में पड़ कर अधिकांश लोगों से प्रान्तीयता का भाव दूर होता जा रहा है। मध्य पहाड़ी बोलियों पर हिन्दी का प्रभाव दिन प्रतिदिन बढ़ता जा रहा है। आवागमन की सुविधा के कारण पहाड़ और मैंदान का अन्तर बहुत कम हो गया है। स्वास्थ्यप्रद स्थान जैसे मंसूरी, लैंन्स-डाउन, रानीखेत अल्मोड़ा, नैनीताल आदि नगरों की व्यावहारिक भाषा खड़ी बोली हो गई है।

आज कुमाऊं गढ़वाल में बसने वाली जातियां एक रूप हो गई हैं। किन्तु सूक्ष्मदृष्टि से जिस प्रकार उनके आचार-विचार, रहन-सहन धार्मिक तथा लौकिक विश्वासों में जब भी अन्तर स्पष्ट दिखलाई देता है। इसी प्रकार डोम, खस, राजपूत तथा ब्रह्मण-क्षत्रियों की भाषा में भाषा-विज्ञान की दृष्टि से अन्तर स्पष्ट ज्ञात हो जाता है। इसी लिए श्री गंगादत्त उपरेती ने पर्वतीय भाषा प्रकाशक में डोमों की बोली उच्च वर्णवालों से अलग रखी है।

डा० चटर्जी[१] तथा ग्रियर्सन महोदय ने खस प्राकृतों का आरम्भ दरद भाषाओं से बतलाया है। भारतीय आर्य भाषाओं के विकास के सम्बन्ध में चटर्जी महोदय ने जो सारिणी[२] दी है उसमें खस प्राकृतों को दरद मानते हुए प्रश्नवाचक का चिन्ह लगा दिया है। गुर्जरों की भाषा[३] को जिन्होंने इसवी सन् ५०० शताब्दी के पश्चात् पश्चिमी राजस्थान और गुजरात में प्रवेश किया और राजस्थानी तथा गुजराती को इतना अधिक प्रभावित किया और इनके पश्चात् पहाड़ी भाषाओं पर भी प्रभाव डाला, उसे भी चटर्जी महोदय संदेहात्मक रूप से दरद से ही उत्पन्न मानते हैं। मध्य-पहाड़ी का दरद भाषाओं से साम्य पहले ही दिखाया जा चुका है। पहाड़ी प्रदेश में जितना ही हम पश्चिम को बढ़ते हैं यह साम्य और भी अधिक प्रवल होता जाता है। अतः खस प्राकृत मूलतः दरद रही होगी। किन्तु जैसे-जैसे खस लोग पूर्व की ओर बढ़ते गए उनकी भाषा पर भारतीय आर्य भाषाओं का प्रभाव बढ़ता गया। राजस्थान तथा गुजरात की भाषा पर गुर्जर प्रभाव अवश्य पड़ा जिससे नगर अपभ्रंश उत्पन्न हुई किन्तु राजस्थानी तथा गुजराती भाषा मूलतः भारतीय आर्य भाषाएं थीं। दसवीं शताब्दी के पश्चात् राजस्थानी ने पहाड़ी भाषा प्रदेशों में प्रवेश करना आरम्भ किया जिससे पहाड़ी बोलियों में पर्याप्त रूपात्मक तथा ध्वयात्मक परिवर्तन उपस्थित हुआ किन्तु पहाड़ी को दक्षिण पश्चिमी राजस्थानी का ही एक रूप[४] मान लेना उचित नहीं है। इसमें संदेह नहीं कि राजस्थानी और पहाड़ी में बहुत साम्य है। किन्तु ध्वन्यात्मक और रूपात्मक भेद भी पर्याप्त हैं।

१. पहाड़ी बोलियों और राजस्थानी में सहायक क्रिया 'छ' है किन्तु दरद भाषाओं में भी सहायक क्रिया 'छ' है जैसा कि पहले बताया गया है। बंगला में 'आछे' सहायक क्रिया है जो स्पष्ट 'छ' से संबंधित है। इसके विपरीत मारवाड़ी में सहायक क्रिय[५] 'हो' है न कि 'छ'।

१—च० व० ल—प ९।

२—च० वं० लं—पृ ६।

३—च० व० ल—पृष्ठ ८।

४—च० बं० लं—पृष्ठ १०।

५—लिं० स० इ वाल्यूम ९ भाग २ पृष्ठ १०।

२—राजस्थानी और म० प० बोलियों में भविष्यत् काल का प्रत्यय 'लो' है किन्तु राजस्थानी में 'सी' भी भविष्यत् काल का प्रत्यय है। 'लो' प्रत्यय स्पष्ट ही गुर्जर प्रभाव है जैसा कि पहले बताया गया है। दरद बोली–दोदा- सिराजी में भी 'लो' भविष्यत् का प्रत्यय है। राजस्थानी में 'लो' अपरिवर्तनशील[1] प्रत्यय है जबकि म० प० में लिंग-वचन के अनुसार बदलता रहता है। राजस्थानी में भी केवल मारवाड़ी में 'लो' भविष्यत्[2] का प्रत्यय है जब कि जयपुरी में हिन्दी के समान ही गा, गे, गी प्रत्यय लगते हैं। कई पहाड़ी बोलियों[3] में भविष्यत् का प्रत्यय ला नहीं है।

३—हिन्दी के अकारान्त शब्द राजस्थानी के समान ही म० प० में ओकारान्त होते हैं किन्तु यही बात ब्रजभाषा में भी पाई जाती है। पश्चिमी पहाड़ी की कुछ बोलियों में ओ के स्थान पर हिन्दी के समान आकारान्त अथवा औकारान्त या ऊकारान्त हो जाते हैं। संस्कृत में विसर्ग पुरःसर अकारान्त शब्द प्राकृतों में ओकारान्त हो गये हैं। यही ओ शिथिल स्वर होने के कारण कहीं आपेक्षिक संवृत ऊ हो गया है और कहीं आपेक्षिक विवृत औ यथा ब्रजभाषा में। खड़ी बोली में यही औ और अधिक विवृत होकर आ हो गया है अतः इसे म० प० पर राजस्थानी प्रभाव नहीं कहा जा सकता।

४—जहाँ तक सर्वनामों का संबध है, म० प० के सर्वनाम राजस्थानी की अपेक्षा ख० बो० से अधिक समीप हैं।

	म० प०	राजस्थानी	हिन्दी
उ० पु०	मैं	हूँ	मैं
म० पु०	तु	तूँ	तू

५—राजस्थानी और म० प० की गढ़वाली बोली में निश्चयवाचक सर्वनामों के पुलिंग और स्त्रीलिंग रूप अलग होते हैं यथा, ये–या; वो–वा। खड़ी बोली में एक ही रूप होता है। किन्तु निश्चयवाचक सर्वनाम के पुलिंग और स्त्रीलिंग रूप दरद बोलियों में भी होते हैं। ये प्राचीन आर्य भाषा के अवशेष हैं जो कहीं अभी चल रहे हैं और कहीं लुप्त हो गए हैं। अतः इसे राजस्थानी प्रभाव नहीं कहा जा सकता।

६—डा० ग्रियर्सन ने म० प० में पार्श्विक मूर्द्धन्य (ळ) ध्वनि की कल्पनाकर ली है यह भ्रम मात्र है। कदाचित इससे वे राजस्थानी प्रभाव दिखाना चाहते थे

१—लि० स० इ० ९/२ पृष्ठ १२।
२—रा० भा० सा० पृष्ठ ४७।
३—लि० स० इ० ९/२ पृष्ठ १०।

क्योंकि पश्चिमी राजस्थानी में 'ळ' ध्वनि वर्तमान है। गढ़वाली में शुद्ध दन्तोष्ठ्य पार्श्विक अन्तस्थ ध्वनि ल० अवश्य है जिसे वे भ्रम से 'ळ' समझ बैटे जैसा कि उनके दिए हुए उदाहरणों से पता चलता है। कुमाऊंनी में यही ध्वनि व में बदल जाती है। यथा, —कालो, कावो बादल—बादव।

७—म० प० बोलियों में राजस्थानी के समान न के स्थान ण की बहुलता है। किन्तु यह प्रवृति ग्रामीण खड़ी बोली, बाँगरू, पंजाबी में भी पाई जाती है। यह सब गुर्जर प्रभाव है बाँगरू, अत: यदि ग्रामीण खड़ी बोली, पंजाबी का स्वतंत्र अस्तित्वहै तो म० प० को ही राजस्थानी की एक बोली क्यों माना जाय।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट हो जाता है कि म० प० का राजस्थानी से गुर्जर प्रभाव के कारण कुछ बातों में साम्य अवश्य है किन्तु उतना नहीं जितना दरद भाषाओं से। जिस प्रकार मध्य काल में म० प० राजस्थानी से प्रभावित होती रही है उसी प्रकार वर्तमान युग में खड़ी बोली से। म० प० की कुछ विशेष ध्वनियों को छोड़कर शेष खड़ी बोली से मिलती हैं। क्रिया के रूप सर्वनाम और कृदन्तों में भी साम्य है। शब्द समूह भी थोड़ा सा ध्वनि परिवर्तन के साथ एक सा है। वाक्य में पदक्रम भी समान है। अत: म० प० बोलियों का वर्तमान रूप राजस्थानी की अपेक्षा हिन्दी के अधिक समीप है।

२—ध्वनि विचार

(अ) मूल-स्वर

मध्य-पहाड़ी में हिन्दी के सभी मूल स्वर हैं। उनके अतिरिक्त कई ऐसे मूल स्वर भी हैं जो हिन्दी में नहीं पाए जाते। एक स्वर ऐसा है जिसको संस्कृत व्याकरण में स्वीकार तो किया गया है किन्तु संस्कृत-भाषा में उसका प्रयोग कहीं नहीं पाया जाता। इसी प्रकार संस्कृत तथा हिन्दी में स्वरों के प्लुत रूप केवल संबोधन कारक में आते हैं किन्तु मध्य-पहाड़ी में अन्य अवस्थाओं में भी प्लुत स्वर का प्रयोग होता है।

गढ़वाली में अ की दीर्घ ध्वनि अऽ भी है। जैसे घर शब्द में घऽ का उच्चारण काल-अपेक्षाकृत अधिक है। यह ध्वनि भोजपुरी के अतिरिक्त अन्य किसी आर्य भाषा में जिसका वैज्ञानिक अध्ययन हो चुका है नहीं पाई जाती है। कुमाउंनी में भी यह ध्वनि नहीं है। पश्चिमी पहाड़ी की कुछ बोलियों में इसके स्थान पर ह्रस्व औं होता है। संस्कृत व्याकरण[1] में दीर्घ अ स्वीकार किया गया है किन्तु व्यवहार में अ का दीर्घ रूप आ मान लिया गया है। और आ को अ का सवर्ण[2] भी माना

१—ऊकालोऽज्झस्वदीर्घप्लुत: १—२—२७. अष्टाध्यायी।

२—तुल्यास्यप्रयत्नं सवर्णम् १. १. ९. अष्टाध्यायी।

गया है किन्तु आज भाषा विज्ञान इस बात को स्वीकार नहीं करता हैक्योंकि अ और आ में प्रत्यय और उच्चारण स्थान में भेद है। अ अर्द्ध-विवृत-मध्य-स्वर है, जबकि अ विवृत-पश्च-स्वर है। अत: गढ़वाली भाषा की दीर्घ अऽ ध्वनि ही वास्तव में अ की सवर्ण ध्वनि है। न कि आ। यह भ्रम संस्कृत व्याकरणो में और उनके आधार पर लिखे गए हिन्दी व्याकरणों में इस लिए उत्पन्न हो गया है कि पाणिनी के अष्टाध्यायी में अ का दीर्घ रूप तो स्वीकार किया गया है किन्तु भाष्यकारों ने व्यवहार में उसे न पाकर आ को ही अ का दीर्घ रूप मान लिया है। वास्तव में आ को अ के समान ही दीर्घ मूल-स्वर मानना चाहिए। उसका ह्रस्व रूप नहीं है क्योंकि पूर्ण विवृत होने के कारण उसके उच्चारण में अन्य मूल स्वर अ, इ, उ, की अपेक्षा अधिक समय लगता है।

कुमाउंनी में आ और अ के बीच की अन्य ध्वनि अ आ है। इसे आ का ह्रस्व रूप नहीं कहा जा सकता। यह ध्वनि हिन्दी संस्कृत आदि अन्य भारतीय आर्य भाषाओं में नहीं पाई जाती है। जैसे ओपणो। आ का उच्चारण अ और आ के बीच में है। यह ध्वनि कभी कभी गढ़वाली में भी पाई जाती है जैसे रोटो (रोटी)।

गढ़वाली और कुमाउंनी में प्लुत आऽ ध्वनि का प्रयोग भी होता है। यह ध्वनि विशेषण शब्दों में गुण की मात्रा का आधिक्य प्रगट करने के लिए काम में लाई जाती है। जैसे लाऽल यहां ल का प्लुत उच्चारण यह प्रगट करता है कि वस्तु की लाली बहुत अधिक है।

इ, ए, ऐ ओ के ह्रस्व दीर्घ और प्लुत तीनों ध्वनियां पाई जाती हैं। अ, उ, ओ की ह्रस्व और दीर्घ दो ध्वनियां हैं। आ की ओ, आ, आऽ तीन ध्वनियां हैं। इन सब का विवेचन यथा स्थान किया जायेगा। गढ़वाली का झुकाव दीर्घत्व की ओर और कुमाउंनी का ह्रस्वत्व की ओर होने से गढ़वाली में ए, ऐ, ओ, औ की दीर्घ ध्वनियों का ही प्रयोग अधिक होता है। इसके विपरीत कुमाउंनी में इनकी ह्रस्व ध्वनियां ही अधिकांश काम में आती हैं।

मध्य पहाड़ी में स्वरों की संख्यां २१ हैं। जिन में अ, इ, उ, ऐ, ऐं, ओं, औं सात ह्रस्व स्वर; अऽ, ओ, आ, ई, ऊ, ए, ऐ, ओ, औ, नौ दीर्घ स्वर; आऽ, ईऽ, एऽ, ऐऽ, ओऽ, पांच प्लुत स्वर हैं। प्लुत स्वरों का प्रयोग केवल विशेषणों में गुणाधिक्य के लिए ही होता है।

ध्वनि विज्ञानी डेनियल जोन्स ने आट मान स्वरों की कल्पना की है जिससे यह पता चल जाता है कि किस भाषा की कौन स्वर ध्वनि किस मान-स्वर के समीप पड़ती है। मानस्वरों की कल्पना का आधार जिह्वा के अग्रभाग, पश्चभाग का ऊपर उठना या जिह्वा का समतल रहना है। अतः इस आधार पर स्वरों के अग्र, मध्य

और पश्च भेद हो जाते हैं। पुनः जिह्वा की ऊपर उठने की मात्रा के आधार पर स्वरों के संवृत, अर्द्ध संवृत, अर्द्ध-विवृत और विवृत भेद किए जाते हैं क्योंकि जिह्वा जितना ऊपर उठती है उतना ही मुख विवर बन्द हो जाता है। निम्नांकित सारिणी में म० प० स्वर ध्वनियों का स्थूल विवेचन किया गया है क्योंकि सूक्ष्म विवेचन यंत्रों द्वारा ही हो सकता है।

	अग्र	मध्य		पश्च
संवृत	इ, ई, ईऽ		—	उ, ऊ
अर्द्ध संवृत	ऐ, ए, एऽ			ओ, ओ, ओऽ
अर्द्ध विवृत	ऍ, ऐ, एऽ	आ,अऽ		औ, औ
विवृत			आं	आ, आऽ

१. अः—यह हिन्दी की ही भांति अर्द्ध विवृत मध्य स्वर है। यह ध्वनि दोनों बोलियों में है तथा शब्द के आदि मध्य और अंत तीनों स्थानों में पाई जाती है।

आदि – ग० अनोखो, कु० अनोखो (अनोखा)।

मध्य – ग० कुटणी, कु० कुटण (कूटती)।

अंत — ग० वोर, कु० पैक।

शब्द के अन्त में लिपि में रहते हुए भी भाषण में अ का प्रायः लोप हो जाता है। गढ़वाली में बीच का अ भी प्रायः उच्चारण में लुप्त हो जाता है जैसे – खिच्ड़ी।

कविता में अ के स्थान पर मात्रा पूर्ति के लिए अऽ भी हो जाता है।

ग०—गाडऽगवेरा अर पंछि पौनऽछया जो जाड़ान सुन्न होयां। (सदेई)

कु०—परवतऽरौणें भलो जन पड़े मालऽ। (मित्र विनोद)

२. अऽः—यह ध्वनि अ का दीर्घ रूप है। गढ़वाली में तथा भोजपुरी की केवल क्रियाओं में इसकी स्थिति है। अन्य भाषाओं में जिनका वैज्ञानिक अध्ययन हो चुका है। यह ध्वनि नहीं है।

ग० सऽर (बराबरी), चऽर (चरे), फऽल (फल), नऽल (नाल) घऽर (घर)।

१— अ ध्वनि का मूल—

प्रा० भा० आ० भा० के अ से—

मूल	प्रा०	ग०	कु०
अशोभन	असोहन	अस्वण्या	अस्वोण्यो
ब्राह्मण	ब्राह्मण	बामण	बामण
अन्धकार	अंधार	अन्धेरो	अन्यरो
सम्बल	सम्मल	सामल	सामल

२—प्रा० भा० आ० भा० के आ का स्थानापन्न।

आत्मन —›ग० अपणो; कू० आंपणों।

३—प्रा. भा. आ. भा. के इ, उ, ऋ का स्थानापन्न।

बिभीतिक:	बहेडओ	बहेड़ो (ग) बह्यडो (कु)
कुर्कुट:	कुक्कुड	कुख्ड़ों (ग) कुकडों (कु)
कृष्ण:	कण्ह	कनैया (ग–कु)
कौतुकिन्	कोतुकी	कुतकिया (कु)

४—प्रा. भा. आ. भा. के शब्दों तथा विदेशी शब्दों में स्वर-भक्ति के कारण :—

पर्वत-परवत। रक्त-रकत। मनुष्य-मनख। मित्र-मितर। स्तुति-असतुति। स्नान-असनान।

कत्ल-कतल। हुक्म-हुकम। कार्ड-कारड।

५— विदेशी शब्दों में भी विशेषकर फारसी शब्दों में आ के स्थान पर अ।

आसमान-असमान। आबाद-अबाद। आवाज-अवाज।

६— अंग्रेजी के ǝ और ɔ के स्थान पर।

एप्रिल-अप्रैल। लैम्प-लम्प। पैट्रोल-पतरौल। ऑर्डर्ली-अर्दली।

३. आ—विवृत-पश्च-स्वर है। इसका उच्चारण गढ़वाली और कुमाउंनी दोनों में हिन्दी के ही समान है।

आदि:—ग० आएन (आए), कु० आया (आए)।

मध्य:—ग० नामी (प्रसिद्ध), कु० नामि।

अन्त:—ग० कोणा (कोना), कु० कुणा।

४. आ अर्द्धविवृत ईषत्पश्च मध्य स्वर है यह केवल कुमाउंनी में है। यह स्थान और प्रयत्न दोनों दृष्टियों से अ और आ के बीच की ध्वनि है।

आदि:—कु० आंपणां (अपना)।

मध्य—कु० चोकलो (चौड़ा)

अन्त—कु० र्‌वाटां (रोटियाँ

५ आऽ:—आ का प्लुत प्रयोग हिन्दी में संबोधन, गाने या चिल्लाने में होता है किन्तु मध्य पहाड़ी में आ के प्लुत रूप द्वारा गुणाधिक्य प्रगट किया जाता है। म० लाऽल; कु० लाऽल, हि० अत्यन्त लाल।

आ ध्वनि का मूल।

१–प्रा. भा. आ भा. के अ के स्थान पर।

प्रा. भा. आ. भा. के संयुक्त व्यंजन से पूर्व का वर्ण वर्तमान भारतीय आर्य भाषाओं में दीर्घ हो जाता है। यही प्रवृति मध्य-पहाड़ी में भी पाई जाती है।

मूल	प्रा०	ग०	कु०
पत्र	पत्त	पात	पात
कण्टक	कंटग	काँडो	कानो
अश्रु	अस्सु	आँसू	आँसु
अद्य	अज्ज	आज	आज

२— प्रा० भा० आ० भा० के आ से—

मूल	प्रा०	ग०	कु०
माला	माला	माला	माला
आशा	आसा	आंसा	आश
आप्त	आत्त	आबत(संबंधी)	आवत
शृंगाल	सिआलो	स्याल	श्याल

३–हिन्दी के आकारान्त शब्द ग० प० ओकारान्त होते हैं इनका विकारी रूप आकारान्त होता है।

हि०	ग०	कु०
भाँजा → भांजे	भाणजो → भाण्जा	भाणजो → भाण्जा
बड़ा → बड़े	बड़ो → बड़ा	वड़ो → बांड़ां
घड़ा → घड़े	घऽड़ो → घऽड़ा	घड़ो → घाड़ाँ
अपना → अपने	अपणो → अपणा	आंपणो → आपणां

४–किसी शब्द में यदि अ के पश्चात प्रथम स्वर आ हो तो कुमाउँनी में अ का ओ और परवर्ती आ का भी ओ हो जाना है।

हि०	ग०	कु०
बड़ा	बड़ा (ब० व०)	बांड़ां
सारा	सर्रा	सांरां
दुर्दशा	दुरदशा	दुरदांशां
बकरा	बखरा (ब व)	बाकांरां

५—कई विदेशी शब्दों की आ ध्वनि या आ की निकटवर्ती ध्वनि हिन्दी के समान ही आ हो जाती है।

वि०	ग०	कु०
आदमी	आदिम	आदिमि
पादशाह	बादशा	बाशा
बाजार	बजार	बजार
अहसान	असान	आसान
लार्ड	लाट	लाट
स्टैम्प	इस्टाम	इस्टाम

६—इ—यह संवृत-अग्र-स्वर है। इसके सवर्ण ई और ईऽ है। ई तथा ईऽ का उच्चारण काल इ से क्रमशः दुगना और तिगुना होता है। यह ध्वनि भी शब्द के आदि मध्य और अन्त तीनों स्थानों पर पाई जाती है।

आदि—ग० इच्छा, कु० इच्छा

मध्य—ग० खिच्ड़ी, कु० खिचड़ी।

अन्त—ग० कणि (को), कु० कणि (को)।

गढ़वाली का दीर्घत्व की ओर झुकाव है अतएव इकारान्त शब्द कम हैं।

मध्य पहाड़ी की इ ध्वनि का मूल—

१—प्रा. भा. आ. भा. के अ की स्थानापन्न।

मूल	पा०	ग०	कु०
अम्लिका	—	इमली	इमलि
कन्दुकः	गेंदुअ	गिन्दु	गिंदवा

२—प्रा. भा. आ. भा. के इ, ई, ऋ, ए, ऐ, की स्थानापन्न।

मूल	प्रा०	ग०	कु०
विट	विट	विट	विट (उच्चवर्ण)
पीडा	पीडा	पिड़ा	पिड़ा
मृग	मिग्ग	मिरग	मिरग
शैवाल	सेवल	सिंवलो	सिंवलों

३—अपिनिहित और पूर्वस्वरागम के कारण—

स्त्री—इस्तरी (ग०) इस्तरि (कु०)

स्कूल—इस्कूल (ग०) इसकुल (कु०)

स्टैम्प-इस्टाम (ग०) इस्टाम (कु०)

४—विदेशी शब्दों में—

वि०	जिद्द	इज्जत	जामिन	रजिस्टर
ग०	झिद	इजत	जामिन	रजिस्टर
कु०	जिब	इजत	जामिन	रजिस्टर

७—ई:—कुमाउँनी में ई ध्वनि का प्रयोग अधिक नहीं है। इसके विपरीत गढ़वाली में ई का प्रयोग अधिक और इ का कम है। शब्द के अन्त में कुमाउँनी में ई ध्वनि बहुत कम पाई जाती है।

आदि—हिन्दी०, ईश्वर, ग० ईश्वर, कु० ईशर।

मध्य—हिन्दी नींद, ग० नींद, कु० नीन।

अन्त—हिन्दी लड़की, ग० नौनी, कु० जौरईं।

कुमाउँनी में केवल रईं लिखने में लिखा तो जाता है किन्तु भाषण में रई के स्थान पर रैं हो जाता है।

मध्य पहाड़ी की ई ध्वनि का मूल—

प्राचीन भारतीय आर्य भाषा के इ से।

मूल	प्रा०	ग०	कु०
लिक्षा	लिक्खा	लीखा	लीखा
तिक्त	तित्त	तीतो	तितो
विष्ठा	बिट्ठा	बीट	बीट

२—प्रा. भा. आ. भा. के ई से।

मू०	प्र०	ग०	कु०
क्षीर	खीर	खीर	खीर
शीतल	सीअल	सीलो	सीलो
गीत	गीत	गीत	गीत

३—प्रा. भा. आ. भा. के उ और ऋ से।

मूल	प्र०	ग०	कु०
शुक्ति	सिप्पि	सीप	सीप
पृष्ठ	पिट्ठ	पीठ	पीठ
तृषा	तिसा	तीस	तीश

४—प्रा. भा. आ. भा. की अन्तिम या ध्वनि गढ़वाली मे ई और कुमाउँनी में इ हो जाती है।

सं०	प्र०	ग०	कु०
क्षत्रियः	खतिया	छतरी	छतरि

पानीयम्	पाणिअ	पाणी	पाणि
द्वितीया	दुइआ	दुसरी	दोहरि

५–विदेशी शब्दों में इ या ई की तथा समीपवर्तिनी अन्य ध्वनि की स्थानापन्न।

वि०	ग०	कु०
कीसह	खीसा	खिसा
ज़मीन	जमीन	जमीन
खुशी	खुसी	खुशि
माइल	मील	मील

८–ई ऽ:–इस ध्वनि का प्रयोग केवल विशेषण शब्दों में होता है।

ग० भली ऽ ; कु० भली ऽ ; हि० बहुत भली।

९–उ:—यह संवृत-पश्च-ध्वनि है। गढ़वाली में इसके उच्चारण में होंठों को हिन्दी की अपेक्षा कुछ अधिक आगे बढ़ाना पड़ता है जिससे खिचाव भी अधिक हो जाता है। शीघ्र बोलने में यह अन्तर नहीं रहता। यह ध्वनि भी शब्द के आदि मध्य और अन्त सब स्थानों पर पाई जाती है।

आदि– हि० उखाड़कर, ग० उखाड़ीक, उपाड़िबेर

मध्य– हिन्दी—खुली, ग० खुली, कु० टुटि।

अन्त– हि० सत्तू, ग० सातु, कु० सातु

मध्य पहाड़ी की उ ध्वनि का मूल।

१–प्रा० मा० आ० मा० के उ से।

मूल	प्रा०	ग०	कु०
उद्घाटित	उग्घाडिअ	उघाड़ो	उघाडों
कुर्कुट	कुक्कुड	कुख्ड़ों	कुकड़ों
गुरु	गुरु	गुरु	गुरु

२–प्रा० मा० आ० मा० के ऊसे।

मूल	प्रा०	ग०	कु०
शूकर	सुअर	सुँगर	सुँगर
स्थूल	थुल्ल	ठुल्लो	ठुलो
उपरि	....	उब	उब
कूप	कूअ	कुआँ	कूँ

३—प्रा० मा० आ० मा० के ऋ, औ तथा व से।

सं०	प्रा०	ग०	कु०
वृद्ध	बुड्ड	बुड्या	बुड्ड
स्वर	सर	सुर	सुर
लौहकार	लोहआर	लुआर	लुहार

४—विसर्गान्त शब्दों के पूर्व यदि अ हो तो प्राकृत में विसर्ग का ओ हो जाता है और मध्य पहाड़ी में उ।

सं०	पा०	ग०	कु०
दीपकः	दिअओ	द्यु	द्यु
कूर्माचलः	कुम्माअओ	कुमाऊं	कुमउं (कुमौं)

५—विदेशी शब्दों में।

वि०	ग०	कु०
उज्र	उजर	उजर
बुक़्चह	बुकचा	बुकचा
मुक़ाम	मुकाम	मुकाम

१०—ऊः—यदि ध्वनि उ का दीर्घ रूप है। ऊ ध्वनि शब्द के आदि मध्य में तो हिन्दी के ही समान गढ़वाली और कुमाउंनी दोनों बोलियों में है किन्तु कुमाउंनी के अन्त मे बहुत कम पाई जाती है। कविता में मात्रा के लिए ही ऊ ध्वनि अन्त में पाई जाती है।

आदि—हि० ऊन, ग० ऊन, कु० ऊन।

मध्य—हि० सूंड, ग० सूंड, कु० सून।

अन्त—हि० आप, ग० अफूं, कु० आपूं।

मध्य-पहाड़ी की ऊ ध्वनि का मूल—

मूल	प्रा०	ग०	कु०
ऊर्ण	उण्ण	ऊन	ऊन
चूर्ण	चुण्ण	चूनो	चूनो

१—प्र० भा० आ० मा० के अन्य स्वरों तथा व से।

मूल	प्रा०	ग०	कु०
बिन्दु	बिंदु	बूंद	बूंद
शुष्क	सुक्क	सूको	सुको
लवण	लोण	लूंण	लुंण

२—वर्तमान कृदतों के अन्त में।

हि० मारता हूं, ग० मारदूं, कु० मारनूं।

३—विदेशी भाषा के शब्दों में।

वि०	ग०	कु०
ख़ून	खून	खून
ज़रूर	जरूर	जरूर
रूल	रूल	रूल

११. एः—यह अर्द्ध-संवृत-अग्र-स्वर है। इसके भी इ के समान ह्रस्व दीर्घ और प्लुत तीन रूप मध्य-पहाड़ी बोलियों में पाए जाते हैं। गढ़वाली में ए की ह्रस्व ध्वनि नहीं है। कुमाउँनी में ए की दीर्घ ध्वनि तभी होती है जब ए का परवर्ती प्रथम स्वर अ हो अन्यथा ए की सदैव ह्रस्व ध्वनि ही रहती है। उपबोलियों में विशेषकर खसपरजिया में ह्रस्व ए के स्थाम पर य हो जाता है। यह ध्वनि भी शब्द के आदि मध्य और अन्त सभी स्थानों में पाई जाती है।

आदि—हि० एक, ग० एक, कु० एक।

मध्य—हि० परमेश्वर, ग० परमेश्वर, कु० परमेश्वर।

अन्त—हि० आया, ग० आए, कु० के (कुछ)

म० प० की ए ध्वनि का मूल।

१—प्रा० भा० आ० मा० के ए से।

मूल	प्रा०	ग०	कु०
ज्येष्ठ	जेट्ठ	जेट	जेठ
देश	देस	देस	देस (मैदाना)
देवता	देवता	देवता	द्यवता
क्षेत्र	खेत्त	खत	खेत
रेख	रेख	रेखड़ो	रेखड़ो

२—प्रा० भा० आ० भाषा के अन्य स्वरों से।

मूल	प्रा०	ग०	कु०
लोहित	लोहिअ	ल्वे	ल्वे
अभ्यन्तर	भ्यंतर	भितर	भितेर
जाया	जाया	ज्वे	ज्वे
गैरिक	गेरिअ	गेरु	गेरु

३—गढ़वाली में भूतकालिक कृदंत का रूप एकारान्त होता है।

मारे, खाये, पाये।

४—विदेशी शब्दों में।

वि०	ग०	कु०
जेब	जेब	जैब
फ़ेल	फेल	फेल
जेल	जेल	जेहल
काग्रेस	काग्रेस	काग्रेस

१२. एं—यह ध्वनि ए की ह्रस्व ध्वनि है। यह गढ़वाली में नहीं है। ह्रस्वत्व की ओर झुकाव होने के कारण यह ध्वनि कुमाउँनी में ही है। जैसा कि पहले बताया जा चुका है कि यदि ए का परवर्ती प्रथम स्वर अ के अतिरिक्त अन्य हो

तो एं का ए हो जाता है जैसे—एक में ए दीर्घ है किन्तु एंकाक (एक का) ए के पश्चात प्रथम स्वर आ के होने से ए-ह्रस्व हो गई है। मेरो में ए के पश्चात स्वर ओ हैं अतएव ऐ-ह्रस्व है। कुछ उपबोलियों में एं का स्थान य ध्वनि ने ले ली है।

हि०	ग०	कु० (उपबोली)
मेला	मेंला	म्याळा
चेला	चेंला	च्याला
मेरा	मेंरा	म्यारा

यह प्रवृत्ति गढ़वाली की उपबोली बधाणी और राठी में भी पाई जाती है जो कुमाउँनी की समीपवर्तिनी हैं। शब्द यदि एक वर्ण का है तो अन्त्य ए दीर्घ रहती है। यदि शब्द में एक से अधिक वर्ण हों तो अन्त्य एं-ह्रस्व हो जाती है।

जैसे—ज्वे, ल्वे में ज्वे, ल्वे एक वर्ण होने से ए दीर्घ है किन्तु उलें, मनुवें में ऐ ह्रस्व है।

१३. एऽ:—यह ध्वनि केवल विशेषण शब्दों में पाई जाती है। विशेषण शब्दों में अन्त्य ए नहीं होती अतएव यदि अन्त्य स्वर अ हो और उससे पूर्व का स्वर ए हो तो एऽ प्लुत हो जाती है।

(हि० अत्यन्त सफ़ेद घोड़ा) ग० सफेऽद घोड़ों, कु० सफेऽद घ्वाड़।

१४. ऐ:—मध्य-पहाड़ी की बोलियों में ऐ के तीन रूप पाए जाते हैं और तीनों ही मूल स्वर हैं। हिन्दी में भी ऐ संयुक्त स्वर नहीं है केवल तत्सम शब्दों में ही इसका संयुक्त-स्वर के रूप में उच्चारण होता है। यह अर्द्ध-विवृत-अग्र स्वर है। इसका उच्चारण शब्द के आदि मध्य और अन्त तीनों स्थानों पर होता है।

आदि—हि० ऐब, ग० ऐ पड़ी (आ पड़ी), कु० ऐ बेर (आकर)

मध्य—हि० बैर, ग० ग्वैर (ग्वाला), कु० पैक (वीर)।

अन्त—हि० पै (पर), ग० गढै (गढ़ाई), कु० लड़ै।

ऐ ध्वनि का मूल—

प्राचीन भारतीय आर्य-भाषा की ऐ (अ+ए) ध्वनि किसी भी आ० भा० आ० भा० नहीं है। इसका स्थान सब में एक तुलनात्मक कम विवृत और कम अग्र ध्वनि ने ले लिया है। जैसे संस्कृत का चैत्र (च्+अ+ए+त्र) हिन्दी में चैत हो गया। अवधी में यह ध्वनि अ+इ के रूप में परिणत हो गई है चैत= चइत। हिन्दी में ऐ मूल स्वर है न कि संस्कृत के समान संयुक्त।

१-प्रा० भा० आ० भा० के ऐ से—

मू०	प्रा०	ग०	कु०
चैत्र	चैत	चैत	चैत
वैर	वेर	वैर	बैर
वैद्य	वेज्ज	वैद	बैद

२–प्रा० भा० आ० भा० या म० भा० आ० भा० के अय आय अव या आव से—

मूल	प्रा०	ग०	कु०
सहगामिनी	सहाइनी	सैंणि	सैंणि
रामायण	रामायण	रामैंण	रमैंण
पादलग्न	पायलग्ग	पैलागू	पैलगु
बधिर	बहिर	बैरो	बैंरो

३–प्रा. भा. आ. भा के अन्य स्वरों से—

मूल	प्रा०	ग०	कु०
भगिनी	बहिणी	बैण	बैंणि
मल	मल	मैंल	मैंल
कोऽपि	कोबि	क्वी	क्वै

४–विदेशी शब्दों से—

वि०	ग०	कु०
ऐब	ऐव	ऐब
क़ैद	कैद	कैंद
क़ायम	कैम	कैम
लाइन	लैन	लैन
साहब	साब	शैब

५–यदि संबन्ध कारक में भेद्य स्त्रीलिंग हो तो भेदक शब्द पर ऐ ज जोड़ दिया जाता है और की या कि का लोप हो जाता है।

राजै चेलि (कु), राजै नौनी (ग०), राजा की लड़की (हि०)

१५. ऐं—यह ध्वनि गढ़वाली तथा हिन्दी में नहीं है। अवधी और कुमउँनी दोनों में पाई जाती है। ऐ की अपेक्षा कम वितृत और अधिक पश्च है। यह ध्वनि कुमाउँनी के परसर्गों तथा पूर्वकालिक कृदंत में पाई जाती है।

कु० आँख है (आँख से)

कु० कुवँर थै कयो (कुवँर से कहा)

कु० भेंट है गइ (भेंट हो गई)

कु० जैद रछ (गया हुआ है।

१६. ऐ ऽ–यह ध्वनि भी अन्य प्लुत ध्वनियों के समान विशेषण में पाई जाती है। यदि अन्तिम स्वर ऐ ध्वनि हो तो प्लुत हो जाती है। यदि उपान्त्य स्वर हो और अन्तिम स्वर ह्रस्व हो तो ऐ प्लुत हो जाती है। कभी कभी सर्वनाम में तथा संज्ञा शब्दों में भी प्लुत ध्वनि पाई जाती है।

ऐऽन वखत (बिल्कुल ठीक समय पर,

छैंऽन करणों छ (अत्यन्त चैन कर रहा है)

१७. ओ:– यह हिन्दी की ही भांति अर्द्धविवृत-पश्च स्वर-है। इसके ह्रस्व दीर्घ और प्लुत तीनों रूप पाये जाते हैं। इसका मध्य-पहाड़ी में बहुत अधिक प्रयोग होता है। क्योंकि हिन्दी के आकारान्त शब्द म० प० में ओकारान्त हो जाते हैं। अतएव सभी क्रियार्थ संज्ञायें ओकारान्त होती हैं।

आदि—हि० ओखली, ग० ओखली, कु० उखली

मध्य—हि० गोल, ग० गोल, कु० गोल।

अन्त—ग० दूसरो, कु० दोहरो।

१. ओ ध्वनि का मूल—

प्रा. भा. आ. भा के ओ से—

मूल	प्रा०	ग०	कु०
गोष्ठ	गोट्ठ	गोठ	गोंठ
गोत्र	गोत्त	गोतर	गोतर
द्रोण	दोण	दोण (दूण)	दोण (दुण) (अनाज का का परिमाण)

२. प्रा. आ. भा. के अन्य स्वरों से—

मूल	प्रा०	ग०	कु०
मल	मल	मोल	मोब (गोबर)
परुत्	परु	पोरु	पोरु
पुस्तिका	पोत्थिआ	पोथी	पोथि

३. प्रा. भा. आ. भा. के उव और मव से—

मूल	प्रा०	ग०	कु०
स्वर्ण (सुवर्ण)	सोवण्ण	सोनो	सुन
रुत्	रुअ	रो	रो
अवश्याय	ओसास	ओंस	ओंस

४. विदेशी शब्दों में—

वि०	ग०	कु०
ज़ोर	जोर	जोर
कोतवाल	कोतवाल	कोतवाल
कोट	कोट	कोट
नोट	नोट	नोट

१८. ओं यदि ओ का प्रथम परवर्ती स्वर अ के अतिरिक्त कोई भी हो तो ओ ओं में परिणत हो जाता है। यही नियम एं के संबंध में भी है। ओं ध्वनि गढ़वाली कुमाउँनी दोनों में है। कुमाउँनी में आकारान्त और ओकारान्त शब्द के उपान्त्य एं का य हो जाता है। उसी प्रकार ओं का व हो जाता है। कुमाउँनी

में यह ध्वनि आरंभ में आने पर उ में परिणत हो जाती है। अन्त में ओ का दोनों बोलियों में प्राय: ओं हो जाता है।

हि०	ग०	कु०
बोझा	बोजों	ब्याजों
मेरा	मेरों	म्यारों
हमारा	हमरों	हमरों
चलना	चलणों	चलणों
खाएगा	खालों	खालों
गया	गए	गयों

१९. ओऽ—विशेषण शब्दों में गुणाधिक्य प्रगट करने के लिए यदि शब्द ओकारान्त हो तो ओ ध्वनि प्लुत हो जाती है।

कालोऽ(अत्यन्त काला), हरोऽ (अत्यन्त हरा), भलोऽ (अत्यन्त भला)

२०. औ:—यह अर्द्ध विवृत-पश्च-ध्वनि है। इसका ह्रस्वरूप भी है। गढ़वाली में प्राय: दोनों रूपों और कुमाउंनी में प्राय: ह्रस्वरूप का ही प्रयोग होता है।

आदि:—ग० औंदी (आती हुई)

मध्य:—ग० चौड़ा

अन्त:—लाखड़ौं को (लकड़ियों का)

२१. औं:—यह कम विवृत और कम पश्च है यह औ की ह्रस्व ध्वनि है।

आदि:— ग० औं (आंख) कु० औरन है (औरों से)

मध्य:— ग० बचौंला (बचाएंगे)

कु० म्हौंतारि (माता)

औ ध्वनि का मूल—

प्रा. भा. आ. भा. की ऐ और औ की संयुक्त-ध्वनियां प्राकृत काल में ए और ओ की मूल ध्वनियों में परिवर्तित हो गई हैं। ऐ और औ का आ. भा. आ. भा. में आगम तो हुआ है किन्तु उच्चारण भेद लेकर। अब ये संयुक्त-ध्वनियां नहीं हैं।

१. हिन्दी की भांति म० प० में भी औ ध्वनि का आगम मूल स्वर के रूप में हुआ है।

प्रा. भा. आ. भा. की अन्य ध्वनियों से

मूल	प्रा०	ग०	कु०
औषधि	ओसध	औखद	औखद
अपुत्रक	अउत्तओ	औतो	औतो
नाभि	णाभि	नौलो	नौळ

श्वसुर	ससुर	सौरो	सौर
विवाह	विआह	ब्यौं	ब्या

२. संबंध कारक में भेद्य यदि पुलिंग हो तो का विभक्ति लुप्त हो जाती है और भेदक शब्द पर औं जुड़ जाता है।

ग० राजौं नौनो, कु० राजौं च्यालो।

३. विदेशी शब्दों में—

हि०	ग०	कु०
औलाद	औलाद	औलाद
मौसिम	मौसिम	मौसिय
शौक	शौक	शौक
पौंड	पौंड	पौंड

। आ । अनुनासिक और अनुस्वार

जब स्वर के उच्चारण में स्वतंत्रियाँ तनने की अपेक्षा कुछ ढीली रहती हैं और वायु स्वर यंत्र से आगे बढ़कर अधिकांश मुख विवर से और अल्पांश नासिका विवर से बाहर निकलती है तब अनुनासिक ध्वनि उत्पन्न होती है। इसका चिन्ह हिन्दी म अर्द्धचन्द्रबिन्दु है। जैसे गाँव, ऊँचा। यह स्वतंत्र वर्ण नहीं है इसके विपरीत ङ, ञ, ण, न, और म नासिक्य व्यंजन हैं। स्पर्श व्यजनों मे प्रत्येक वर्ग का अन्तिम व्यंजन नासिक्य होता है। अत: मा० भा० आ० मा० में किसी व्यंजन से संयुक्त पूर्ववर्ती नासिक्य व्यंजन उसी वर्ग का पचम वर्ण होता है। जैसे गङ्गा, पञ्च, कण्ठ, अन्त, सम्पत्ति। अन्तस्थ और ऊष्म व्यंजनों से संयुक्त, पूर्ववर्ती नासिक्य ध्वनि उसके पूर्व स्वर पर एक पूर्ण बिन्दु रखकर प्रकट की जाती है जिसे अनुस्वार कहते हैं। जैसे—संयम, संवाद, संरक्षा, अंश, हंस, सिंह। कालान्तर में सुगमता के लिए अन्तस्थ और ऊष्म व्यंजनों की भाँति पूर्ववर्ती संयुक्त नासिक्य व्यंजन के स्थान पर पूर्व स्वर पर अनुस्वार रखने की प्रवृत्ति चल पड़ी। आजकल हिन्दी में सम्बन्ध के स्थान पर संबंध भी लिखते हैं साथ ही अनुनासिक के स्थान पर शीघ्रता के लिए अनुस्वार ही रख दिया जाता है। अनुस्वार और अनुनासिक के उच्चारण में अन्तर है। अनुस्वार के उच्चारण में जिह्वा अनुस्वार से पूर्व स्वर के पश्चात् नासिक्य व्यंजन के उच्चारण स्थान पर पहुँच जाती है और स्पर्शाधिक्य के साथ-साथ तब तक टिकी रहती है जब तक परवर्ती व्यंजन का उच्चारण न हो जाए, क्योंकि नासिक्य व्यंजन और परवर्ती व्यंजन का उच्चारण स्थान एक ही होता है। वायु नाक से ही निकलती है। इसके विपरीत अनुनासिक स्वर के उच्चारण में परवर्ती व्यंजन के उच्चारण स्थान से जिह्वा शीघ्र हट जाती है। अत: स्पर्श भी कम होता है और वायु नाक तथा मुख दोनों से निकलती है।

मध्य-पहाड़ी में स्वर भक्ति के कारण संयुक्त-वर्ण बहुत कम हैं। अतः अनुस्वार जो नासिक्य व्यंजन का ही हलंत रूप है प्रायः नहीं है। केवल तत्सम या विदेशी शब्दों में अनुस्वार पाया जाता है। लिखने में तो अनुस्वार काम में लाया जाता है किन्तु भाषण में नहीं। अनुस्वार का स्थान अनुनासिक स्वर ने ले लिया है। अनुनासिकता के कारण अर्थ परिवर्तन भी हो जाता है। जैसे भौ (भाव), भौं (भ्रू)। सौ (सैकड़ा), सौं (शपथ)। सभी ह्रस्व तथा दीर्घ स्वर अनुनासिक भी होते हैं। प्लुत अनुनासिक नहीं हैं।

	ग०	कु०
अँ	अँग्वाल	अँवाल [गलबाँही]
अऽ	घऽण [बड़ा हथौड़ा]	नहीं है।
आँ	नहीं है।	आँछो [स्वीकृति]
आँ	जाँदू [जाता हूँ]	जाँ हूँ
इँ	पिंजड़ो	पिंजरो
ईँ	सींग	शिंग
उँ	उँघणो	उँघणो
ऊँ	ऊँचो	ऊँचो
एँ	[नहीं है]	फेंकणो
एँ	बेंत	बेंत
ऐं	भैंस	भैंस
ओं	खाणों	खाणों
ओं	जोंगा [मूँछ]	सोंचणो
औं	भौं [भ्रू]	औं [आँव]
औं	औंदी	नहीं है।

मध्य-पहाड़ी की अनुनासिक ध्वनि का मूल—

१—स्वतः अनुनासिकता की प्रवृत्ति—

मध्य-पहाड़ी में स्वतः अनुनासिकता की प्रवृत्ति हिन्दी की अपेक्षा बहुत अधिक है। गढ़वाली में कुमाउँनी की अपेक्षा स्वतः अनुनासिकता कम है।

संस्कृत	हि०	ग०	कु०
....	अच्छा	अच्छो	आँछो
एषः	यह	यो	यो या यों
कदापि	कभी	कबि	कभइँ, कबै
गात्र	गात	गाति	गाँति
....	तय्यार	तय्याँर	तयाँर

दस्यु	डाकू	डाकू	डाँकु
पैसा	पैसा	पैंसा	पैसाँ
...	बाक़ी	बाकी	बाँकि
शोच	सोच	सोच	सोंच
यव	जौ	जौ	जौं
....	रहता है	रहँद	रूंछ

२—आश्रित अनुनासिकता।

यह अनुनासिकता या तो प्राचीन अथवा मध्यकालीन आर्य भाषाओं से प्राप्त हुई है या हिन्दी से। अनुनासिक स्वर प्राय: दीर्घ हो जाता है।

सं०	प्रा०	हि०	ग०	कु०
आम	आम	आँव	औं	औं
कंकती	कंकयो	कंघी	काँगलो	काँगिलो
दण्ड	दण्ड	दण्ड	डाँड	डाँड
वन्ध्या	बंझा	बाँझ	बाँज	बाँज
शृंखला	संकला	साँकल	साँगल	साँगल

३—कभी-कभी नासिक्य व्यंजनों के परवर्ती स्वर पर अनुनासिकता आ जाती है। जैसे—

हि०	ग०	कु०
मकई	मूँगरी	मुंगरि
मौसी	मौंसी	मौंसि
नवनीत	नौंण	नौंणि
नाम	नौं	नौं

४—विदेशी शब्दों में—

वि०	ग०	कु०
संदूक	सँदूक	सँदुक
कांग्रेस	काँग्रेस	काँग्रेस
पौंड	पौंड	पौंड

(इ) सँयुक्त स्वर तथा स्वर-सान्निध्य।

मध्य पहाड़ी में संयुक्त स्वर नहीं हैं। मूल स्वरों का इतना आधिक्य है कि उनसे ही काम चल जाता है। कुमाउँनी की प्रवृत्ति ह्रस्वत्व की ओर होने से दीर्घ स्वरों की आवश्यकता बहुत कम पड़ती है इसीलिए संयुक्त-स्वर भी नहीं हैं। स्वर सान्निध्य भी बहुत कम पाया जाता है जिसमें दो मूल स्वर एक दूसरे के समीप रहते

हैं, किन्तु आपस में मिलकर सन्धि उपस्थित नहीं करते। म. प. प्रायः वे आपस संधि उपस्थित कर लेते हैं।

	ग०	कु०
अइ	—	
अई	छई	रई (रैं)
आइ	गवाँइक (गवैंक)	थकाइ (थकै)
आई	पिसाई (पिसै)	आई (ऐ)
आऊ	आऊ (औ)	बाऊ (वौ)
आओ	खाओ	काओ (काला)
उई	अफुई	तुई

कुछ स्वर सान्निध्य केवल गढ़वाली में ही पाए जाते हैं।

एओ	वेओ (व्यो)	व्या
ओई	होई (ह्वै)	है
ओओ	होओ	हो
औआ	कौआ	कौ

संक्षिप्त निवेचन-मध्य-पहाड़ी में हिन्दी की अपेक्षा स्वरों की संख्या अधिक है। गढ़वाली में दीर्घ अऽ और कुमाउंनी में ह्रस्व औ ऐसी ध्वनियाँ हैं जो अन्य किसी प्रमुख आर्य भाषाओं में जिनका वैज्ञानिक अध्ययन हो चुका है। नहीं पाई जाती। हिन्दी में प्लुत प्रयोग केवल सम्बोधन के लिए होता है किन्तु मध्य-पहाड़ी में विशेषण में गुणाधिक्य के लिए अन्तिम दीर्घ स्वर को प्लुत कर देते हैं। यदि अंतिम स्वर दीर्घ न हो तो उपान्त्य स्वर प्लुत कर दिया जाता है। स्वतः अनुनासिकता भी मध्य-पहाड़ी में हिन्दी की अपेक्षा अधिक है। संयुक्त-स्वर नहीं हैं। सम्बन्ध कारक में को के की का कभी कभी लोप हो कर पूर्व स्वर पर औ या ऐ लगा दिया जाता है या प्रवृति हिन्दी में नहीं है।

कुमाउंनी में ह्रस्व स्वरों का और गढ़वाली में दीर्घ स्वरों का प्रयोग अधिक है। किसी शब्द में कुमाउंनी में अ स्वर के पश्चात् दूसरा स्वर यदि आ हो तो दोनों ओ में परिणत हो जाते हैं। गढ़वाली में ए ह्रस्व ऐ-ध्वनि भी प्रायः नहीं है। कुमाउंनी में यदि ह्रस्व ऐ या ह्रस्व ओं के पश्चात् आ या ओ ध्वनि आवे तो ह्रस्व ऐ और ह्रस्व ओं का क्रमशः य और व हो जाता है। कुमाउंनी में गढ़वाली की अपेक्षा स्वतः अनुनासिकता भी अधिक है।

(ई) व्यंजन।

क वर्गः— मध्य पहाड़ी में सभी व्यंजन हैं जो हिन्दी में पाए जाते हैं किन्तु उनके अतिरिक्त कुछ ऐसे व्यंजन भी हैं जो केवल मध्य-पहाड़ी में ही पाये जाते हैं। क, ख

और ग की दो दो ध्वनियाँ हैं। एक तो हिन्दी के समान ही जिह्वा के पिछले भाग से कोमल तालु को स्पर्श करने से उत्पन्न होती है जिसे कंठ्य[1] ध्वनि कहा जाता है। अरबी-फारसी के प्रभाव से हिन्दी में क़ ख़ और ग़ की अलिजिह्व ध्वनियाँ आ गई हैं जिन्हें क्रमशः क ख ग लिखा जाता है किन्तु मध्य-पहाड़ी में अत्यंत सीमित रूप से अलिजिह्व ध्वनियाँ हैं कोमलतालव्य ये वैदिक[2] ध्वनियाँ हैं। जिनका अवशेष मध्य-पहाड़ी मे रह गया है। क ख ग का क़ ख़ ग़ उच्चारण तभी होता है जब ये ध्वनियाँ गढ़वाली के ल़ ध्वनि या ल की स्थानापन्न कुमाउंनी की व ध्वनि के पूर्व आती हैं जैसे क़ालो (ग०) या क़ावो (कु०)। इन ध्वनियों का प्रयोग गढ़वाली में ही अधिक होता है क्योंकि ल़ ध्वनि कुमाउंनी में नहीं है। गढ़वाली और कुमाउंनी में अरबी-फारसी की क़, ख़, ग़ ध्वनियाँ नहीं हैं।

च वर्गः— चवर्गीय ध्वनियाँ संस्कृत में स्पर्श[3] मात्र मानी गई हैं किन्तु आ० भारतीय आर्य-भाषाओं में ये कुछ संघर्षी भी हो गई हैं अतएव हिन्दी में इन्हें स्पर्श-संघर्षी भी कहा जाता है। मध्य-पहाड़ी में ये ध्वनियाँ हिन्दी की अपेक्षा अधिक संघर्षी हैं। फ़ारसी के प्रभाव से हिन्दी में ज की एक संघर्षी ध्वनि ज़ भी है। जो मध्य-पहाड़ी में नहीं है।

ट वर्गः— टवर्गीय ध्वनियाँ आधुनिक बंगला में तालव्य-वर्त्स्य[4] कही गई हैं किन्तु खड़ीबोली की जन्मभूमि मेरठ तथा पश्चिमी रूहेलखण्ड में ये शुद्ध मूर्द्धन्य हैं। मध्य-पहाड़ी में भी ये ध्वनियाँ मूर्द्धन्य ही हैं। और संस्कृत में भी मूर्द्धन्य[5] हैं। बंगला पर कदाचित् अंग्रेजी प्रभाव हो। हिन्दी में भी कुछ लोग ट वर्गीय ध्वनियों का वर्त्स्य उच्चारण करते हैं। ट वर्गीय ध्वनियाँ का द्रविड़ भाषाओं से प्र० भा० आ० भा० में आगम माना जाता है।

त वर्गः— तवर्गीय ध्वनियाँ हिन्दी और मध्य-पहाड़ी में दन्त्य हैं। प्राप्ति शाख्यों[6] में इन्हें वर्त्स्य माना गया है। किन्तु संस्कृत में ये दन्त्य हैं। और हिन्दी तथा मध्य-पहाड़ी में भी दन्त्य ही हैं। न अभी भी वर्त्स्य ध्वनि ही है। जैसा कि यह प्रातिशाख्यों में मानी गई है। कुमाउंनी में न की एक महाप्राण ध्वनि न्ह भी है।

---

१ अकुहविसर्जनीयनां कंठः (सिद्धान्त कौमुदी)
२ हि. भा. इ. पृ. ११५।
३ कादयोमावसना स्पर्शाः।
४ च. व. ल. प. २६८।
५ ऋटुरषाणां मूर्द्ध।
६ च. व. ल पृ. २४३।

प वर्ग— हिन्दी तथा मध्य पहाड़ी की पवर्गीय ध्वनियों में कोई अन्तर नहीं है। फ को एक स्पर्श संघर्षी ध्वनि फ़ हिन्दी में फारसी के प्रभाव से आ गई है। यह ध्वनि मध्य-पहाड़ी में नहीं है। म की महाप्राण ध्वनि म्ह केवल कुमाउँनी में पाई जाती है। इसी वर्ग में दन्तोष्ठ्यव को भी लिया जा सकता है। यह ध्वनि मध्य-पहाड़ी में नहीं है। हिन्दी में भी इस ध्वनि का प्रयोग केवल संस्कृत के तत्सम शब्दों में या विदेशी शब्दों में होता है। जैसे–कविता, व्याख्या, वैरी।

अन्तस्थ—संस्कृत व्याकरणों के अनुसार य, र, ल, व अन्तस्थ[1] ध्वनियाँ हैं। क्योंकि इनका स्थान स्वर और व्यंजन ध्वनियों के बीच में है। चटर्जी महोदय ने प्रा. भा. आ. मा. की ध्वनियों का वर्गीकरण[2] करते हुए इँ (य्) और उँ (व) को ही अर्द्धस्वर माना है। जो क्रमशः तालव्य और द्व्योष्ठ्य ध्वनियाँ बताई गई हैं। ल को वर्त्स्य-पार्श्विक, र को वर्त्स्य लंठित ओर ल तथा ल्ह को मूर्द्धन्य-पार्श्विक माना गया है। इ॑ [य] ध्वनि पाणिनि के पूर्व ही य हो गई थी और उसका प्रयत्न कुछ संघर्षी होना आरम्भ हो गया था। ईस्वी सन् २०० पूर्व के लगभग य पूर्ण तालव्य-सघर्षी ध्वनि हो गई थी। कालान्तर में मध्य कालीन भारतीय आर्य भाषाओं में ज ने य का स्थान ग्रहण कर लिया था। वर्तमान भारतीय आर्य-भाषाओं में य ध्वनि पुनः आ गई है। मध्य पहाड़ी में भी यह ध्वनि पाई जाती है।

उँ (व) की दो[3] ध्वनियाँ हो गई थीं। दन्तोष्ठ्य संघर्षी व्यंजन 'व' और द्व्योष्ठ्य अस्विर व जिनके उदाहरण क्रमशः स्वामी और कविता में प्रयुक्त व की ध्वनियाँ हैं। ये ध्वनियाँ संस्कृत में भी अलग अलग थीं किन्तु संस्कृत व्याकरणचार्यो ने इनका अलग अलग भेद नहीं बताया है। केवल 'वकारस्य दंतोष्ठम्' कह दिया है। आ. भा में दंतोष्ठ्य व ध्वनि केवल तत्सम शब्दों में रह गई है। मध्य-पहाड़ी में यह ध्वनि नहीं है। इसका स्थान पूर्णरूप से ब ने ले लिया है।

ल ध्वनि वैदिक काल से अब तक वर्त्स्य ही हैं। हिन्दी तथा मध्य-पहाड़ी में उसका वर्त्स्य उच्चारण ही होता है। संस्कृत व्याकरणाचार्यों ने ल को दंत्य[4] ध्वनि माना है। ऐसा प्रतीत होता है कि संस्कृत में ल का कदाचित दंत्य उच्चारण न रहा हो। संभव है, दंतमूल के समीप वर्त्स्य होने से उसको दंत्यमान लिया गया हो। केवल गढ़वाली में दंताग्र ल ध्वनि अभी भी पाई जाती है।

---

१ स्पृष्ठं प्रयत्नं स्पर्शनाम्। इषत्स्पृष्टमन्तस्थानाम्। ईषद्विवृतमूष्माणाम्। विवृतं स्वराणाम्।

२ च. व. ल. पृष्ठ २४०।

३ च. व. ल.।

४ लृतुलसानां दंताः।

जैसा कि पहले बताया जा चुका है कि तवर्गीय ध्वनियाँ, र और ल प्रातिशाख्यों में वर्त्स्य बताई गई हैं किन्तु संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश तथा वर्तमान आर्य भाषाओं में त थ द ध दन्त्य हैं। यह परिवर्तन प्राकृतों से ही आरम्भ हो चुका था जिनका पूर्ववर्ती काल ६००[1] वर्ष ईस्वी पूर्व से २०० वर्ष ईस्वी पूर्व माना जाता है। पाणिनि के समय में यह परिवर्तन हो चुका था। र ल और न की ध्वनियों में यह परिवर्तन नहीं हुआ वे वर्त्स्य ही बनी रही। संभव है कि पाणिनि के जन्मस्थान उत्तर पश्चिम भारत में वर्त्स्य ल का स्थान दन्त्य ल़ ने ले लिया होगा जिसका अवशेष मध्य-पहाड़ी के गढ़वाली बोली में पाया जाता है। उत्तर पश्चिम की भाषाओं का मध्य-पहाड़ी पर प्रभाव स्पष्ट ही है। अन्य प्रदेशों में अर्थात् भारत के मध्य, पूर्व और दक्षिण में ल का वर्त्स्य उच्चरण ही रहा। पाणिनि के आधार पर ही संस्कृत के परवर्ती व्याकरणाचार्य ल को दन्त्य ध्वनि ही मानते रहे हैं। मध्य-पहाड़ी में वर्त्स्य ल की एक महाप्राण ध्वनि ल्ह भी है।

मध्य-पहाड़ी की गढ़वाली बोली में ल की जो दन्त्य ध्वनि है उसका उच्चारण जिह्वा के अग्र भाग को ऊपर के दाँतों के निम्न भागों के इषत् स्पर्श से किया जाता है। यह ध्वनि पूर्वी पहाड़ी अर्थात् नैपाली में नहीं है। कुमाउँनी में इस ध्वनि के स्थान में व ध्वनि हो जाती है। कुछ पश्चिमी पहाड़ी बोलियों में भी यह ध्वनि व में परिवर्तित हो जाती है।

ग०	कु०	जौ०
बादल़ (बादल)	बादव	बादौ

ल का मूर्द्धन्य उच्चारण मध्य-पहाड़ी में नहीं है। ग्रियर्सन महोदय ने भ्रम से मद्य-पहाड़ो में भी गुजराती और राजस्थानी के समान ही मूर्द्धन्य ल की कल्पना कर ली। उन्होंने जो उदाहरण दिए हैं उनसे पता चलता है कि उन्होंने गढ़वाली की दन्ताग्र 'ल' ध्वनि को जो अन्य वर्तमान भारतीय आर्य भाषाओं में नहीं पाई जाती मूर्द्धन्य ल समझ लिया। वैदिक काल में मूर्द्धन्य ल ध्वनि अवश्य थी जिसका महाप्राण रूप ल्ह् था ये दोनों ध्वनियाँ पाली में तो अवश्य हैं किन्तु परवर्ती प्राकृतों में नहीं पाई जातीं। संस्कृत मे भी ये ध्वनियाँ नहीं हैं। वर्तमान भारतीय आर्य भाषाओं में से गुजराती राजस्थानी तथा कुछ पश्चिमी पहाड़ी बोलियों में ल की मूर्द्धन्य ध्वनि ळ अभी शेष है। कुछ पश्चिमी पहाड़ी बोलियों में ल के स्थान पर ड़ भी हो जाता है।

हि०	गढवाली	कुमाउंनी	जौनसारी	क्यूंथाली
अन्नकाल	अकाल	अकाल या अकाव	काड़	अकाल

---

१ च. वै.-ल. पृ. ६७।

र ध्वनि मध्य-पहाड़ी में हिन्दी के ही समान वर्त्स्य है। किन्तु संस्कृत व्याकरणों में र को मूर्द्धन्य ध्वनि बताया गया है। प्रातिशाख्यों[1] के अनुसार र ध्वनि वर्त्स्य है। ऐसा ज्ञात होता है कि वैदिक में ही प्रान्तीयता के कारण र और ल की कई ध्वनियाँ हो गई थीं क्योंकि इन दोनों का उच्चारण वर्त्स से लेकर मूर्द्धा तक सब स्थानों से किया जा सकता है। यह आश्चर्य की बात है कि संस्कृत व्याकरणों में मूर्द्धन्य र और ऋ का ही उल्लेख है वर्त्स्य का नहीं। वर्तमान संस्कृत में र का वर्त्स उच्चारण ही होता है। यह भी ठीक है कि टवर्गीय ध्वनियाँ तथा प से पूर्व र का उच्चारण आज भी कुछ मूर्द्धन्य अवश्य हो जाता है साथ ही संस्कृत व्याकरण के अनुसार विशेष परिस्थितियों[2] में किसी पद में र और व के परे न दन्त्य का ण मूर्द्धन्य हो जाता है। र की इसी प्रवृति के कारण क़दाचित् संस्कृत व्याकरणों में र को मूर्द्धन्य माना गया हो। कुछ विद्वानों[3] का कहना है कि ड और ढ व्यंजनों के दो स्वरों के बीच में आने से प्राकृत काल में ही ड़ और ढ़ ध्वनियाँ हो गई थीं जो मूर्द्धन्य र रह् से सर्वथा साम्य रखती हैं। इसीलिए कदाचित् मूर्द्धन्य र की आवश्यकता न रही हो। मध्य-पड़ाड़ी में जैसा कि पहले बताया गया है कि केवल वर्त्स्य र है और उसकी महाप्राण ध्वनि रह् है।

ऊष्म—श ष स और ह ऊष्म ध्वनियाँ है। ष का स्थान प्राकृतों में स ने ले लिया था। पूर्वीप्राकृत मागधी ने श को और पश्चिमी प्राकृतों ने स को अपना लिया था। फलस्वरूप मागधी से निकली हुई बंगला आदि भाषाओं में बोलचाल में स के स्थान पर श का ही प्रयोग होता है। केवल मैथिली में मध्य देशीय प्रभाव के कारण स का ही प्रयोग होता है। अवधी,[4] ब्रज,[5] खड़ीबोली तथा पजाबी[6] में केवल स है। डिंगल में यद्यपि ध्वनियाँ स और श दोनों हैं किन्तु वर्णमाला में श नहीं है उसके स्थान पर भी स ही लिखा जाता है। अतः डिंगल[7] की रुचि भी स की ही ओर अधिक है। उत्तर पश्चिम को प्राकृतों में-अर्थात् दरद तथा पैशाची में-श, ष और स तीनों ध्वनियाँ बहुत पीछे[8] तक चलती रहीं। किन्तु कलान्तर में ष

१—च० व० ल० पृ० २४३

२—अट्कुप्वाङ्नुम् व्यवधनिऽपि ८.४.२ अष्ठाध्यायी।

३—हि० मा० इ० पृ० १८०।

४—बा० अ० मा० ५४।

५—धी० ब्र० व्यां ५४।

६—दु० प० हि० पृष्ठ १७०।

७—रा० मा० सा० पृष्ठ ३३।

८—च० व० ल० २४५।
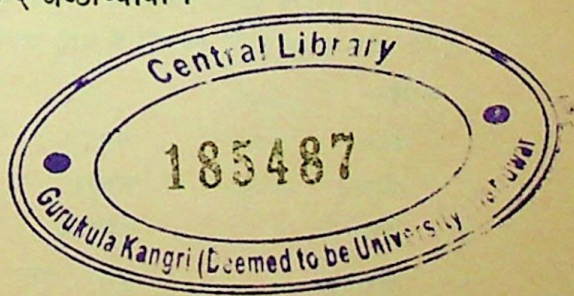
का लोप हो गया। उसका स्थान श या ख ने ले लिया। खस प्राकृतों में भी यही प्रवृति रही। पहाड़ी भाषाओं में विशेषकर मध्य-पहाड़ी में स और श दोनों ध्वनियाँ बनी हुई हैं किन्तु इनके प्रयोग में बहुत अधिक भ्रम है। श के स्थान पर स और स के स्थान पर श का प्रयोग सामान्य प्रवृति है। बहुत अधिक सीमा तक मध्य-पहाड़ी में ये व्यक्तिगत ध्वनियाँ हो गई हैं। यह बोलने वाले की प्रवृत्ति पर निर्भर है कि श का प्रयोग करे अथवा स का। जैसे, सिह या शिंग, सिउ या शिउ, सड़क और शड़क, सुआ या शुआ, यसो या यशो, आँसू या आँशू, सर्म या शर्म, माँस या माँश, सुप या शुप। गढ़वाली में प्राय: स का ही अधिक प्रयोग होता है। इसके विपरीत कुमाउंनी में श का अधिक प्रयोग है।

ग०	कु०
साहब	शैंब
दिसा	दिशा
देस	देश
से गए (सो गया)	शिण पड़ि गए।
सिउ	शिउ
सुप्पो	शुप
सींग	शिंग

पूर्वी पहाड़ी में भी श का अधिक प्रयोग नहीं है। जौनसारी तथा उससे पश्चिम की पहाड़ी बोलियों में श का प्रयोग बढ़ता जाता है। अत: स्पष्ट है कि स की अपेक्षा श का प्रयोग पहाड़ी बोलियों में अधिक है। किन्तु गढ़वाली में स का ही प्रयोग अधिक है और यह स्पष्ट ही खड़ीबोली और ब्रज का प्रभाव है।

गढ़वाली की अपेक्षा कुमाउंनी में ह ध्वनि का प्रयोग भी अधिक है इसीलिए कुमाउंनी की बोलियों में न, म, ल, और र की महाप्राण ध्वनियाँ भी पाई जाती हैं। गढ़वाली में यह प्रवृति नहीं है। गढ़वाली–दुसरी, भौत, मैना (महीना), औरों कूँ, लाँस कुमाउंनी-दुहरी, बहौत, म्हैन, होरन कणि, ल्हाँस (लाश)

क—वर्ग

क: यह अघोष-अल्पप्राण-स्पर्श कण्टय ध्वनि है। मध्य-पहाड़ी में यह ध्वनि शब्द के आदि और मध्य दोनों स्थानों में पाई जाती है।

आदि—

हि०	ग०	कु०
कीचड़	कचीर	कच्चार
कंघा	काँगलो	काँगिलो।
कुत्ता	कुकुर, कुता	कुकूर

कुल्हाड़ा	कुल्याड़ो	कुल्याड़ो
कवा	कांणो	को

मध्य—

हि०	ग०	कु०
लकड़ी	लाखड़ा	लाकड़ा
चाचा	काका	काका
जोंक	जोंको	ज्वाँको
झूमक	झुमका	झुमूक
पकाना	पकाणो	पकूणों

मध्य पहाड़ी की क ध्वनि का मूल—

१—प्राचीन आर्य भाषाओं की क, क्ष, स्क, ष्क, क्र, र्क से—

मूल	प्रा०	ग०	कु०
कीटकः	कीडय	कीड़ो	किड़ो
जलूका	जलूगा	जोंका	ज्वांका
बुभुक्षा	भुभुक्खा	भूक	भुक
स्कंध	खंध	कांधि	कान्
शुष्क	सुक्क	सूको	सुको
शुक्र	सुक्क	सूक	सूक
कुर्कुट	कुक्कुड	कुखुड़ों	कुकाड़ों

२—देशज शब्दों में—

ग०	कु०
कांथला	कोथाला (बड़ा थैला)
कंडाळी	कंडाई (एक प्रकार का झाड़)
कौंणि	कौंणि (अनाज विशेष)
राँको	राँकों (मशाल)

३—विदेशी शब्दों में—

वि०	हि०	ग०	कु०
काग़ज़	कागद	कागत	कागत
किफ़ायत	किफायत	किफैत	किफैत
इक़रार	इकरार	क़रार	करार
मालिक्	मालिक	मालिक	मालक़

कोट	कोट	कोट	कोट
बाक्स	बक्स	बक्स	बकस

क़:—यह अघोष-अल्पप्राण-स्पर्श-अलिजिह्व ध्वनि है। यह गढ़वाली के ल़ ध्वनि से पूर्व बोली जाती है। कुमाउँनी में प्राय: उसी व के पूर्व बोली जाती है जो ल़ की स्थानापन्न है।

हि०	ग०	कु०
काला	क़ालो	क़ावो
चढ़ाई	उक़ाल़	उक़ाव
किन्तु	अक़ाल	अकाल

ख:—यह अघोष-महाप्राण-स्पर्श कंठ्य ध्वनि है। और मध्य-पहाड़ी की दोनों बोलियों में पाई जाती है।

आदि—

हि०	ग०	कु०
खण्डहर	खंद्वार	खन्यार
—	खाडू	खाड़ु (मेढा)
कंथा	खंतड़ों	खाँतड़ों

मध्य—

हि०	ग०	कु०
अखरोट	अंखोड़, खरौंट	अखोड़

हि०	ग०	कु०
औषधि	औखद	औखद
मक्खियाँ	माखा	माखा

म० प० की ख ध्वनि का मूल—

शब्द के आदि के प्रा० मा० आ० मा० के क, ख, क्ष, एक की स्थानापन्न और मध्य में ख क्ष स्क तथा व की स्थानापन्न हैं।

मूल	पा०	ग०	कु०
कुण्ठ	कुंठ	ख्वींडो	खिव्रडो
कर्कटिका	कक्कडिया	कखड़ी	ककड़ि
खश	खस	खस्या	खश्या
खर्पर	खप्पर	खारो	ख्वारो
क्षार	खार	खोरो	ख्वारो
मक्षिका	मक्खिया	माखा	माखा

एकस्म	खंभ	खम	खम
मनुष्य	मणुस्स	मनख या मैंस	मैंश

देशज शब्दों में—

ग०	कु०
खाप	खाप (जबड़ा)
खार	खार (पच्चीस मन के लगभग परिमाण)

खोसड़ा (जूता)—

विदेशी शब्दों में—

वि०	ग०	कु०
खातिर	खातर	खातर
ख़सम	खसम	खसम
ख्वामिंद	—	ख्वेन
क़ीसह	खीसा	खिस
वक़्त	बगत	बखत

ख—यह ध्वति क़ के समान ही स्पर्श अलिजिह्व ध्वनि है। यह क़ की महाप्राण ध्वनि है। केवल ल़ के पूर्व या ल़ के रूपान्तर कुमाउँनी में व के पूर्व बोली जाती है।

ग०	कु०
उख़ाल	उख़ाव
खऽल़ो	खलो (खलियान)
खो़ल़ो	ख्वालो (मोहल्ला)

ग-यह घोष-अल्पप्राण-कण्ठ्य स्पर्श ध्वनि है। यह शब्द के आदि मध्य दोनों स्थानों पर पाई जाती है।

हि०	ग०	कु०
गाल	गलोड़ों	गलाड़ो
गात	गाति	गाँति
बाघ	बाग	बाग
कंघा	काँगलो	काँगिलो

म० प० की ग ध्वनि का मूल—

१—प्र० भा० आ० मा० के क, ख, ग, ग्र, ज से—

मूल	प्रा०	ग०	कु०
कंदुक	गेंदुआ	गिंदु	गिंदुवा

शुकर	सुअर	सुँगर	सुँगर
वक्र	बक्क	बाँगो	बाँगो
नख	णक्ख	नंग	नंग
गात्र	गात्र	गाती	गाँति
नग्न	णग्ग	नंगो	नाँगो
अग्रे	अग्गे	अगाड़ी	आगिन
यज्ञ	आग	जग्ग	जग

२—देशज शब्दों में—

ग०	कु०
गुलण्या	गुल्यो (मीठा)
गदेरा	गधेरा (छोटी नदी)
जूँगा	जुँगा (मूँछ)

३—विदेशी शब्दों में—

वि०	ग०	कु०
ग़रीब	गरीब	गरीब
नक़द	नगद	नगद
जगह्	जगा	जागा
टिकट	टिगट	टिगट

ग़ :—क़ और ख़ की ही भाँति ग़ भी स्पर्श अलिजिह्व ध्वनि है। इसका उच्चारण भी केवल ळ अथवा ळ के स्थानापन्न व से पूर्व होता है।

हि०	ग०	कु०
गलना	ग़ळणो	ग़वणो
गाली	ग़ाळी	गालि या ग़ार।

घ :—यह घोष–महाप्राण–स्पर्श कंठ्य ध्वनि है। यह आदि मध्य दोनों स्थानों पर पाई जाती है। मध्य में भाषण के समय घ के स्थान पर प्रायः ग बोला जाता है।

हि०	ग०	कु०
घुटना	घुँडो	घुनों
घोड़ा	घोड़ो	घ्वाड़ो
—	घाघ्‌रो (घाग्‌रो)	घाघ्‌रों (घागरो)
विघ्न	बिघन (विगन)	बिघन (बिगन)

म० प० की घ ध्वनि का मूल—

१—प्रा० भा० आ० भा० के घ, ग और गृ से—

मूल	प्रा०	ग०	कु०
घृणा	घिणा	घीण	घिण
घरट्ट	घरट्ट	घट	घट
गृह	घर	घर	घर
अग्रिम	अग्गिल्लिय	अगिलों	आघिलो

२—देशज शब्दों में—

ग०	कु०
घाघ्रो	घाघरों (घागरों)
घुग्तो	घुगतों (एक चिड़िया)
घ्वीड़	घ्विड़ (एक प्रकार का हिरण)

३—अरबी-फ़ारसी में घ ध्वनि नहीं है। अंग्रेज़ी में भी घ ध्वनि का प्रयोग बहुत कम होता है। घ का क़ ख़ और ग़ के समान स्पर्श संघर्षी अलिजिह्व ध्वनि भी नहीं है।

च—वर्ग

इस वर्ग की ध्वनियाँ हिन्दी में स्पर्श-संघर्षी[1] हैं। वैदिक काल में ये ध्वनियाँ केवल स्पर्शी[2] थीं। इस वर्ग की ध्वनियों का उच्चारण स्थान तालु है। म० प० में हिन्दी की अपेक्षा इस वर्ग की ध्वनियाँ अधिक संघर्षी हैं।

च—यह अघोष-अल्पप्राण-स्पर्शसंघर्षी-तालव्य ध्वनि है।

हि०	ग०	कु०
चिड़िया	चख़ुलो	चाड़ा
चौमास	चौमास	चौमास
अचानक	अचाणचक	अचाणचक
कीचड़	कचीर	कच्यार
कच्चो	काचों	काचो

च ध्वनि का मूल—

प्रा० भा० आ० भा० के च, त्य, त्स ध्वनियों से—

मूल	प्रा०	ग०	कु०
चतुर्मास	चाउमास	चौमासा	चौमासा

१—हि० भा० इ० पृष्ठ ११७।

२—कादयोभावसानः स्पर्शाः। सिद्धान्त कौमुदी।

चित्रल	चित्तल	चित्तल	चितल (हिरण)
भूमिचल	—	भुइँचलो	भुइँचाल
नृत्य	नच्च	नाच	नाच
वत्स	बच्छ	बच्चा	बच्चा

२—देशज शब्दों में—

ग०	कु०
चिफलो	चिफवो (फिसलनदार)
चुतर्यालों	चुतरौल (एक जानवर)

३—विदेशी शब्दों में—

वि०	ग०	कु०
चुगली	चुग्ला	चुगलि
चाकू	चक्कू	चकु
चिमनी	चिमनी	चिमनि

छ—यह अघोष—महाप्राण स्पर्श संघर्षी तालव्य ध्वनि है।

हि०	ग०	कु०
छाया	छैल	छैल
छिपकली	छिपड़ो	छिवाड़ो
मछली	माछा	माछा, मच्छ
बछड़ा	बाछी	बाछि
पीछे	पिछनै	पाछिन

छ ध्वनि का मूल—

प्रा० भा० आ० मा० के छ, श, श्च, ष, त्स्य, त्स और क्ष से—

मूल	प्रा०	ग०	कु०
छद	छत	छत	छत
शल्कल	सक्कल	छिकलो	छिकलो
पश्चात्	पच्छ	पिछनै	पाछिन
षड्शीति	छलसीइ	छियासी	छियासि
मत्स्य	मच्छ	माछा	माछा
मत्सर	मच्छर	मच्छड़	मछड़
क्षालन	छालन	छलणो	छावणो

देशज शब्दों में—

ग०	कु०
छबड़ी	छपड़ि (बड़ी टोकरी)
छनि	छानि (गोशाला)

३—सहायक क्रिया छ के रूप में जो हिन्दी की ही क्रिया की स्थानापन्न है और जिसका विस्तृत विवेचन क्रिया प्रकरण में किया गया है।

ज—यह घोष—अल्पप्राण—स्पर्श संघर्षी तालव्य ध्वनि है।

हि०	ग०	कु०
जाया	ज्वे	ज्वे
जुन्हाई	जून	जुन
जोंक	जोंको	ज्वाँको
वन्ध्या	बांज	बाँज
जागना	बिजणो	बिजँणो
कलह	कज्या	कजिया

ज ध्वनि का मूल—

१—प्रा० भा० आ० भा० की ज, ज्य, ज्व, द्य और य ध्वनियों से—

मूल	प्रा०	ग०	कु०
जन्मन्	जम्मण	जमणो	जामणो
ज्योत्सना	जुण्हा	जून	जुन
ज्वर	जर	जर	जर
विद्युत	बिज्जु	बिजली	बिजली
यंत्र	जंत	जाँवरो	जानरो (चक्की)

२—देशज शब्दों में—

ग०	कु०
जागरी	जगरिया (भूत प्रेत को नचाने वाला)
जड्या	जड्या (एक प्रकार की लाई)
जूँगा	जुँगा (मुँछ)

३—विदेशी शब्दों में—

वि०	ग०	कु०
जगह	जगा	जागा
जुल्म	जुलम	जुलुम
सजा	सजा	सजा

जेल	जेल	जेहल
जज	जज	जज

झ :—यह घोष-महाप्राण-स्पर्श संघर्षी-तालव्य ध्वनि है। मध्य पहाड़ी में इसका उच्चारण केवल शब्द के आरम्भ में होता है। मध्य में इसका स्थान ज ध्वनि ले लेती है।

हि०	ग०	कु०
झूला	झूला	झुल
झूमक	झुमका	झुमक
समझना	समजणो	समजणो
बोझ	बोजो	ब्वाजो

झ ध्वनि का मूल—

प्राचीन तथा मध्य कालीन भा० आ० भाषाओं के झ से—

मूल	प्रा०	ग०	कु०
झठि	—	झाड़	झाड़
झटिति	झड़ति	झट	झट
—	झंडलि	झंटेली	झंटेलि (पूर्व पति से उत्पन्न लड़की)
—	झड़ी	झड़	झड़
—	झमाल	झमेला	झम्यालो (झगड़ा)

ट—वर्ग

मध्य-पहाड़ी और हिन्दी की मूर्द्धन्य ध्वनियों में कोई अन्तर नहीं है। बंगला में ये ध्वनियाँ तालव्य-वर्त्स्य[1] हो गई हैं। और अंग्रेजी के टी और डी से मिलती हैं। कुछ लोगों का विचार है कि ये ध्वनियाँ अनार्य[2] भाषाओं से ली गई हैं। हिन्दी-भाषा-भाषी पढ़े लिखे लोगों के भाषण में भी कभी-कभी टवर्गीय ध्वनियों ने तालव्य-वर्त्स्य उच्चारण स्थान धारण कर लेती हैं। किन्तु खड़ी बोली की जन्म-भूमि मेरठ और पश्चिमी रुहेलखण्ड में मूर्द्धन्य ही उच्चारण होता है। सम्भव है कि पढ़े-लिखे लोगों पर अंग्रेजी का प्रभाव पड़ा हो। इस वर्ग की ड और ढ की ड़ और ढ़ उत्क्षिप्त मूर्द्धन्य ध्वनियाँ भी हैं। ये ध्वनियाँ प्रा. भा. आ. भा. में नहीं

१—च. व. ल. पृष्ठ २६८।

२—हि. भा. इ. पृष्ठ १६४।

थीं। ये आ० भा० आ० भाषाओं में पाई जाती हैं। गढ़वाली की ट ठ ड ढ ध्वनियों से पूर्व यदि अनुनासिकता हो तो कमाउँनी में ये ध्वनियाँ न में परिणत हो जाती है। यथा

ग० काँडो→कु० कानो; ग० ठूँट→कु० ठून; ग० ढूँढ़→कु० ढून; ग० डूँडो→कु० डुनो।

ट :—यह अघोष-अल्पप्राण-स्पर्श मूर्द्धन्य ध्वनि है। शब्द के आदि और मध्य दोनों स्थानों पर पाई जाती है।

हि०	ग०	कु०
टूट गई	टूटिगे	टूट गई
—	तमोटा	टमटा
कूटना	कुटणा	कुटणो
रोटी	रोटो	र्वाटो
चिल्लाहट	चिल्लाट	चिल्लाट

१—ट ध्वनि का मूल—

प्रा० भा० आ० भा० के ट, ड, त्त, र्त, ष्ठ ध्वनियों से—

मू०	पा०	ग०	कु०
टंक	टंक	टक्का	टका
खट्वा	खट्टा	खाट	खाट
पीडन	पिट्टण	पिटणो	पिटणों (पिटरण)
त्रुट	टुट्ट	टूट	टुट
कर्त	कट्ट	काट	काट
षष्ठ	छट्ट	छटो	छटो (छट)

देशज शब्दों में—

ग०	कु०
लाटों	लाटो (मूर्ख)
पटाई	पटई (थकावट)
चिट्टों	चिटो (सफेद)

विदेशी शब्दों में—

वि०	ग०	कु०
स्टैम्प	स्टाम	स्टाम
बूट	बूट	बूट
लैनटर्न	लालटीन	लालटिन

ठः—यह अघोष-महाप्राण स्पर्श मूर्द्धन्य ध्वनि है। इसका प्रयोग आदि और मध्य दोनों स्थानों पर होता है।

हि०	ग०	कु०
ठंडा	ठंडों	ठंडों
चोंच	ठूंट	ठूँन
निष्ठुर	निठुर	निठुर
पीठ	पूठो	पुठो

ठ ध्वनि का मूल—

प्रा० भा० आ० भा० के ट, ष्ट, ष्ठ, स्थ, न्थ से—

मूल	प्रा०	ग०	कु०
ठक्कुर	ठकुर	ठाकुर	ठाकुर
शुण्ठ	सुंठ	सूँठ	शुँठ
मुष्टि	मुट्ठि	मुट्ठी	मुट्ठि
पृष्ठ	पिट्ठ	पीठ	पीठ
स्थूल	थुल्ल	ठुल्लो	ठुलो
ग्रन्थि	गंठि	गाँठ	गाँठ

डः—यह घोष-अल्पप्राण-स्पर्श मूर्द्धन्य ध्वनि है। इसका प्रयोग म० प० में आरम्भ में ही होता है। मध्य में इसका प्रयोग तभी होता है जब पूर्व स्वर अनुनासिक हो या उससे पूर्व का व्यंजन नासिक्य हो अन्यथा मध्य में ड़ में परिणत हो जाती है।

हि०	ग०	कु०
डोली	डोली	डोलि
डोम	डूम	डुम
माँडा	माँडो	माँनो
निडर	निडर	निडर
दण्ड	डांड	डांन

ड ध्वनि का मूल—

प्रा० भा० आ० भा० के ट, ड, ण्ड, द से—

मूल०	प्रा०	ग०	कु०
डाकिनी	डाइणी	डागिण	डागिणि
डोम	डोंब	डूम	डुम
दंड	डंड	डाँड	डाँन
दस्यु	दस्सु	डाकू	डाँकु
शुण्डा	सुंडा	सूँड	सून

विदेशी शब्दों में—

वि०	ग०	कु०
डाक्टर	डाक्टर	डाक्टर
सोडा	सोडा	स्वाडा

ड़—यह घोष-अल्पप्राण उत्क्षिप्त मूर्द्धन्य ध्वनि है। यह ध्वनि शब्द के आरम्भ में नहीं है। केवल नासिक्य व्यंजन या अनुनासिक स्वर के पश्चात् यह ध्वनि प्रयुक्त नहीं होती अन्यथा ड का स्थान ग्रहण कर लेती है।

हि०	ग०	कु०
बड़ा	बड़ों	बड़ों
कीड़ा	कीड़ों	किड़ों
जड़ से	जड़ाते	जड़ै बटि
बुढ़िया	बुड़ली	बुड़िया
लकड़ी	लाखड़ा	लाकड़ा

ढ:—यह घोष-महाप्राण-स्पर्श मूर्द्धन्य ध्वनि है। यह शब्द के आदि में ही प्रयुक्त होती है मध्य में यह ढ़ में परिणत हो जाती है।

हि०	ग०	कु०
ढेला	ढेलों	ढेलों
ढील	ढील	ढील
ढक्कन	ढकण	ढाकण
ढोल	ढोल	ढोल

ढ—ध्वनि का मूल—

प्रा० भा० आ० भा० में यह ध्वनि बहुत कम प्रयुक्त हुई है। अत: म० प० में ढ, ट या थ आदि अन्य ध्वनियों से उत्पन्न हुई है। या मध्यकालीन भारतीय आर्य-भाषाओं की ढ ध्वनि म० प० में भी आ गई है।

मूल०	प्रा०	ग०	कु०
ढोल	ढढोल्ल	ढोल	ढोल
अर्द्ध तृतीय	अड्ढाइय	ढाइ	ढाइ
ढुंढनं	ढुंटुल्ल	ढुँऽणों	ढुंनणों
--	ढाक्कय	ढक्यों	ढक्युँ (ढका हुआ)
शिथिल	सिठिल या ढिल्ल	ढीलों	ढिलो

ढ़—यह घोष-महाप्राण उत्क्षिप्त मूर्द्धन्य ध्वनि है। यह सदैव दो स्वरों के बीच आती है। मध्य-पहाड़ी में प्राय: ड़ में परिणत हो जाती है। यह ध्वनि प्रा० भा० आ० भा०, के ट, थ आदि ध्वनियों की स्थानापन्न है। प्राकृतों से होती हुई म० प० में आई है।

मूल	प्रा०	ग०	कु०
पठ	पठ	पढ़	पढ़
क्वाथ	काट	काढ़ो	काढ़ो
—	सिड्ढो	सीढ़ी	सिढ़ि

ण—यह घोष—अल्प-प्राण स्पर्श अनुनासिक मूर्द्धन्य ध्वनि है। हिन्दी मे ण ध्वनि केवल तत्सम शब्दों मे पाई जाती है। मध्य-पहाड़ी में 'ण' ध्वनि ने बहुत अधिक सीमा तक हिन्दी के 'न' का स्थान ग्रहण कर लिया है। यह राजस्थानी का प्रभाव है। शब्द के आरम्भ में यह ध्वनि नहीं पाई जाती है। केवल प्राकृतों में ही यह शब्द के आरम्भ में होती है किन्तु वर्तमान भारतीय आर्य भाषाओं में से किसी में ण ध्वनि शब्द के आरम्भ में नहीं है।

हि०	ग०	कु०
कोना	कूणा	कुणा
अपना	अपणा	आपणा
वन	बण	बण
पानी	पाणी	पाणि
ढूँढना	ढुँडणो	ढुवणो

ण—ध्वनि का मूल—

मूल	प्रा०	ग०	कु०
प्राघूर्ण	पाहुण्ण	पौंणो	पौंण
लवण	लौण	लूण	नुण
पानीय	पाणीअ	पाणी	पाणि
नवनीत	णवणीअ	नौणी	नौणि
कम्पन	कंपण	काँपण	काँमण
स्वप्न	सुवण	स्वीणा	स्वैणा

देशज शब्दों में—

ग०	कु०
साणि	कणि (के लिए)
सैंणि	सैणि
गैणा (तारे)	—

३—धातुओं पर ना लगाकर हिन्दी में क्रियार्थ संज्ञा बनाई जाती है। मध्य-पहाड़ी में णो लगाकर क्रियार्थ संज्ञा बनती है। अतएव सब क्रियार्थ संज्ञाएं णान्त होती हैं केवल ड ढ ड़ और ढ़ के पश्चात् णो के स्थान पर नो हो जाता है।

ग०—खाणो	पीणो	हंसणो	पकड़नो	पढ़नो ।
कु०—खाणो	पिणो	हंसणो	पकड़नो	पढ़नो ।

त वर्ग

त वर्ग की ध्वनियाँ हिन्दी और म० प० में दन्त्य हैं। प्रातिशाख्यों[1] में इन्हें वर्त्स्य ध्वनि बताया गया है। संस्कृत में ये दन्त्य ध्वनियाँ हैं। जिह्वा का अग्रिम भाग आगे के दांतों के मध्य भाग को स्पर्श करके शीघ्र हट जाता है। इस वर्ग में केवल वर्त्स्य ध्वनि रह गई है।

त :—यह अघोष—अल्पप्राण—स्पर्श दन्त्य ध्वनि है। यह ध्वनि शब्द के आदि और मध्य दोनों स्थानों में पाई जाती है।

हि०	ग०	कु०
तालाब	तलौ	तलौ
ताँबा	तामों	तामो
भीतर	भितर	भितेर
तितली	पुतली	पुतइ
देवता	देवता	द्यवता

त ध्वनि का मूल—

प्रा० भा० आ० भा० के त से तथा संयुक्त व्यंजनों का सावर्ण्य के कारण त में परिणति से—

मूल	प्रा०	ग०	कु०
ताम्र	तम्म	तामो	तामो
तप्त	तत्त	तातो	तातो
तृष्णा	तिण्हा	तीस	तिस
पुत्तलिका	पुतलिया	पुतली	पुतइ
पात्रा	--	पातर	पातुर (वेश्या)
रिक्त	रित	रीतों	रितो

देशज शब्दों में—

ग०	कु०
चुतर्यो लो	चूतरौल (एक चतुष्पद पशु)
तिमला	तिमला (एक फल)
खिरतिणों	खिरतणों (नाराज़ होना)

१—च० ब० लै० पृष्ठ २४३।

वि० शब्दों में—त, ट, द की स्थानापन्न।

वि०	ग०	कु०
तलवार	तलवार	तलवार
तम्बाखू	तमखू	तमाखू
खातिर	खातिर	खातर
मदद	मदत	मदत
बाटल	बोतल	बोतल
पैट्रोल	पतरोल	पतरोल

थ :—यह अघोष-महाप्राण-स्पर्श-दन्त्य ध्वनि है। शब्द के बीच में कभी-कमी यह ध्वनि त में परिणत हो जाती है।

हि०	ग०	कु०
थोड़ा	थोड़ा	थ्वाड़ा
थैला	थैलो	थौलो
हाथी	हाति	हाति
थकावट	थकाइ	थकइ
थामना	थमणो	थामणो

थ ध्वनि का मूल—

१—प्रा. भा. आ. भा. में थ ध्वनि का बहुत कम प्रयोग है। थ से आरम्भ होने वाले शब्द बहुत कम हैं। प्राकृतों में संस्कृत के स्त और स्थ ध्वनियाँ थ हो जाती हैं वही ध्वनि म० प० और हिन्दी में अक्षुण्ण रहती हैं।

मूल	प्रा०	ग०	कु०
कथा	कहा	कथा	काथा
प्रस्तर	पत्थर	पाथर	पाथर
मस्तिष्क	मत्थाय	माथो	माथो
स्थान	थान	थान	थान (देवता का स्थान)
चतुर्थ	चउथ	चौथो	चौथो

देशज शब्दों में—

ग०	कु०
कोथलो	कोथवो (बड़ा थैला)
थोल	थोव या थोल (जानवर का होंट)

थमालो (लकड़ो काटने की दरांती) थमइ।

द—यह घोष-अल्पप्राण-स्पर्श-दन्त्य ध्वनि है। गढ़वालीं में शब्द का मध्यवर्ती

द कभी-कभी कुमाउँनी में न में परिणत हो जाता है यदि उसके पूर्व अनुनासिकता हो ।

हि०	ग०	कु०
दूसरी	दुस्री	दोहरि
दोपहर	दोफरा	दोफरि
बादल	बादल	बादव
नींद	निंद	नीन
हेमंत	ह्यूँद	ह्यून
खंडहर	खंद्वार	खन्यार

द ध्वनि का मूल—

प्रा. भा. आ. भाषा के द या द से संयुक्त व्यंजन के द में परिणत होने से—

मूल	प्रा०	ग०	कु०
दात्रिका	दत्तिया	दथुलि	दातुलि
देवता	देवता	देवता	यवता
मुद्रिका	मुद्दिआ	मुँद्ड़ी	मुँदड़ि
हरिद्रा	हलिद्दा	हल्दी	हल्दु
यंत्र	जंतर	जांद्रो	जानरों

देशज शब्दों में—

ग०	कु०
दोण	दुण (अनाज को नापने का एक परिमाण)
गदेरो	गदेरो (छोटी नदी)

वि० शब्दों में—

वि०	ग०	कु०
दरख़ास्त	दरख्वास	दरखास
ज़ियादा	ज्यादा	ज्यादा
नादान	नादान	नादान
याद	याद	याद
डजन	दर्जन	दर्जन

ध : यह घोष-महाप्राण-स्पर्श-दन्त्य ध्वनि है। मध्य में यह ध्वनि प्राय: द में परिणत हो जाती है। गढ़वाली की ध कभी कुमाउँनी में न हो जाती है यदि उससे पूर्व अनुनासिकता हो।

हि०	ग०	कु०
धुंधला	धुंदलो	धुंधलो

धुर	धूर	धुरा
दूध	दूद	दुध
बांधना	बाँदणो	बानणो
गधा	गदा या गदड़ो	गया

ध ध्वनि का मूल—

प्रा० भा० आ० भा० की ध ध्वनि या ध से संयुक्त व्यंजन के सावर्ण्य के कारण ध में परिणति—

मूल	प्रा०	ग०	कु०
धूम	धूम	धुवां	धुवां
धूलि	धूलि	धूल़	धुल
प्रधान	--	पधान	पधान
अंधकार	अंधआर	अधेरो	अन्यारो
गर्दभ	गद्दभ	गदा	गधा

देशज शब्दों में—

ग०	कु०
धाण	धाण (काम)
धार	धार (चोटी)
धौला (एक झाड़ी)	--

न:—घोष-अल्पप्राण-स्पर्श-वर्त्स्य-नासिक्य ध्वनि है। म० प० में न के स्थानपर विशेषत: ण का प्रयोग होता है।

हि०	ग०	कु०
माला	मालो	नावो
नख	नँग	नँग
अनोखा	अनोखो	अनोखो
चिनगारी	चिनगरि	चिनका
पोदिना	पोदिना	पोदिन

न ध्वनि का मूल—

१—प्रो० भा० आ० भा० के न तथा न में परिवर्तित ज्ञ, ण आदि ध्वनियों से—

मूल०	प्रा०	ग०	कु०
नप्तृ	--	नाती	नाति
निद्रा	णिद्दा	नींद	नीन
नख	ण्ह	नंग	नंग
ऊर्णं	उण्ण	उन	उन

खंडितद्वार	—	खंद्वार	खन्यार
शुण्ड	सुण्डा	सूँड	सून

२–देशज शब्दों में—

ग०	कु०
निंगलो	निंगावो (बारीक बाँस की जाति का पौधा)
निगँड (उद्योग रहित व्यक्ति)	
मँडुवा	मनुवा

विदेशी शब्दों में—

वि०	ग०	कु०
नज़दीक	नजीक	नजिक
ख़ामिन्द	—	रव्वेन
गुमान	गुमान	गुमान
जामन	जामन	जामिन
मेहनत	मीनत	मिनत

४—क्रियार्थ संज्ञा जिसका अंतिम उपान्त्य व्यंजन ड् ढ़ हो।

हि०	ग०	कु०
पढ़ना	पढ़नो	पढ़नो
लड़ना	लड़नो	लड़नो

५–कुमाउँनी के बहुबचन के रूप बनाने में न जुड़ता है।

दगड़िया (साथी) दगड़ियन, नौकर नौकरन, आदमि-आदमियन।

न्ह:—यह न की महाप्राण ध्वनि है। यह ध्वनि गढ़वाली में नहीं है केवल कुमाउँनी मे पाई जाती है। यह ध्वनि हिन्दी में नहीं है।

कु० न्हाति (नहीं है)
न्हातुं (नहीं हूं)
न्हातन (नहीं हैं)
न्हे गयो (चला गया है)

प वर्ग

म० प० और हिन्दी की पवर्ग-ध्वनियों में कोई अन्तर नहीं है। हिन्दी में फारसी शब्दों में एक दन्तोष्ठय संघर्षी ध्वनि फ़ भी आ गई है। मध्य-पहाड़ी में यह ध्वनि नहीं हैं। दन्तोष्ठय संघर्षी व भी म० प० में नहीं है। हिन्दी में भी यह केवल तत्सम शब्दों में पाई जाती है जैसे—कविता में। म० प० में इसका स्थान ब ने ले लिया है।

प:—यह अघोष–अल्पप्राण-स्पर्श ओष्ठ्य ध्वनि है। दोनों होंठों के स्पर्श से उत्पन्न होती है।

हि०	ग०	कु०
पहुँचा	पौंछो	पुजो
पाला	पाळो	पावो
लीपना	लीप्णो	लिपणो
अपना	अप्णो	आपणो
सूप	सूप्पो	सुप

प–ध्वनि का मूल—

प्रा० भा० आ० भा० के प या सावर्ण्य के कारण प से संयुक्त ध्वनि की प में परिणति या त्म और क्त ध्वनियों से।

मू०	प्रा०	ग०	कु०
पुष्कर	पोक्खर	पोखरी	पुखरि
कापटिक	कप्पडिअ	कप्टी	कपटि
कर्पट	कप्पड	कप्ड़ा	कापड़ा
उत्पाटन	उप्पडन	उपाड़नो	उपाड़नो
आत्मनः	अप्पणो	अप्णो	आपणो
शुक्ति	सिप्पि	सीप	सीप

देशज शब्दों में—

ग०	कु०
पैयाँ	पैंया (एक प्रकार का पेड़)
पुंग्ड़ो	पुंगड़ो (खेत)
पटासुलकणि	पटासुलकि (मुंह से सीटी बजाना)

विदेशी शब्दों में—

वि०	ग०	कु०
पोशाक	पोसाक	पुशाक
प्लैस्टर	पलस्तर	पलस्तर
पायजामा	पैजमा	पैजाम
पैटरोल	पतरोल	पतरोल
सिपाही	सिपै	सिपै

फ:—यह अघोष-महाप्राण-स्पर्श ओष्ठ्य ध्वनि है। शब्द के मध्य में प्रायः प में परिणत हो जाती है।

हि०	ग०	कु०
फाल	फाळो	फावा

फूफू	पूफू	फुफ्या
--	करमफुटो	करमफुटो
दोपहर	दोफरा	दोफरि
आप	अफूँ	आपूँ

फ, ध्वनि का मूल--

प्रा० भा० आ० भा० की प, फ ध्वनि से या सावर्ण्य के कारण अन्य ध्वनि का फ में परिणत होने से—

मूल०	प्रा०	ग०	कु०
फाल्गुन	फागुण	फागुण	फागुण
फुल्ल	फुल्ल	फूल	फूल
परशु	परसु	फरसो	परसो
पाश	पासु	फाँस	फाँस
स्फाटन	फालन	फाड़नो	फाड़नो
द्विप्रहर	दिप्पहर	दोफरा	दोफरि

देशज शब्दों में—

ग०	कु०
फफड़ा	फाफड़ा (छिलका)
फटकाल़ मारणी	फटकाल मारणि (कूदना)
कफू	कफुआ (एक चिड़िया)

विदेशी शब्दों में—

वि०	ग०	कु०
साफ़	साप	साफ
सफ़ेद	सफेद	सफेद
फ़रेब	फरेव	फरेव
फ़स्ल	फसल	फसल
कफ़न	कप्फन	कफन
फ़ीज़	फीस	फीस

ब:—यह घोष-अल्पप्राण स्पर्श ओष्ठ्य ध्वनि है। इसने दंतोष्ठ्य व का स्थान भी ग्रहण कर लिया है।

हि०	ग०	कु०
ब्राह्मण	बामण	बामण
बहुत	भौत	बहौत
गोबर	गोबर	गोबर

हि०	ग०	कु०
सुभीता	सुबीतों	सोबुतो
तभी	तबी	तबै

ब ध्वनि का मूल—

प्र० भा० अ० भा० के ब, व (दन्तोष्ठ्य) प० म० ध्वनियों से तथा सावर्ण्य के कारण संयुक्त व्यंजन का ब में परिणत होने से।

मू०	प्रा०	ग०	कु०
बलीबर्द	बलीबद्द	बल्द	बलद
बदर	बअर	बेर	बेर
बल्कल	बक्कल	बगोट	बक्कल
बेला	बेला	ब्यालि	बेलिया, (गतदिन)
सर्ब	सब्ब	सब	सब
व्याध्र	बग्घ	बाग	बाग
भगनी	बहिणी	बैण	बैण
सपादलक्ष	सवालक्ख	शिबालिक	शिबालिक

देशज शब्दों में—

ग०	कु०
बोल्या	बोल्या (मज़दूर)
बग्वाल	बग्बाल (दिवाली)
बोकणो	बोकणो (बोझ ले जाना)

वि० शब्दों में—

वि०	ग०	कु०
बग़ीचह	बगेचा	बगिचा
बस्तह	बस्ता	बस्ता
बिलायत	बिलैत	बिलैंत
खबर	खबर	खबर
जेनुअरी	जनबरी	जनबरी

भ :—यह घोष महाप्राण स्पर्श औष्ठ्य ध्वनि है। यह ध्वनि आरम्भ में पाई जाती है मध्य में ब में परिणत हो जाती है।

हि०	ग०	कु०
भेंट	भेंट	भेंट
भीतर	भितर	भितेर
भोर	भोल	भोल

अचम्भा	अचँभा	अचम्भा
बहनोई	भीना	भिना
कभी	कबि	कबै
लाभ	लाब	लाब
सांभर	साँबर	साँबर

भ ध्वनि का मूल—

प्र० भा० आ० भा० के शब्द के आरंभिक म, भ, ब और व ध्वनियों से या संयुक्त व्यंजन के म में परिणत से—

मू०	प्रा०	ग०	कु०
भांगिक	भांगिअ	भगैलो	भंगेलो (भांग के रेशों का वस्त्र)
बहिर्	बही	भैर	भैर
वेश	वेस	भेस	भ्येस
बुस	बुस	बूखो	भसो
भू	भू	भौं	भौं
महिषी	महिसी	भैंस	भैंस

देशज शब्दों में—

ग०	कु०
भेल	भ्यौल (अत्यन्त ढलवाँ पहाड़)
भुला	भुला (छोटा भाई)
भोटु (यह भोट-तिब्बत से निकाला हुआ शब्द भी हो सकता है)	भोटु (ऊनी भतोई)

म :—यह घोष—अल्पप्राण—औष्ठ्य स्पर्श अनुनासिक ध्वनि है। इसकी महाप्राण ध्वनि गढ़वाली में नहीं है किन्तु कुमाउँनी की किसी किसी बोली में पाई जाती है।

हि०	ग०	कु०
मछली	माछा	माछा
मुर्खियां	मुर्खा	मुरका
—	करम फुटो	करम फुटो
क्षमा	छिमा	छिमा

म ध्वनि का मूल—

प्रा० भा० आ० भ० के म से।

मूल	प्रा०	ग०	कु०
मधु	महू	मउ	मउ

मूषक	मूसग	मूसो	मुशो
मनुष्य	मनुस्स	मैंस (पति)	मैंश
श्मशान	मसाण	मसाण (भूत)	मसाण
लम्बपुच्छ	लम्मपुंछ	लमपुच्छ्या	लमपुछि (पुच्छलतारा)
धर्म	धम्म	धाम	धाम

देशज शब्दों में—

ग०	कु०
मैंण	मण (शहद की मक्खी के छत्ते का मोम)
म्याला	म्याल (खीरे आदि के बीज)
मंडुवा	मंडुवा (अनाज विशेष)

बिदेशी शब्दों में—

वि०	ग०	कु०
मज़दूर	मजूर	मजुर
मास्टर	मास्टर	मास्टर
ज़मीन	जमीन	जमिन
मैडम	मीम	मीम
खसम	खसम	ख़सम

म्ह :-यह घोष-महाप्राण स्पर्श ओष्ठय अनुनासिक ध्वनि है। यह गढ़वाली में नहीं पाई जाती है। किन्तु कुमाउंनी में है।

कुमाउंनी—म्हौतारि (माता)
म्हैन (महीना)

अन्तःस्थ

य:—यह घोष-अल्पप्राण-तालव्य-अर्द्धस्वर है। म. भा आ. भा. में य का स्थान ज ने ग्रहण कर लिया था मध्यवर्ती य ने स्वर का रूप ग्रहण कर लिया था। जैसे—यज्मान—जजमान। यंत्र-जंत्र। छाया—छाआ। अतएव तद्भव शब्दों में य ध्वनि बहुत कम मिलती है। किन्तु अन्य आ भा. आ. भा. के समान म. प. में भी य का पुनरागमन हो गया है। अतएव तत्सम शब्दों, कुछ सर्वनाम, क्रिया विशेषण, तथा क्रिया पदों में य ध्वनि आदि में पाई जाती है। मध्य में यह तद्भव शब्दों में भी पाई जाती है।

हि०	ग०	कु०
इस	ये	ये
यहां	यख	यां

ग्यारह	अग्यारा	ग्यार
था	छयो	छियो
विवाह	ब्यो	ब्या
बेला	ब्यालि	ब्याल

म, प. की य ध्वनि का मूल—

प्राचीन या मध्यकालीन भारतीय आर्य भाषाओं के शब्द के मध्य में स्थित य ध्वनि से अथवा स्वर ध्वनियों से—

मूल	प्रा०	ग०	कु०
एकादश	एआरह	अग्यारा	ग्यार
विवाह	विवाह	ब्यो	ब्या
गत:	गतो, गओ,	गये	गयो
श्रृंगाल	सिआल	श्याल	श्याल, श्याव

हिन्दी और गढ़वाली की ए के स्थान पर कुमाउंनी में य—

हि०	ग०	कु०
देवता	देवता	द्यवता
चेले	चेला	च्याला
मेरे	मेरा	म्यारा

विदेशी शब्दों में —

वि०	ग०	कु०
याद	याद	याद
यार	यार	यार
यक़ीन	यकीन	यकीन

र :—यह घोष-अल्पप्राण लुंठित वर्त्स्य ध्वनि है। यह शब्द के आदि और मध्य दोनों स्थानों में पाई जाती है।

हि०	ग०	कु०
रहते थे	रँहदा छया	रौंछियो
रोटी	रोटी	र्वाटा
भीतर	भितर	भितेर
गाय	गोरू	गोरू
चराना	चरौणो	चरूँण
परमेश्वर	परमेश्वर	परमेश्वर

र ध्वनि का मूल—

१—प्रा. भा. आ. भा. के ऋ और र से—

मूल	प्रा०	ग०	कु०
ऋक्ष	रिक्ख	रिक	रिक
रोष	रोस	रीस	रिश
कुक्कर	कुक्कर	कुकर, कुत्ता	कुकूर
वैरिन्	वेरिय	बैरी	बैरि
शत्रु	—	सतुरू	शंतुर

प्रा. भा. आ. भा. में र ल का अभेद[1] हो गया है। र के स्थान में ल और ल के स्थान पर र का प्रयोग होने लगा था। मध्यकालीन प्राकृतों में मागधी ने ल को अधिक अपनाया और शौरसेनी ने र को। म. प. में ल के स्थान पर र ध्वनि आ गई है।

मूल	प्रा०	ग०	कु०
अवेला	अवेला	अवेर	अबेर
लांगूलिन्	लांमूलि	लंगूर	लगुर

देशज शब्दों में—

ग०	कु०
चुतर्याली	चुतरौल (एक छोटा पशु)
गदेरो	गधेरो (छोटा नाला)
झगारो	झंगारो (अनाज विशेष)

विदेशी शब्दों में—

वि०	ग०	कु०
ज़रूर	जरूर	जरूर
राज़ी खुशी	राजी खुशी	राजि खुशि
दरखास्त	दरख्वास	दरखाश
रेल	रेल	रेल

ल :—यह हिन्दी की ही भाँति अल्पप्राण पार्श्विक वर्त्स्य ध्वनि है। संस्कृत में इसे दंत्य माना गया है। इसका प्रयोग म. प. में शब्द के आरम्भ और मध्य दोनों स्थानों पर पाया जाता है।

हि०	ग०	कु०
लोहा	लोखर	लू
लगूर	लंगूर	लंगुर

---

१. रलयोरभेदः।

लड़कियाँ	लाखड़ा	लाकाड़ा
तालाब	तलौ	तलौ
मिला	मिले	मिलो
बिल्ली	बिरालो	बिरालु

ल ध्वनि का मूल—

प्रा० भा० आ० भा० के ल, ड, त और र से—

मूल	प्रा०	ग०	कु०
लवण	लोण	लोण	लुण
लाट:	लाटो	लाटो	लाटो (स्पष्ट बोलने वाला)
अन्नकाल	अण्णकाल	अक़ाल्	अक़ाल या अकाव
आम्लिका	अँवलिया	इम्ली	इमिलि
शलभ	सलह	शलौ	शलु
तडाक:	तलाय	तलौ	तलौ
पीत	पीअ	पीलो	पीलो
हरिद्रा	हलिद्दा	हल्दा	हल्दा

देशज शब्दों में—

ग०	कु०
रौलो	रौल (छोटी नदी)
गुल्यण्या	गुल्यो (मीठा)

विदेशी शब्दों में—

वि०	ग०	कु०
लाश	लांस	ल्हाश।
साल	साल	साल
डबल	डब्बल	डबल (पैसा)
लार्ड	लाट	लाट
नंबर	लँबर	लँबर
मरहम	मल्लम	मल्हम।

ल की महाप्राण ध्वनि ल्ह कुमाउँनी की बोलियों में पाई जाती है। जैसे—गाला लगै लिह्या (गले लगा लेना)।

तब ल्हैक (तब तक)

ल्हाश (लाश)

ल़ :—यह ध्वनि केवल गढ़वाली में ही है। यह सदैव शब्दों के मध्य में होती है। कुमाउँनी में शब्द के मध्य में इसका स्थान प्रायः व ध्वनि धारण कर लेती है। यह ध्वनि हिन्दी में नहीं है। यह घोष-अल्पप्राण दन्ताग्र ध्वनि है।

हि०	ग०	कु०
बादल	वादल़	बादव
मल	मोल़	मोव (गोबर)
चावल	चौंल़	चावों
कम्बल	कामलो	कामवो
काला	क़ाल़ो	कावो
कृमि	किरमोलो	किरमोवो
नाला	नाल़ो	नावो
फाल	फाल़ो	फावो
बैल	बल्द	बलद
आलसी	आल़सी	आलसि
गलना	गल्ह्णो	गलणो या गवणो
निगलना	निगल़णो	निगवणो या निगलणो

कई विदेशी शब्दों में ल (वर्त्स्य) गढ़वाली में ल़ (दन्ताग्र) हो जाती है।

वि०	ग०	कु०
नालिस	नाल़िस	नालिस
रूमाल	रूमाल़	रूमाल

व :—यह द्व्योष्ठ्य-घोष-अल्पप्राण-अर्द्धस्वर है। प्रा० भा० आ० भा० में द्वयोष्ठ्य अर्द्धस्वर और दंतोष्ठ्य व्यंजन ध्वनि थी किन्तु व्याकरणों में केवल दंतोष्ठ्य अंतस्थ 'व' को ही स्वीकार किया गया है यद्यपि द्वयोष्ठ्य अर्द्धस्वर भी संस्कृत में था। हिन्दी और म० प० में दंतोष्ठ्य अंतस्थ 'व' जिसको भाषा विज्ञानी दंतोष्ठ्य संघर्षी व्यंजन मानते हैं ब में परिणत हो गया था। यथा, सं० वार्ता→ हि० बात→ग० बात, कु० बात। सं० सर्व→हि० सब→ग० सब, कु० सब। हिन्दी में यह ध्वनि तत्सम शब्दों में पुनः दंतोष्ठ्य ही उच्चरित होती है किन्तु म० प० में वह ब ही उच्चरित होती है। यथा, हि० कविता, कवि; ग० कबिता, कबि कु० कबिता, कबि।

द्व्योष्ठ्य अर्द्धस्वर जिसका विवेचन संस्कृत व्याकरणों में नहीं किया गया है उसका मूल उच्चारण हिन्दी तथा म० प० में पूर्ववत् चल रहा है। इसको यहां व ध्वनि चिह्न द्वारा व्यक्त किया गया है।

मूल	हि०	ग०	कु०
स्वामिन्	स्वामी	स्वामि	स्वामि
स्वाद	स्वाद	स्वाद	स्वाद

यह ध्वनि मूल रूप में प्रायः 'स' में संयुक्त होने पर ही प्राप्त होती है। किन्तु अब हिन्दी, गढ़वाली और कुमाउँनी में व्यापक रूप से प्राप्त होती है।

हि०	ग०	कु०
ग्वाला	ग्वालो	ग्वावो
वह	वो	उ
वहाँ	वख	वाँ
जवान	ज्वान	ज्वान

ऊष्म ध्वनियाँ

स :-यह अघोष अल्पप्राण वर्त्स्य[1] संघर्षी ध्वनि है। वैदिक काल में यह वर्त्स्य[2] ध्वनि थी और वर्तमान भारतीय आर्य-भाषाओं में भी यह वर्त्स्य ही है। संस्कृत व्याकरणों ने इसे दन्त्य[3] माना है। मध्य-पहाड़ी में यह हिन्दी के समान ही वर्त्स्य ध्वनि है। यह ध्वनि शब्द के आदि और मध्य दोनों स्थानों में पाई जाती है। यथा सच, भैंसों।

स ध्वनि का मूल—

प्रा० भा० आ० भा० के स, ष और श से।

मूल	प्रा०	ग०	कु०
स्वर्ण	सुवण्ण	णोनो	सुन
स्वप्न	सुविणा	स्वीणा	स्वैणा
सूर्य	सुप्प	सुप्पो	सुप्प
शलभ	सलह	सलो	सलूँ
श्रृंगाल	सिआल	स्याल	श्याल या श्याव
श्वास	सास	साँस	स्वाँस
दोष	दोस	दोस	दोस या दोश
रोष	रोस	रीस	रिश या रिस

विदेशी शब्दों में—

वि०	ग०	कु०
सस्ता	सस्तो	सस्तो

१—हि० भा० इ० पृष्ठ १२६ सारिणी।

२—च. व. ल. २४०

३—ऌतुलसानां दन्ताः। सिद्धान्त कौमुदी।

शर्त	सरत	सरेत
सरकार	सरकार	सिरकार
शलवार	सुलार	सुलार
खुशी	खुसी	खुशि

श :—अघोष अल्पप्राण तालव्य संघर्षी ध्वनि है। यह ध्वनि भी शब्द के आदि और मध्य दोनों स्थानों पर पाई जाती है। गढ़वाली में खड़ी बोली के अधिक प्रभाव से यह ध्वनि प्रायः नहीं है। कुमाउँनी में विकल्प से स और श दोनों का प्रयोग होता है। यथा श्यालो, यशो (ऐसा)

श ध्वनि का मूल—

प्रा० भा० आ० भा० के श, स या ष से–

मूल	पा०	ग०	कु०
श्वेत	सेत	सेतो	श्यतों
शुक्ल	सुक्ल	सुकिलो	शुकिलो
श्मशान	मशाण	मशाण	मशाण
सिंह	सिंघ	सिउ या स्यू	शिउ या श्यु
मनुष्य	मणुस्स	मैंस (पति)	मैंश (आदमी)
सूर्य	सुप्प	सुप्पो	शुप

विदेशी शब्दों में–

वि०	ग०	कु०
शराब	सराब	शराब
शोक	शोक	शोक
बादशाह	बादशा	बाशा

ह :—घोष महाप्राण स्वरयंत्रमुखी संघर्षी ध्वनि है। इसके उच्चारण में हवा स्वरयंत्र पर रगड़ के साथ निकलती है। और एक झोके के साथ खुले मुहँ से बाहर निकल जाती है। संस्कृत वैय्याकरणों ने इसे कंठ्य ध्वनि[1] माना है। स्वर यंत्र का ऊपरी भाग कंठ है। मध्य पहाड़ी बोलियों में खस प्राकृत के कारण अल्पप्राण[2] की ओर झुकाव अधिक है अतएव मध्य और अन्त की ह ध्वनि प्रायः लुप्त होकर अ में परिणत हो जाती है जो पूर्व स्वर से मिलकर दीर्घ ध्वनि बन जाती है। यदि पूर्व व्यंजन अल्पप्राण हो तो कभी महाप्राण हो जाता है।

१–अकुहविसर्जनीयानां कंठः।

२–लि. स. इ. ९।४ पृष्ठ ११६।

हि०	ग०	कु०
बहिन	बैण	वैण
हाथ	हात	हांत
हमारा	हमरो	हमारो
कहा	–	कयो
पहुँचा	पौछो	पुजो
बहुत	भौत	बहौत
चाहिये	चैंदा	चैन
कुल्हाड़ा	कुल्याड़ो	कुल्योड़
बाहर	भैर	भैर
पाहुना	पौड़ों	पौण
ब्राह्मण	बामण	बामण
ब्याह	ब्यो	ब्या

कुमाउँनी में कभी कभी इसका व्यतिक्रम भी दृष्टिगोचर होता है अर्थात अ के स्थान पर ह ध्वनि का आगम हो जाता है ।

हि०	ग०	कु०
और	और	हौर
छोड़ दिए	छोड़ि अलीं	छाड़िहालीं
देख लिया	देखि आले	देखिहालो

मध्य-पहाड़ी में ह ध्वनि शब्द के आरम्भ में ही रहती है । मध्य में प्रायः लुप्त हो जाती है ।

हि०	ग०	कु०
हल	हल	हल
–	ह्लीलो	ह्लिला (कीचड़)
हेमन्त	ह्यूँद	ह्युन
चाहिये	चैंदा	चैन
शाह	सा	शा
बहिन	बैण	वैण
कहा	—	कयो

ह ध्वनि का मूल—

प्राचीन भारतीय आर्य भाषाओं के अ या ह ध्वनि से तथा प्राकृतों के घोष महाप्राण व्यंजन ध्वनियों के हकार में बदलने से ।

मूल०	प्रा०	ग०	कु०
हस्तिन्	हत्थि	हाती	हाति
हेमन्त	हेमन्त	ह्यूँद	ह्यून
पुरोहित	पुरोहिअ	पुरैत	पुरहेत
अस्थि	अट्ठि	हड़को	हाड़
अकिंचन्	अकिंचण	होंचो	ह्वँचु

कभी कभी गढ़वाली में स के स्थान पर कुमाउँनी में ह ध्वनि हो जाती है। जसे, दुसरी–दोहरि।

देशज शब्दों में—

ग०	कु०
हिंसालु	हिंसाउ (एक प्रकार का जंगली फल)
हड़ो	हाड़ो (सूखा पेड़)

विदेशी शब्दों में–

वि०	ग०	कु०
हाजिर	हाजर	हाजर
बहादुर	बहादुर	बादुर
शहर	शऽर	शैर

स्वराघात

किसी शब्द में उच्चारण के समय किसी विशेष स्वर पर जोर देना या उस स्वर ध्वनि को ऊँची नीची कर लेना ताकि शब्द में विशेष अर्थ पैदा किया जा सके अथवा विशेष अर्थ न होते हुए भी किसी भाषा की भाषण प्रवृत्ति के कारण उपर्युक्त क्रिया का होना, स्वराघात कहलाता है। शब्द में किसी विशेष स्वर पर जोर देना या ध्वनि को ऊँची नीची करने के आधार पर स्वराघात दो प्रकार का होता है। बलात्मक स्वराघात और गीतात्मक स्वराघात। जब किसी शब्द के किसी विशेष स्वर के उच्चारण के समय अन्य स्वरों की अपेक्षा हवा झोके के साथ बाहर निकलती है तब बलात्मक स्वराघात होता है। इसके विपरीत किसी शब्द म किसी स्वर के उच्चारण काल में ध्वनि को ऊँची नीची कर लेना और स्वर यत्र में ध्वनि कंपनों की संख्या बढ़ा देना गीतात्मक स्वराघात होता है। कभी-कभी वाक्य में पूरे शब्द पर ही जोर दिया जाता है ताकि विशेष अर्थ प्रकट हो सके। इसे भी स्वराघात ही कहते हैं। यह वाक्यगत स्वराघात कहलाता है। स्वराघात का भाषण में बहुत बड़ा महत्व होता है। शब्दों के ध्वन्यात्मक परिवर्तन में स्वराघात का बहुत बड़ा भाग रहता है। किसी भी भाषा के स्वराघात अन्य ध्वनियों के समान ही दूसरी

भाषा-भाषी के लिए अत्यन्त प्रयत्न साध्य होते हैं। कोई व्यक्ति किसी दूसरी भाषा का पूर्ण पंडित होते हुए, उस भाषा के लिखित रूप पर पूर्ण अधिकार रखते हुए, ध्वनियों के उच्चारण स्थानों तथा प्रयत्नों की सूक्ष्मताओं को समझते हुए भी भाषण के समय ध्वनियों का यथातथ्य उच्चारण करने में असमर्थ हो जाता है। यह कमी अभ्यास से ही दूर होती है। और इस कमी के मूल में बहुत सीमा तक स्वराघात ही होता है। यह कठिनाई तब और भी बढ़ जाती है जब बलात्मक स्वराघात प्रधान भाषा-भाषी गीतात्मक स्वराघात वाली भाषा को बोलता है या गीतात्मक स्वराघात प्रधान भाषा-भाषी बलात्मक स्वराघात प्रधान भाषा बोलता है। उदाहरण के लिए जब कोई अंग्रेज हिन्दी बोलता है या कोई अनभ्यस्त हिन्दी भाषी अंग्रेजी बोलता है तब यह भेद स्पष्ट हो जाता है।

विद्वानों का विचार है कि वैदिक भाषा में गीतात्मक[1] स्वराघात बहुत अधिक था इसलिए स्वर के उदात्त अनुदात्त स्वरित तीन भेद किए गए थे। यह सम्भव है कि वैदिक ऋचाओं में विशेष कर सामवेद की ऋचाओं में तथा स्तोत्रों में गीतात्मक स्वराघात की प्रधानता रही हो किन्तु साधारण बोलचाल में भाषा बहुत अधिक गीतात्मक स्वराघात प्रधान न रही हो जितना कि समझा जाता है। संभव है कि बलात्मक स्वराघात भी कुछ मात्रा में रहा हो जैसे दुःख शब्द में उ पर बलात्मक स्वराघात है इसी प्रकार अलंकृत में ल से युक्त अ पर स्वराघात है। काकुवक्रोक्ति में तो स्पष्ट ही वाक्यगत बलात्मक स्वराघात होता है।

संस्कृत तथा मध्य कालीन भारतीय आर्य भाषाओं में गीतात्मक स्वराघात काव्य में चलता रहा हो किन्तु साधारण बोलचाल में वह बोलचाल की वैदिक भाषा की तुलना में और भी कम हो गया होगा। वर्तमान भाषाओ में भाषण में तो गीतात्मक स्वराघात प्रतीत नहीं होता किन्तु चटर्जी महोदय का यह कथन ठीक है कि बलात्मक[2] स्वराघात प्रायः सभी वर्तमान भारतीय आर्य भाषाओं में है। यद्यपि यह बलात्मक स्वराघात इतना स्पष्ट नहीं जितना अँग्रेजी में है। हिन्दी में प्रश्न तथा आज्ञार्थ वाक्यों में वाक्यगत बलात्मक स्वराघात स्पष्ट ही है। इसी प्रकार दडक छंदों में विशेषकर वीर रस संबंधी दंडक छंदों में रस परिपाक के लिए शब्द गत बलात्मक स्वराघात की आवश्यकता पड़ती है। वास्तविक बात तो यह है कि बोलचाल में स्वराघात होते हुए भी स्पष्ट नहीं है। यही अवस्था मध्य-पहाड़ी की भी है किन्तु मध्य-पहाड़ी में हिन्दी की अपेक्षा बलात्मक स्वराघात अधिक मात्रा में

१—च. व. लै. पृष्ठ २७६।

२-च. व. ले. पृष्ठ २७७।

है और गढ़वाली की अपेक्षा कुमाउँनी में अधिक है। गढ़वाली में दीर्घ स्वरों का पूरा उच्चारण होता है किन्तु कुमाउँनी में ह्रस्वत्व की प्रवृत्ति है, प्रत्येक दीर्घ स्वर का ह्रस्व रूप भी है। कुमाउँनी की दीर्घत्व की कमी अवश्य है किन्तु बलात्मक स्वराघात अधिक है। उदाहरण के लिए गढ़वाली मे दगड़ा शब्द में कहीं भी स्वराघात नहीं है। किन्तु कुमाउँनी में दगड़ा की अंतिम आ पूर्व अ को प्रभावित करती है जिससे ग से संयुक्त अ भी आ हो जाती है किन्तु दोनों आ ह्रस्व आ हो जाती हैं। शब्द दगाड़ा हो जाता है। भाषण में अंतिम आ कभी लुप्त भी हो जाती है। क्योंकि गा पर स्वराघात होता है। मध्य-पहाड़ी बोलियों की प्रवृत्ति दरद भाषाओं के प्रभाव से अल्पप्राणत्व की ओर अधिक है किन्तु स्वराघात के कारण हिन्दी और गढ़वाली का 'और' कुमाउँनी में 'हौर' हो जाता है। और गढ़वाली के देखियाल (देखलिया), देखिहाल हो जाता है। क्योंकि गढ़वाली के देखिआल के आ पर कुमाउँनी में बलात्मक स्वराघात होता है जो उसे आ के स्थान पर हा कर देता है।

मध्य पहाड़ी में बलात्मक स्वराघात के सम्बन्ध में हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं।

१—हिन्दी और गढ़वाली में स्वराघात की दृष्टि से अधिक अन्तर नहीं है। गढ़वाली में कभी विशेषणों में गुणाधिक्य प्रगट करने के लिये उपान्त्य स्वर पर स्वराघात होता है जैसे मिट्ठो। यह प्रवृति कुमाउँनी में भी है।

२—कुमाउँनी में ह्रस्वत्व की प्रवृत्ति अधिक है। अंतिम स्वर प्रायः ह्रस्व हो जाता है। बोलने में प्राय: उसके स्थान पर अ रह जाता है। अत: शब्द के उपान्त्य स्वर पर बलात्मक स्वराघात होता है चाहे वह ह्रस्व हो या दीर्घ। जैसे भितेँर, बैंणि, भिंना, भुलि, चौंड़ो, च्याला आदि शब्दों में अंतिम स्वर लिखा तो अवश्य जाता है किन्तु भाषण में स्वर ध्वनि आधी रह जाती है या अ हो जाती है फलस्वरूप उपान्तय स्वर क्रमशः ए, ऐ, इ, उ, औ, आ पर बलात्मक स्वराघात होता है।

३—गढ़वाली में हिन्दी[१] की ही भाँति अ को छोड़कर अंतिम स्वर पूरा उच्चारित होता है अतः उपान्त्य स्वर पर स्वराघात तभी होता है जब अंतिम स्वर अ हो। जैसे बल्द में ब पर स्वराघात है क्योंकि अतिम अ का भाषण में लोप हो जाता है। इसी प्रकार बाल, गीत उपान्त्य स्वर आ और ई पर हलका बलात्मक स्वराघात है।

४—गढ़वाली में या हिन्दी में जब अ ध्वनि मध्य में आती है तो प्रायः लुप्त हो जाती है और उससे पूर्व स्वर पर स्वराघात होता है जैसे—किल्कार (चिल्लाहट) में ल

१—का हि० व्या—पृष्ठ ५०।

से संयुक्त अ का भाषण में लोप हो जाता है और उसके पूर्व इ पर स्वराघात होता है।

५—कुमाउँनी में यदि तीन स्वर ध्वनियों का शब्द हो और तीनों ह्रस्व हों तो बीच के स्वर पर स्वराघात होता है। जैसे—हि० खिचड़ी, ग० खिच्ड़ी, कु० खिचड़ि (च पर स्वराघात है)। कभी कभी तीन ह्रस्व स्वरों के शब्द में बीच का स्वर दीर्घ भी हो जाता है। जैसे—हिन्दी—भीतर। गढ़वाली—भितर। कुमाउँनी—भितेर।

६-तीन स्वर ध्वनि वाले शब्दों में मध्य की ध्वनि अ हो और गढ़वाली में अ का लोप हो जाता है और कुमाउँनी में पूर्व स्वर दीर्घ हो जाता है।

ग० कम्लो, कु० कामलो;
ग० मन्नो, कु० मारणो।
ग० खल्ड़ो, कु० खालड़ो।

३—शब्द।

अ—शब्द का सामान्य रूप

१—मध्य पहाड़ी में शब्द स्वर व्यंजन किसी से भी आरम्भ हो सकता है। किन्तु संयुक्त व्यंजनों से शब्द का आरम्भ नहीं होता है। कोई व्यंजन य और व से संयुक्त होकर शब्द के आरम्भ में हो सकता है जैसे—प्यास, ध्वे, अवे, ज्वे, च्याला। यह प्रवृति हिन्दी में भी है। कुमाउँनी में म्हे गयो (चला गया), म्होतारि माता,) ल्हाश शब्दों में आदि में संयुक्त व्यंजन हैं किन्तु वास्तव में न्ह और ल्ह म्ह क्रमशः न, म और ल की महाप्राण ध्वनियाँ हैं जिनके लिपि चिन्ह नहीं हैं। इसीलिए अर्द्ध न म और ल से ह का योग किया जाता है। जिन विदेशी शब्दों के आरम्भ में संयुक्त-व्यंजन हैं उनके आरम्भ में स्वरागम हो जाता है। जैसे स्कूल का मध्य-पहाड़ी में इस्कूल हो जाता है। दो स्वरों से भी शब्द का आरम्भ नहीं होता है। लि० स० इ० में वि (उस) के लिए कही उइ और कही वि लिखा गया है। किन्तु उच्चारण में वि ही बोला जाता है। ड़ ढ़ से शब्द का आरम्भ नहीं होता जैसे कुछ पश्चिमी पहाड़ी[१] बोलियों में पाया जाता है। ण से भी शब्द का आरम्भ नहीं होता। ये प्रवृतियाँ मध्य-पहाड़ी की हिन्दी से मिलती हैं। गढ़वाली की दन्ताग्र ल़ ध्वनि भी शब्द के आरम्भ में नहीं आती है।

२—मध्य-पहाड़ी में स्वरागम के कारण शब्द के मध्य में भी संयुक्त-व्यंजन बहुत कम पाए जाते हैं। गढ़वाली में संयुक्त-व्यंजन कुमाउँनी की अपेक्षा अधिक हैं।

१—लि० स० इ० ९/४ पृष्ठ ५६०।

गढ़वाली में हिन्दी की ही भाँति भाषण में कभी मध्यवर्ती अ का लोप हो जाता है। जैसे—मारणो (मारना)-मन्नो तथा खिचड़ी का उच्चारण के समय खिच्ड़ी हो जाता है। इसके विपरीत कुमाउँनी में खिचड़ि में च का पूर्ण उच्चारण होता है। शब्द के मध्य में स्वर सान्निध्य प्राय: नहीं है। हिन्दी का पिसाई शब्द मध्य पहाड़ी में प्राय: पिसै हो जाता है इसी प्रकार सिपाही का प्रायः सिपै हो जाता है।

३—लिखने में कोई शब्द व्यंजनांत नहीं होता किन्तु भाषण में अकारान्त शब्दों के अन्तिम अ का लोप हो जाता है जैसे चिलम भाषण में चिलम् रह जाता है। कुमाउँनी में यह प्रवृति अन्य स्वरों के साथ भी पाई जाती है। भाषण में अंतिम स्वर प्राय: ह्रस्व ही नहीं हो जाता अपितु ध्वनि भी कश्मीरी[२] की भाँति आधी रह जाती है जिसे कश्मीरी में मात्रा स्वर कहते हैं। कौवा, विरालि, माटु छोटो का अंतिम अ, इ, उ, ओ केवल फुसफुसाहट वाले स्वर रह जाते हैं। और वे कौव, विराल, माट, छोट सुनाई देते हैं।

४—हिन्दी के अकारान्त शब्द मध्य-पहाड़ी में ओकारान्त हो जाते हैं यही प्रवृत्ति ब्रज और राजस्थानी में पाई जाती है।

ख० बो०	ग०	कु०
भला	भलो	भलो
भौंरा	भौंरो	भौंरो
आवंला	औंलो	औंलो
मोठा	मिट्ठो	मिठो
काला	क़ालो	कावो
चलना	चलणो	हिट्णो

किन्तु इस नियम के अपवाद भी पाये जाते हैं जैसे—

ख० बो०	ग०	कु०
राजा	रजा	राजा
जीजा	भोना	भिना
चाचा	काका	कका
मामा	ममा	ममा
बनिया	बण्याँ	वणियाँ

किन्तु यह अपवाद केवल संज्ञा शब्दों में ही पाये जाते हैं। विशेषण अकारान्त शब्द मध्य पहाड़ी में अनपवाद ओकारान्त हो जाते हैं।

१—लिं० स० इ० ८/२ पृष्ठ २५९।

५--सभी ओकारान्त शब्दों के विकारी रूप मध्य पहाड़ी में आकारान्त होते हैं। जैसे-घोड़ो-घ्वाड़ा। भलो-भला।

६—हिन्दी के अकारान्त शब्द मध्य-पहाड़ी में भी अकारान्त ही रहते हैं।

ख० बो०	ग०	कु०
घर	घर	घर
वन	वण	वण
चौमास	चौमास	चौमास
भात	भात	भात
लाल	लाल	लाल

७—हिन्दी के शब्दान्त अन्य स्वर प्रायः गढ़वाली में ज्यों के त्यों रहते हैं या परिवर्तन बहुत कम होता है। किन्तु कुमाउँनी में दीर्घ के स्थान पर ह्रस्व हो जाता है। जैसे—

ख० बो०	ग०	कु०
खिचड़ी	खिच्ड़ी	खिचंड़ि
साढ़ू	साढ़ू	साढ़ु

८—जिस प्रकार अँग्रेज़ी में डू या विल आदि के साथ नाट क्रिया बिशेषण जोड़ कर डोन्ट या वोन्ट शब्द बनते हैं इसी प्रकार कुमाउँनी में भी इसका एक उदाहरण मिलता है। जैसे—न्हाति (नहीं है)। इसका बहुवचन रूप न्हातन (नहीं हैं) हो जाता है।

विको क्वै च्योलो न्हाति। उसका कोई लड़का नहीं है।

विको क्वै च्याला न्हातन। उसके कोई लड़के नहीं हैं।

न्हाति वास्तव में नास्ति का बिगड़ा हुआ रूप प्रतीत होता है। इसका पूर्ण विवेचन क्रिया प्रकरण में किया गया है। यह रूप पश्चिमी पहाड़ी[1] बोलियों में भी पाया जाता है।

आ—शब्द समूह।

किसी भाषा के स्वरूप को निश्चित करने के लिए शब्द समूह स्थाई तत्व नहीं है। द्रविड़ भाषाओं में संस्कृत के बहुत अधिक शब्दों ने प्रवेश पा लिया है, किन्तु इन्हीं शब्दों के आधार पर द्रविड़ भाषायें आर्य-भाषाओं के अन्तर्गत नहीं आ सकतीं अधिक शब्दों के परिवर्तन में सबसे प्रबल प्रभाव राजनैतिक होता है। मध्य-पहाड़ी देश में जैसा कि ऐतिहासिक परिचय के प्रसंग में बताया गया है अनार्य जातियाँ रहती

१-लि० स० इ० ९/ भाग ४ पृ० ३९४; ५६८।

थीं। उनके बाद खसों का प्रवेश हुआ। आर्य-क्षत्रिय राजाओं ने भी अपने राज्य स्थापित किए। नवीं दसवीं शताब्दी के पश्चात् गुर्जर-राजपूतों ने इस प्रदेश में प्रवेश करना आरम्भ किया। मुसलमानों के राज्यकाल में भारत के भिन्न भागों से लोग आकर इस प्रदेश में बसते गए उनके साथ उनकी प्रान्तीय भाषाओं के शब्दों के अतिरिक्त अरबी-फारसी और तुर्की भाषा के शब्द इस प्रदेश में पहुँचे। अंग्रेजी राज्य की स्थापना के पश्चात् अदालती लिपि देवनागरी होते हुए भी भाषा उर्दू हो गई अतएव इस युग में अरबी-फारसी शब्दों का आगम अधिक मात्रा में हुआ। अंग्रेजी शासन के साथ साथ अंग्रेजी शब्द तथा कई यूरोपीय भाषाओं के शब्दों ने भी मध्य-पहाड़ी में प्रवेश किया। यह क्रमिक नवागन्तुक शब्द प्राचीन शब्दों का स्थान ग्रहण करते चले गए। किन्तु प्राचीन शब्द भी सर्वथा लुप्त नहीं हुये। मूल निवासियों के शब्द-समूह के अवशेष मध्य-पहाड़ी में अवश्य होंगे किन्तु यह निश्चय करना बहुत कठिन है कि वे मूल निवासियों के शब्द हैं या देशज शब्द हैं। अतएव इस प्रकार के सब शब्द देशज के अन्तर्गत हो जायँगें। इन शब्दों के विषय में केवल इतना ही कहा जा सकता है कि लि० स० इ० में दिये हुए कई पहाड़ी भाषाओं तथा दरद भाषाओं के शब्दों में यह नहीं पाए जाते हैं। ये भारतीय आर्य भाषाओं के शब्द भी नही हैं। दूसरी श्रेणी में ये शब्द आते हैं जो नेपाल से लेकर चम्बा तक की पहाड़ी बोलियों में उच्चारण भेद के साथ पाए जाते हैं। इनके दर्शन दरद बोलियों में भी हो जाते है। भारतीय आर्य भाषाओं में इनका प्रयोग नहीं होता या कम होता है। इसलिए इन शब्दों को खस शब्द समूह कहा गया है। प्राचीन आर्य भाषा (भारत-इरानी) का शब्द समूह भारतीय आर्य-भाषाओं, पहाड़ी भाषाओं, दरद भाषाओं और इरानी भाषाओं में बंटा हुआ है अत: कुछ शब्द ऐसे हैं जो उच्चारण भेद के साथ इन सबके व्यवहार में हैं। कुछ ऐसे हैं जो पाये तो सभी आर्य भाषाओं में आते हैं किन्तु व्यवहार में वे कुछ ही भाषाओं के हैं। शेष भाआओं में यह नित्य के व्यवहार में नहीं आते है। कुछ शब्द ऐसे भी है जो अब केवल कुछ ही भाषाओं में रह गए हैं शेष से उनका सम्बन्ध टूट गया है। अत: खस शब्द समूह से तात्पर्य केवल उन शब्दों से हैं जो भारतीय आर्य-भाषा में या तो हैं ही नहीं या उनका प्रयोग व्यवहार में नहीं है। ये शब्द पहाड़ी और दरद भाषाओं में ही पाए जाते हैं उनमें भी सब में नहीं। कभी दो दूरस्थ दरद और पहाड़ी बोलियों में कोई शब्द समान रूप से पाया जाता है किन्तु बीच की बोलियो में नही है। इस बात से हम इसी निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि गिलगित और चित्राल से लेकर नैपाल तक एक ही जाति या एक ही जाति की दो भिन्न शाखायें निवास करती थीं जिनका शब्द समूह एक ही रहा होगा।

तीसरी श्रेणी में वे शब्द आते हैं जो मध्य-पहाड़ी के अपने शब्द नहीं हैं किन्तु जिन्हें उसने मध्य काल में अवधी राजस्थानी आदि आर्य भाषाओं से ग्रहण किया और अब खड़ी बोली हिन्दी से ग्रहण करती जा रही है। उदाहरणार्थ मध्य पहाड़ी में महौतारि शब्द के स्थान पर गढ़वाली में ब्वे शब्द हैं और कुमाउँनी में इजा है किन्तु म्हौतारि जो महतारि का बिगड़ा रूप है अवधी से लिया गया है। इसी प्रकार थौक शब्द जिसका डिंगल में अर्थ दिशा होता है और मध्य-पहाड़ी में इलाका होता है, राजस्थानी से लिया गया है। गढ़वाली तथा कुमाउँनी पिता के लिए अभी तक बबा या बबज्यु का प्रयोग होता है किन्तु हिन्दी के प्रभाव से अब कई लोग पिता जी शब्द का प्रयोग भी करने लगे हैं।

चौथी श्रेणी में विदेशी शब्द आते हैं। इनके भी तीन वर्ग हैं। पहले वर्ग में तिब्बत-वर्मी परिवार के शब्द आते हैं। ये शब्द गढ़वाल और कुमाऊँ के धुर उत्तर सीमा पर बोले जाते हैं। दूसरे में मुसलमानी प्रभाव के कारण अरबी फारसी और तुर्की के शब्द आते हैं। और तीसरे में योरोपीय भाषाओं के शब्द आते हैं।

देशज शब्द

किलमोड़ो (एक प्रकार का घास जिसकी पत्तियां खट्टी होती हैं)। कोथलो (बड़ा थैला)। कौणि (एक प्रकार का बाजरे की जाति का पीले रंग का अनाज)। खार (पच्चीस मन)। गिच्चो (मुँह)। गैणा (तारा), घुघतो (फ़ाख़ता), घ्वीड़ (हिरण), छवड़ि या छवड़ी (टोकरी), जूँगा (मूँछ), जड्या (लाई), झुँगारो या झंगारो (अनाज जिसका भात बनता है), डांडो (ऊंचा पहाड़), तिमला (अंजीर की जाति का फल), निंगालों (बाँस की जाति का पेड़ किन्तु बहुत कम मोटा होता है), पुंगड़ों (खेत), बग्वाल (दिवाली), बटि (से)।

खस शब्द[1] समूह

आरम्भ में हिन्दी का शब्द दिया गया है पुनः उसके पर्यायवाची पहाड़ी दरद बोलियों के शब्द दिए गए हैं।

१. पिता :—नैपाली—बुवा। कुमाउँनी—बबा। गढ़वाली—बाबा। जौनसारी—बबा। क्यूँथाली—बाबो। कुलुई—बाब, मंड्याली—बाव, चम्याली—बब्ब, काश्मीरी—बाब, शिणा—बवा।

२. मां :-कुमाउँनी—इजा, जौनसारी—इजो, क्यूँथाली—इजी, गादि—इजि, शिणा—आजे।

१—ये शब्द लि. स. इ $\frac{8}{4}$ और $\frac{8}{2}$ से लिए गए हैं।

३. पत्नी :—कुमाउँनी—ज्वे, गढ़वाली—ज्वे, कुलुई—जो, पंगवाली—जोल्ली, पडारी—जोइलि ।

४ युवती :-कुमाउँनी—लौड़ि, गढ़वाली— लौड़ी (युवती), क्यूथाली—लहाड़ी, मंड्याली—लाड़ी, चम्याली—लाड़ी, गादी—लाड़ो, रम्वानी—लाड़ी ।

५. दादा :—कुमाउँनी—बुब, गढ़वाली—बूबा, शाडोची—बुब ।

६. बालक :—कुमाउँनी—गबरू, गढ़वाली—गवरू, मंडवाली—गभ्र, गादी—गभ्रू, चम्याली—गभ्रू ।

७. बैल :—कुमाउँनी—बलद, गढ़वाली—बल्द, कुलुई—बोहल्द, मंड्याली—बल्द, पडारी—बढ़ेल ।

८. पैर :—कुमाउँनी—खुट, गढ़वाली—खुटो, पडारी—खुड़, काश्मीरी—कोट्, (घुटना), शिणा—कुतु (घुटना) ।

९. गेहूं :—कुमाउंनी—कणिक (आटा), गढ़वाली—कणिको (आटा), शाडोची—कोणक, कुलुई—कोणक, चम्याली—कणक ।

१०. पहाड़ की चोटी :—कुमाउँनी—धार, गढ़वाली—धार, शोडोची—दह्र, गादी—धार, मड्याली—धारा ।

११. छोटी नदी :—कुमाउंनी—गाड़, गढ़वाली—गाड़, जौनसारी—गाड, सिराजी—गड़, पडारी—गड़ूरी ।

१२. रास्ता :—कुमाउंनी—बाट, गढ़वाली—बटो, जौनसारी—बाट, कुलुई—बोट्ट, चम्याली—बट्ट ।

१३. पत्थर :—कुमाउंनी—ढुंग, गढ़वाली—ढुंगो, कुलुई—ढोंग ।

१४. पेड़ :—कुमाउंनी—बोट, बढ़वाली—बोट (छोटा वृक्ष), जौनसारी—बूट, शोडोची—बुट्टा, चम्याली—बुटा ।

१५. इधर :—कुमाउंनी—यति, गढ़वाली—इथैं, जौनसारी—एतकीं, मंड्याली—एथी, क्यथाली—एथी ।

१६. उधर :—कुमाउंनी—उति, गढ़वाली—उथें, जौनसारी—वतकि ।

१७. मीठा :—कुमाउंनी—गुल्यो, गढ़वाली—गुलण्या, शोड़ोची—गलीउ, मंड्याली—गुडला ।

१८. खट्टा :—कुमाउंनी—चूक, गढ़वाली—चूक़, शिणा—चुरका, कश्मीरी—चोकू ।

१९. ठंडा :—कुमाउंनी—श्यरो, गढ़वाली—शेलो, शोडोची शेलो, जौनसारी—शेड़ो, शिणा—शिदलो, काश्मीरी—शतील ।

२०. गुनगुना :—कुमाउंनी—निबतो, गढ़वाली—निअतो, शिराजी—निअटा ।

२१. बुरा :-गढ़वाली-नखरो, शडोची-निकरो, काश्मीरी-नाकार, पश्तो-नाकार, पशाई-नाकारा ।

२२. नीच या छोटा :-कुमाउंनी-हुंछु, गढ़वाली-हूंचो, कुलुई-होच्छा, सिराजी-होच्छो ।

२३. सफेद :-कुमाउनी-श्येतो,जौनसारी-शेत्ता, कुलुई-शेत्ता, शोडोची-शित्तो, सिराजी-शितो ।

२४. अवर्षण :-गढ़वाली-विदो, शोडोची-बिजा ।

२५. घूमना :-कुमाउंनी-हृडिणों, गढ़वाली-हंडिणो (बेकार घूमना), शोडोची-हृडनो, पंगवाली-हृंटणा, चम्याली-हृणटण ।

२६. जाना :-कुमाउंनी-नासिणो, क्यूंथाली-नौसना, सिराजी-नसण, मड्-याली-न्हैशण, चम्याली-न्हसणा ।

२७. पहुंचना :-कुमाउंनी-पुजो, मड्याली-पुंजणो, चम्याली-पुंजना, चुराही-पुंजणा ।

२८. अप्रन्न होना :-गढ़वाली-चमकणो या सिरिड़नो । चम्याली-चमकणा, गादी-सरकना ।

२९. उल्टा :-कुमाउंनी-उतणो, गढ़वाली-उतणो, शोडोची-ओतणो ।

३०. काफ़ी :-कुमाउंनी-मुक्तो, गढ़वाली-मुक्तो, जौनसारी-मुकतो चम्याली-मुकतियारी ।

ऊपर दिये गये कुछ शब्द लि. स. इ. जिल्द ९ चतुर्थ भाग तथा जिल्द ८ द्वितीय भाग से लिये गये हैं । इन शब्दों का प्रयोग केवल पहाड़ी भाषाओं या दरद भाषाओं में होता है । अन्य भा० आ० भाषाओं में नहीं होता है ।

यहाँ तीस शब्द उदाहरण के लिए दिए गए हैं । इस प्रकार के अनेकों शब्द हैं जिनका प्रयोग केवल पहाड़ी और दरद भाषाओं में ही होता है अन्य भारतीय आर्य भाषाओं में नहीं होता ! या कम होता है ।

[अन्य भारती आर्य भाषाओं से लिए हुए शब्द]

यहाँ अन्य भारतीय आर्य-भाषाओं से लिए गए शब्दों के साथ उनके मध्य-पहाड़ी पर्यायवाची शब्द भी दिए गए हैं । उदाहरण के लिए ऐसे कुछ शब्दों को दिया गया है जो शनैः शनैः मध्य-पहाड़ी से उसके प्राचीन शब्दो को अलग कर उनका स्थान ग्रहण कर चुके हैं या करते जा रहे हैं अथवा वैकल्पिकरूप से प्रयोग मे आते हैं । इन शब्दों का प्रयोग शिष्टता का द्योतक भी समझा जाता है ।

खड़ी बोली से:-पिता (बबा), माँ (व्वे या इजा), चचा (कका), चाची (काकी), दादा (बूबा) दादी (बूबू), स्त्री (ज्वै या सेणि), जीजा (मीना),

तितली (पुरपुतई या पुतळी), बिजली (चाल), दिवाली (वग्वाळ), धूप (घाम), दुबला-पतला (हरान), गोबर (मोळ या मोव) हेमन्त (ह्यूंद), चक्की (जांदरो) मूंछ (जूंगा), लगूर (गूणी) नाला (गधेरो), नाच (हूंचो), रडी (पातर), कुदणो (फटकाल मारणी) कपास (रुवाँ), गन्ना (रीखू), खेत (पुंगड़ों), जगल (बण) रुपया (कलदार या ढेपुआ) गौशाला (छन या छानो)।

अवधी से:— महतारी (म्हौतारि) कपार (रव्वार या मुंड), कुकर (कुकूर या कुकर), चेलरा (च्यालो)।

राजस्थानी से–ये शब्द राजस्थानी और मध्य-पहाड़ी में ही काम में लाये जाते हैं। हिन्दी में या तो ये हैं ही नहीं या वे प्रयोग में नहीं आते। कभी कहीं प्राचीन हिन्दी में उनका प्रयोग पाया जाता है।

राजस्थानी	गढ़वाली	कुमाउंनी	हिन्दी
थोक (दिशा)	थोक	थोक	इलाक़ा
भड़	भड़	पैक	वीर
बाहलो[1]	बाळो	बावो	पहाड़ी नाला
डार[2]	डार	डार	झुंड
मुंदड़ी[3]	मुंदड़ी	मुंदड़ि	अंगूठी
खंजरू[4] (बकरी का बच्चा)	खाडू	खाडु	भेंड़ा
बोरुं[5] (गुजराती	बोरो	ब्वारो	रास्त के लिए अनाज
कहरो[6] (गुजराती)	कौरो	कौरो	मकान की एक दीवाल

विदेशी शब्द

मध्य पहाड़ी में विदेशी शब्द हिन्दी की अपेक्षा बहुत कम हैं। हिन्दी की अपेक्षा विदेशी ध्वनियों को भी कम ग्रहण किया गया है। हिन्दी-भाषी नागरिकों ने विदेशी ध्वनियाँ जैसे, क़ ज़ फ़ आदि को ग्रहण कर लिया है। किन्तु ग्रामीणों ने विदेशी ध्वनियों को अपने भाषा के निकटतम ध्वनियों में परिवर्तित कर दिया है। विदेशी ध्वनियों की यही अवस्था मध्य-पहाड़ी में भी हुई है। मुसलमानों के प्रभाव से अरबी-फ़ारसी तथा तुर्की के शब्द:—

आदिमी (आदमी), उतौल, (उतावला), उजबक, कर्ज, कबीला, कफन, कागत (कागज)। किफैत (किफ़ायत)। कैंची, खसम, खीसा (कीसह), गवाही, चक्कू (चाकू), चुगली, चौगिर्द, जमीन, जरूर, जामिन, जागा (जगह), जोर,

---

१–२-३-४ लि० सं० इ० जिल्द ९ भाग २ पृष्ठ ६७ ६८ ६९।

५-६ लि० स० इ० जिल्द ९ भाग २ पृष्ठ ३४७-३४९।

त्यार (तैयार), तोप, तलवार, दसकत (दस्तखत), नादान, नालिश, निसाब (इसाफ), फैदा (फ़ायदा), फरेब, फसल, फ़जल, बाछा (बादशाह), बादुर (बहादुर), बजार, बखत (वक्त)। वेशक, वेशरम, बुगचा (बगूचह)। बुरा, मालक (मालिक), मेनत (मेहनत) मुचलका, मदत (मदद) मग्रा (मग्र)। मजबूत, याद, यार, ल्हास (लाश)। शौक, संदूक, सलाह, सड़क, सरत (शर्त), सिरकार (सरकार), सिपै (सिपाही)। हवलदार, हाइतोवा।

योरोपीय भाषाओं के शब्द।

पुर्तगाली-अलमरि। अचार। कंटर। कप्तान। गोबि। गुदाम। चाबि तमाखु। परात। बल्टी। बोतल।

फ्रांसिसी-कार्तूस। कुपन। फिरंगी।

अंग्रेज़ी-अपील। अर्दली। अस्पताल। असम्बली। निसपैटर। इस्कूल। इस्टाम। कल्लटर। कमिश्नर। कंपनी। कंपोडर। कन्नल। कमेटि। कापी। कारड। कांग्रेस। कालिज। बचैंलतार। कुनैन। कितली। कोट। गिलास। गिन्नी। जेल। टिकट। टिमाटर। टीम। टेम। डव्वल। डाक्टर। डिपटी। लोट। पल्टन। पलसतर। पतलून। पार्सल। पेनशन। पिंसिल। पिलेग। पुलिस। पैसा। पतरोल। फीस। फेल। बम। बरंडी। बंक। बटन। बकस। बनैन। बूट। वैरंग। मशीन। मनीआर्डर। मुलेजर। मास्टर। मिम्बर। मीम। मोटर। रंगरूट। रबड़। रसीद। रपोट। रासन। रेंजर। रजिस्टिरी। रिटैर। रेल। लैंप। लिपटेन। लंबर। लाट। लालटीन। लैन। समन। संतरि। सिगरेट। सलीपर। सिलेट। होल्डर। होटल।

तिब्बती वर्मी भाषा-परिवार[1] के शब्द

इन शब्दों को गढ़वाल के मार्छा तथा अल्मोड़ा के शौक लोग जो इन दोनों जिलों की उत्तरी सीमा पर रहते हैं काम में लाते हैं।

न्हीस–दो। तिग्–एक। हिंज–था या थे। फुलत–सम्बल। ती–पानी। में–आग। जै–खाना। सींग–लकड़ी। मी–आदमी।

सामाजिक शब्द

उपर्युक्त चार प्रकार के शब्दों के अतिरिक्त सामासिक शब्द भी पाए जाते हैं। मध्य-पहाड़ी में सामासिक शब्द बहुत कम हैं। संस्कृत के प्रभाव से हिन्दी में सामासिक शब्द प्रतिदिन बढ़ते जा रहे हैं। यद्यपि भाषण में उनकी मात्रा अधिक नहीं है। यहाँ मध्य-पहाड़ी के कुछ सामासिक शब्द उदाहरण के लिये दिये जाते हैं।

१—प० भा० प्र० पृ० ८६। भोर प्रकाश। कु० भा० ई० पृ० ६३६।

अण्बिवाई [अविवाहिता], औं-त्वे [रक्तातिसार], करमफुटो या करम फुटिया [अभागी], चौगिर्द [चारों तरफ], चौमास [बरसात], तामाखोरी [गंजा], पेट-मुल्या या पेटमुय्या [पिता के मरते समय माँ के गर्भ में], रिसराग [इर्ष्या], सत्यानाश [अफल्या], अल्पायुस [छोटी आयु में मरने वाला]

कुछ सामाजिक शब्दों में पुनुरुक्त है।

अदलो-बदलो, भूल-बिसर, दई-भई, दान-पुन, घर-कूड़ी, हाइ-तोबा, देखणो-भालणों, जड़ी-बूटि, कथा-कहानी, कुटुम्ब-कबीला, दुबलो-पतलो।

कुछ पुनरुक्त शब्दों में दूसरा शब्द निरर्थक होता है।

झटपट, फुलफटक [निर्मल चाँदनी]. ठीकठाक [मरम्मत], पुजाहुजा, धूम-धाम, अछतै-पछतै।

हिन्दी के समान ही पुनरुक्त शब्दों का दूसरा भाग प्रायः ह से आरम्भ होता है। जैसे—चोर-होर, मकान-हकान, लड़का-हड़का, ज्वे ह्वै, बवा-हवा।

मध्य-पहाड़ी में प्रायः निम्नांकित विस्मयादिबोधक शब्द काम में लाए जाते हैं।

अहा! [हर्ष]; ओ इजा!, ओ बोये!, हे राम! [शोक]; ऐं!, ओ बाबा! [आश्चर्य]; शाबास! [समर्थन]; हत्तेरी!, छी! [घृणा]; हौ या हों [स्वीकार]।

कभी कभी स्वीकृत का काम झटके के साथ साँस लेने से ही किया जाता है जिसमें हँ की ध्वनि निकलती है।

इ अर्थ भिन्नता

यहाँ उन शब्दों का विवेचन किया जाता है जो एक बोली में एक अर्थ में तो दूसरी बोली में दूसरे ही अर्थ में प्रयुक्त होते हैं। कुछ शब्द दोनों बोलियों में होते हुए भी अधिकांश व्यवहार में एक ही में आते हैं। दूसरी बोली में उसका पर्यायवाची शब्द काम में आता है। कुछ शब्द ऐसे भी हैं जो एक ही बोली में हैं और दूसरे में उसका सर्वथा अभाव है।

एक ही शब्द का दोनों बोलियों में भिन्न भिन्न अर्थ :—

ग०	कु०
मैंस—पति	मैंश—मनुष्य
सैणी—पत्नी	सैंणि—स्त्री मात्र
बोड़—गाय का बछड़ा	बहड़—बैल
बसणों—निवास करना	बसणों—बात पर पक्का रहना
बोट—झाड़ी	बोट—बड़ा वृक्ष

ब्यालि—कल व्यतीत	ब्याल—संध्या
चेलो—शिष्य	च्यालो—लड़का
दादा जी—पितामह	दाज्यू—बड़ा भाई
खाप—पशुओं का खुला मुंह	खाप—मुंह
पाथर—छत को ढकने के पत्थर	पाथर—पत्थर मात्र
रीश—क्रोध	रिश—ईर्ष्या, क्रोध
थोल—शुअर के होंठ	थोल—होंठ मात्र

दोनों बोलियों में होते हुए भी निम्नांकित शब्द एक ही के व्यवहार में अधिक आते हैं।

हि०	ग०	कु०
कहना	बोलणों	कूंणों
चलना	चलणों	हिटणों
खड़ा होना	खड़ो होणो	ठाड़ो होणों
चला गया	चलि गये	न्है गयो

निम्नांकित शब्द एक ही बोली में हैं दूसरी में उसका सर्वथा अभाव है।

हि०	ग०	कु०
तारे	गैणा	तारा
मुंह	गिचो	मुख
दूर	दूर	टाड
हुआ	होये	भयो
से	ते	है
मां	ब्वै	इजा या म्होतारि
नहीं है	नीछ	न्हाति
मत, जनि	नि	झन

४—संज्ञा

[अ] स्त्रीलिंग

हिन्दी के समान ही मध्य-पहाड़ी में भी लिंग निर्णय सरल कार्य नहीं है। क्योंकि इसके लिए कोई निश्चित नियम नहीं है। लिंग की अनिश्चितता प्राचीन भारतीय आर्य-भाषाओं में और भी अधिक थी। संस्कृत में स्त्री कलत्र और दारा शब्द पर्यायवाची होते हुए भी व्याकरण की दृष्टि से क्रमशः स्त्री लिंग, नपुंसक लिंग और पुंलिंग है। किसी भी जीवधारी के प्राकृतिक लिंग और उसके व्याकरणीय लिंग में सदैव एकरूपता नहीं है। निर्जीव वस्तुएं भी कुछ पुंलिंग हैं और कुछ स्त्रीलिंग और

कुछ नपुंसक लिंग । प्राचीन आर्य-भाषाओं की इस प्रवृत्ति के समर्थन में यही बात कही जा सकती है कि निर्जीव वस्तुओं पर व्याकरण की दृष्टि से पुलिंग व स्त्रीलिंग का आरोप प्राय: उनके विशेष गुण—कठोरता, कोमलता, विशालता या लघुता के आधार पर किया गया है । जैसे लता और नदी स्त्रीलिंग है तो वृक्ष और सिंधु पुलिंग हैं । यह आरोप सर्वथा कल्पना प्रसूत होने से नियमित नहीं है । प्राचीन आर्य-भाषा की यह प्रवृत्ति हिन्दी और मध्य-पहाड़ी ने समान रूप से ग्रहण की है ।

मध्य-पहाड़ी में प्राचीन भारतीय आर्य-भाषाओं के तीन लिंगों में से केवल दो लिंग रह गए हैं । नपुंसक लिंग का लोप मध्य देशीय भाषाओ में अपभ्रंश काल से ही आरम्भ हैं गया था । यह लिंग केवल मराठी[1] और गुजराती[2] में बचा हुआ है । नपुंसक लिंग के लोप के साथ वे सब शब्द जो प्राचीन भारतीय भारतीय आर्य-भाषा में नपुंसक लिंग में थे पुलिंग हो गए हैं । कुछ—यद्यपि बहुत कम मात्रा में—स्त्रीलिंग हो गए । लिंग की अनिश्चितता भारतीय आर्य भाषाओं में ही नहीं किन्तु दरद भाषाओं, जैसे, शिणा तथा काश्मीरी में भी पाई जाती हैं । इन भाषाओं का पहाड़ी बोलियों से घनिष्ट सम्बन्ध है अत: मध्य-पहाड़ी में लिंग निर्णय के लिए अंग्रेजी की भाँति निश्चित नियम नहीं है । यद्यपि अंग्रेजी में भी अपवाद हैं परन्तु बहुत कम । अत: मध्य-पहाड़ी मे लिंग के सम्बन्ध में यहाँ कुछ सामान्य नियम दिए जाते है जिनमें अनेकों अपवाद भी हैं ।

१— जीवधारियों के नाम—जातिवाचक या व्यक्तिवाचक—प्राय: उनके प्राकृतिक लिंग के अनुसार ही पुलिंग या स्त्री लिंग होते हैं । जैसे, बल्द (बैल) । पुलिंग हैं । और भैंस स्त्रीलिंग है । यद्यपि दोनों अकारान्त शब्द हैं । इसी प्रकार मोती शब्द पुलिंग है और सावित्री स्त्रीलिंग । यद्यपि दोनों इकारान्त हैं । किन्तु अपवाद स्वरूप भैंसों और गोरू (गाय) पुलिंग शब्द हैं ।
गढ़०—मेरी भैंसी बिकि गए या भलो गौड़ो छ ।
कु०—म्यारो भैंसों बिकि गयो या भलो गोरू छ ।

२— कुछ जीवधारियों के दोनों प्राकृतिक लिंगों के लिए एक ही शब्द काम में आता है या तो वह पुलिंग ही होता है या स्त्रीलिंग ही । जैसे उल्लू, कौवा या काणो जूंको या ज्वाँको, माखो, ऊँट, स्याल या श्याल । स्यू श्यु । सरसु (खटमल), जुआँ या जुं आदि शब्दों के स्त्रीलिंग रूप नहीं हैं । स्याल या श्याल का स्त्रीलिंग रूप कभी श्यलीण भी हो जाता है । इसी प्रकार ऊनवाचक के लिए माखो का स्त्रीलिंग कभी माखी हो जाता है ।

१—हि० भा० इ० पृ० २५१ ।
२— „ „ २५१ ।

कुछ जीवधारियों के लिए दोनों प्राकृत लिंगों के लिए एक ही स्त्रीलिंग शब्द काम में आता है जैसे पुतली या पुरपुतई (तितली), जोगिण या जुग्याण (जुगनू), गिलहरी इत्यादि।

३— जहाँ किसी जाति के पुलिंग या स्त्रीलिंग दोनों की समष्टि हो तो कभी पुलिंग और कभी स्त्रीलिंग शब्द का प्रयोग होता है।

ग०—मेला माँ भिल्यां आदिमि छया (मेले में बहुत आदमी थे)।

कु०—म्याला में बहोत आदिमि छ्या :

इस वाक्य में आदिमि शब्द पुलिंग और स्त्रीलिंग दोनों के लिए प्रयुक्त हुआ है यद्यपि आदिमि शब्द पुंलिंग है। इसी प्रकार ग० मेरो नाती गोरू भैंसा चरौण कूँ बण माँ जायूँ छ (मेरा नाती गाय भैंस चराने के लिए जंगल गया हुआ है)।

कु०—मेरो नाती गौरू भैंसन चरुण हुणि बण जे रछ।

यहाँ गोरू भैंसा या भैंसन (गाय भैंसे) स्त्रीलिंग बहुबचन शब्द हैं किन्तु बैलों के लिए भी प्रयुक्त हुआ है।

४— प्राणियों के समूह बोधक शब्द कभी पुंलिंग और कभी स्त्रीलिंग होते हैं।

पुंलिंग—झुंड, कुटुम्ब।

स्त्रीलिंग—डार (भीड़), पलटन।

५— निर्जीव वस्तुओं के लिंग निर्णय के लिए कोई नियम नहीं हैं। उनका लिंग प्राय: कोमलता, कठोरता, विशालता और लघुता पर निर्भर रहता है जैसा कि पहले बताया जा चुका है।

६— अ, आ, इ या ई से अन्त होने वाले शब्द दोनों लिंगों में हो सकते हैं चाहे वे चेतन हों या अचेतन। अकारान्त स्त्रीलिंग शब्द बहुत कम हैं इसी प्रकार आकारान्त पुलिंग शब्द बहुत कम हैं। आकारान्त पुंलिंग शब्दों का बहुवचन रूप आकारान्त ही जाता है। ए, ऐ से अन्त होने वाले शब्द प्राय: स्त्रीलिंग होते हैं। उ, ऊ और औ से अन्त होने वाले शब्द प्राय: पुलिंग होते हैं और आकारान्त शब्द तो सभी पुंलिंग होते हैं।

	पुलिंग	स्त्री लिंग
अ–	बल्द या बलद, बादल या बादव, स्याल।	भैंस, सौत, बैण।
आ–	घोड़ा, आँखा, डाला।	राधा, आशा, माला।
इ—ई	वैरी या वैरि, हाथी या हाति।	चेलि, नौनी बत्ती या बत्ति।
उ–ऊ	भालु, झाड़ु, स्यु या श्यु।	सासु या सासू।
	ज्यु या ज्यू (प्राण)।	
ए—	ल्वे (रक्त)।	ज्वे (मां), ज्वे (स्त्री)

ऐ— सिपै (सिपाही)। पिसै, लड़ै, मलै।

ओ— बख्रो या बाखरो, चलणों।

औ— जौ, भौ, तलौ (तालाब)

७—जीवधारियों के पुलिंग शब्दों से स्त्रीलिंग रूप बनाने के लिए मुख्यतः दो प्रत्यय काम में आते हैं। इ या ई और इणि या इण। इणि या इण प्रत्यय जीवधारियों पर ही लगता है जैसे हाथी या हाति—हथीण या हाथिण, पंडित - पंडतिण, या पंडतीण बाग बागिण, खस्या-खसीण, बामण, बर्मणि। जीवधारियों में भी उच्च श्रेणी के प्राणियों पर ही इणि प्रत्यय लगता है कौटम्बिक सम्बन्ध को प्रगट करने वाले शब्दों पर अधिकांश इ प्रत्यय जोड़ा जाता है। जैसे मामा—मामी, काका—काकी, दादा—दादी। मुला—मुली, दादा-दिदी, मौसा—मौसी, किन्तु कभी नाती या नाति नातिण या नातिणी भी हो जाता है।

शेष सब जीवधारी शब्दों का स्त्रीलिंग रूप इ या ई प्रत्यय जोड़ कर बनाया जाता है। कुकर—कुकरी। भौंरों-भौंरी। तितरो—तितरी। चखुलो-चखुली।

८—ऊनवाचक शब्द बनाने के लिए सदैव इ या ई प्रत्यय काम में लाया जाता है। टोपरो या ठोपरो, ठोफरि या ठोपरि, लाठो या लाठी, डालो-डाली या डाई।

ऊनवाचक स्त्रीलिंग शब्द जीवधारियों के भी बनाये जाते हैं। उन पर भी इ या ई प्रत्यय जोड़ा जाता है। और लघुत्व का बोधक होता है। जैसे-माखो-माखी। माछो–माछी।

९-कई जीवधारी शब्दों को पुंलिग से स्त्रीलिंग शब्द बनाने के लिए कोई निश्चित नियम नहीं हैं।

ग० जैसे,—देवता—देवी, अदिमि—जननी, बल्द—गौड़ी। नौनो—बौड़ो, बाबा-जुग्याण।

कु०—द्यवता—देवि, मैश—रैयणि, बहड़—गोरु। च्यालो बौड़ि।

१०—बिदेशी शब्दों के स्त्रीलिंग रूप मध्य-पहाड़ी भाषा के नियमों के अनुसार हो बतते हैं। जब तक उनके स्त्रीलिंग और पुलिंग शब्द भिन्न-भिन्न न हों।

मास्टर—मास्टरिण या मास्टरिणि, डाक्टर, डाक्टरिण या डाक्टरिणि, किन्तु साहबमेम।

११—कुछ शब्द ऐसे होते हैं जो मध्य-पहाड़ी में हिन्दी से भिन्न लिंग रखते हैं।

हि०— आंख (स्त्रीलिंग), डर (पुलिंग), चांद (पुलिंग)

मध्य-पहाड़ी — आंखो (पुंलिंग) । डर (स्त्रीलिंग) । जून चन्द्रमा (स्त्रीलिंग) ।

आ—बचन

हिन्दी की ही भांति मध्य-पहाड़ी में भी केवल दो वचन हैं । दरद भाषाओं तथा राजस्थानी में भी दो ही वचन रह गए हैं । द्विवचन का लोप मध्यकालीन आर्य-भाषाओं में हो गया था ।

१—ओकारान्त शब्दों को छोड़कर शेष शब्दों के कर्ताकरण के एक वचन और बहुवचन के रूप समान होते हैं ।

कर्ताकारक

ए० ब०	ब० ब०
ग०—आदिमि, भैंस, ममा, नौनी, स्यू ।	आदिमि, भैंस, ममा, नौनी, स्यू ।
कु०—मैंश, भैंस, ममा, चेलि, नाति	मैंश, भैंस, ममा, चेलि नाति, श्यु, श्यु ।

२—ओकारान्त शब्दों के कर्ताकारक का बहुबचन का रूप ओ का लोप और आ के आगम द्वारा बनता है ।

कर्ताकारक

ए० ब०	ब० ब
ग०—नौनो, ससुरो, कालो ।	नौना, ससुरा, काल ।
कु०—च्यालो, ससुरो, क़ाओ या कालो ।	च्याला, ससुरा काआ या काला ।

३—ओकारान्त शब्दों को छोड़कर अन्य कारकों में अन्य सब शब्दों के एक वचन के रूप कर्ता कारक के समान ही रहते हैं । किन्तु ओकारान्त शब्दों के एक वचन में विकारी रूपआकारान्त हो जाते हैं । नौना मां या च्याला में ।

४—कुमाउंनी में कर्ताकारक को छोड़कर अन्य कारकों में अवधी और ब्रज की भांति न जोड़ कर बहुबचन का रूप बनाया जाता है । जैसे, मैंश—मेंशन । मैंस-मैंशन । स्यैणि—स्यैणिन । ज्वै—ज्वेन । डांकु—डांकुन । तलौ—तलौन

कुंमाउंनी में ओकारान्त शब्दों का विकारी रूप आकारान्त होने पर तथा बहुबचन का न प्रत्यय लगने से पूर्व अन्तिम आ के स्थान पर अ हो जाता है । यह नियम आकारान्त शब्दों के लिए भी काम में लाया जाता है ।

घोड़ो—घ्वाड़ा—घ्वाड़न । दगड़िया—दगड़ियन ।

५—गढ़वाली में अन्य कारकों में (कर्त्ता को छोड़कर) अकारान्त, आकारान्त और ओकारान्त शब्दों के अन्त के स्वर को लोप करके उनके स्थान पर बहुबचन

के लिए औं या ऊँ जोड़ देते हैं। इकारान्त या ईकारान्त शब्दों के अन्तिम इ या ई को लोप करके उनके स्थान पर इयौं या इयूँ तथा एकारान्त शब्दों के अन्त में भी यौं या यूँ जोड़ देते हैं। इकारान्त तथा ऊकारान्त शब्दों के अन्तिम स्वर को दीर्घ करके अनुस्वरान्त कर देते हैं। औकारान्त शब्दों के अन्तिम स्वर का लोप होकर ऊँ का आगम हो जाता है उदाहरणार्थ—

ग० भैंस—›भैंसौं या भैंसूं; दगड़िया—›दगड़ियौं, पड़ासो—›पड़ोसियौं, नौनी—› नौनियौं या नौन्यौं, ब्वे—›ब्यौं या ब्वयूँ, डाकु—›डाकूँ, स्यू—›स्यूँ या सिऊँ, तलौ—› तलऊँ, नौनो—›नौनों।

६—दोनों बोलियों में बिदेशी शब्द को भी उपर्युक्त नियमों का पालन करना पड़ता है।

जैसे-मास्टर—›मास्टरौं या मास्टरन, मालिक—›मालिकौं या मालिकन, डिप्टी—› डिपटियौं या डिपटियन, चक्कू—›चक्कूँ या चक्कुन।

७—कभी कभी लोग शब्द जोड़कर भी बहुवचन का बोध कराया जाता है।

ग०—›भंडारी लोग निछन (भंडारी नहीं हैं)

कु०—›भंडारि लोग न्हातन।

८—कुछ अनाजों के नाम सदैव बहुबचन में होते हैं जब तक एक दाने से तात्पर्य न हो। ग्युँ, चणा या चाणा, भट, गइथ या गहथा।

९—आदरार्थ जी साहब आदि शब्द लगाये जाते हैं। जिससे उनके साथ की क्रिया का रूप बहुबचन में हो जाता है। जैसे :

ग०—पटवारी जी रहँदा छया, मास्टर साहब पढौणा छनऽ।

कु०—पटवारि ज्यु रौंछिया, मास्टर शैब पढौण लैं रैं।

इ—कारक

मध्य पहाड़ी में हिन्दी तथा अन्य बर्तमान भारतीय आर्य भाषाओं के समान ही संज्ञा तथा सर्वनाम शब्दों के कारकों को प्रगट करने के लिए उनके पश्चात कुछ शब्द रखे जाते हैं जिन्हें कारक चिह्न या परसर्ग कहते हैं। परसर्गों लगने से पूर्व कुछ शब्दों में विकार हो जाता है उनका यह रूप विकारी रूप कहलाता है। भिन्न भिन्न स्वरों से अन्त होने वाले शब्दों के विकारी और अविकारी रूप नीचे दिये जाते है।

केवल ओ से अन्त होने वाले शब्दों का बहुवचन में अविकारी रूप आकारान्त हो जाता है शेष में एक बचन का ही रूप बहुवचन में भी होता है। अर्थात मूल शब्द दोनों वचनों में रहता है।

परसर्ग लगने पर केवल ओकारान्त शब्दों को छोड़कर शेष के एक बचन के रूप

अविकारी शब्दों के समान ही मूल शब्द काम में आता है किन्तु बहुवचन में रूप बदल जाते हैं।

विकारी

	ग०		कु०	
	ए० व०	ब० व०	ए० व०	ब० व०
अ	वीर	वीरौं	पैक	पैकन
आ	दग्ड़िया	दग्ड़्यौं	दगाड़िया	दगाड़ियन
इ, ई	वैरि, नौनी	वैर्यौं, नौन्यौं	वैरि, चेलि	वैरिन, चेलिन
उ, ऊ	डाकु, स्यू	डाकूँ, सिऊँ	डाँकु, स्यु	डाँकुन, सिउन
ए	ब्वे, ज्वे	ब्वेयौं ज्वेयौं	ज्वे	ज्वेन
ऐ	सिपै	सिपयौं	सिपै	सिपैन
औ	तलौ	तलऊँ	तलौ	तलौन

ओकारान्त शब्द परसर्ग न लगने पर भी रूप बदलते हैं। उनके विकारी और अविकारी रूप दोनों दिए जाते हैं।

अविकारी

	ग०		कु०	
	ए० व०	ब० व०	ए० व०	ब० व०
ओ	घोड़ो	घ्वाड़ा	घोड़ो	घ्वाड़ा

विकारी

घ्वाड़ा	घ्वाड़ौं	घ्वाड़ा	घ्वाड़न

अपवाद—

गढ़वाली में कुछ अकारान्त स्त्रीलिंग शब्द जैसे रात, बात, घात, वाद आदि का कर्त्ता कारक बहुवचन का विकारी रूप रता, बता, घता और घदा आदि हो जाता है। अन्य कारकों में बहुवचन का विकारी रूप रातौं, बातौं आदि के साथ-रतूं, बतूं आदि हो जाता है।

कुछ आकारान्त शब्दों के विकारी रूपों के बहुवचन में अन्तिम आ का लोप नहीं होता। उन पर औं प्रत्यय जोड़ा जाता है जैसे-बबा-बबाऔं। सेवा-सेवाऔं। आज्ञा-आज्ञाऔं।

कुमाउँनी में आकरान्त शब्दों के बहुबचन के विकारी रूपों का अंतिम आ लुप्त होकर अ रह जाता है। उसके पश्चात न प्रत्यय लगता है जैसे—दगाड़िया—दगड़ियन।

श्री गिर्यसन[1] महोदय ने कुमाउंनी में गलो का एक वचन में विकारी रूप गालन तलौ का तलौन और भील का भीलन माना जाता है। जिसे उन्होंने अपवाद बताया है। किन्तु वास्तव में बात यह नही है।

१—भीलन[2] जसो देखि छियो [भीलों जैसा दिखाई देता था]।

२—वीका गालन[3] जन्यौ छि [उसके गले में जनेऊ था]।

३—आपणों सून पाणि पीण हुणि तलौन[4] हाले [अपनी सूंड पानी पोने के लिए तालाब में डाली]

पहिली पंक्ति में भीलन शब्द स्पष्ट ही मोल का बहुवचन रूप है और भीलन जसो का अर्थ भीलों जैसे है न कि भील जैसा। दूसरो और तीसरी पंक्ति में भी मध्य-पहाड़ी की प्रवृत्ति न समझने के कारण ही भूल हुई है। हिन्दी मे तथा मध्य पहाड़ी में परसर्गों के स्थान पर कभी कभी सम्बन्ध सूचक अव्यय काम में लाए जाते हैं किन्तु हिन्दी में सम्बन्ध सूचक अव्ययों से पूर्व सम्बन्ध कारक का परसर्ग होती है। मध्य-पहाड़ी में बिना सम्बन्ध कारक के परसर्ग के भी सम्बन्ध सूचक अव्यय लगाये जाते हैं। जैसे—

मातग निडर है वेर विवंर[5] भितर गयो। यहाँ 'भितर' सम्बन्ध सूचक शब्द बिना का विभक्ति लगाये हुए ही रक्खा गया है। इसी प्रकार गालन तथा तलौन में 'उन' सम्बन्ध सूचक शब्द, बिना का परसर्ग के ही लगा हुआ है।

गाला + उन [गालन] = गले के नीचे, गले में।

तलौ + उन [तलौन] = तालाब में या तालाब के नीचे।

गढ़वाली में यही सम्बन्ध सूचक अव्यय उंद है। जैसे,

गला उंद (गले में)

ग्रियर्सन[6] महोदय ने ऐ से अन्त होने वाले कुछ विकारी रूप माने हैं किन्तु यह भी मध्य पहाड़ी की प्रवृत्ति न जानने के कारण भूल हुई है।

सम्बन्ध कारक में यदि भेद्य शब्द पुलिंग हो तो शीघ्र भाषण में को विभक्ति का लोप होकर भेदक शब्द पर औ जुड़ जाता है। जैसे राजा को चेलो। राजौ चेलो।

१—लि० स० इ० वाल्यूम ९ भाग ४ पृष्ठ ११७।

२—लि० स० इ० वा० ९ भाग ४ पृष्ठ १६७।

३—लि० स० इ० वा० ९ भाग ४ पृष्ठ १६७।

४—लि० स० इ० वा० ९ भाग ४ पृष्ठ १५८।

५. लि० स० इ० वा० ९ भाग ५ पृष्ठ १६८।

६. लि० स० इ० वा० ९ भाग ४ पृष्ठ ११७।

इसी प्रकार यदि भेद्य स्त्रीलिंग शब्द हो तो की विभक्ति का लोप होकर भेदक शब्द पर ऐ जुड़ जाता है। जैसे - राजा की चेली राजै चेलि। यह प्रवृत्ति गढ़वाली कुमाउंनो दोनों बोलियों में है। यदि भेद्यक शब्द इकारान्त हो तो को का की का लोप नहीं होता। उनका उच्चारण हल्का अवश्य हो जाता है। अतः पापिन की दुर्दशा के स्थान पर शीघ्रता में पापिनै दुर्दाशा हो जाता है। कभी कभी लिखने मे लोग भ्रम से पापिनै के पश्चात् की परसर्ग भी रख देते हैं। जैसे=पापिनै की दुर्दाशा।

परसर्ग

	ग०	कु०	हि०
कर्ता	न	ले	ने
कर्म	सणि, कू	कणि, कन कैं	को
करण	ते, न	ले	से
सम्प्रदान	सणि, कू	कणि, कैं, थें, हुणि, सुं	के लिए
अपादान	ते, बटि	बटि, है, हैवेर	से
सम्बन्ध	को, का, की	को, का, कि	का, के की
अधिकरण	मां, पर तलक,	में, पर, जौलइ	में

उपर्युक्त परसर्गों के अतिरिक्त संबंध सूचक अव्ययों से भी कारक का काम लिया जाता है। हिन्दी में इन संबंध सूचक अव्ययों से पूर्व सम्बन्ध कारक की विभक्ति लगाना आवश्यक है किन्तु मध्य पहाड़ी में यह वैकल्पिक है।

सम्बन्ध सूचक अव्यय

	गढ़वाली	कुमाउंनी
करण	मारा (मारे), बिना	मारियां. बिना
सम्प्रदान	बान्	लिज्यां
अधिकरण	मछे, बीच, मूड़ि	बिच, तलि, मलि, मुणि, उबां, उन
	मथि, उब,उंद नजीक दगड़ी।	दगड़ि

इनके अतिरिक्त अधिकरण कारक के लिए और भी अनेकों सम्बन्ध सूचक अव्यय हैं। कर्ताकारक में गढ़वाली और कुंमाउंनी में क्रमशः 'न' या 'ले' परसर्ग हिन्दी के समान ही सामान्य भूतकालिक सकर्मक क्रिया के साथ आती हैं। किन्तु मध्य-पहाड़ी में 'न' या 'ले' का प्रयोग भविष्यत् काल (करणीय अर्थ) में भी होता है। अन्य स्थानों पर सदैव कर्ता कारक में अविकारी शब्द का प्रयोग होता है। कर्म कारक में भी कभी कभी परसर्ग का लोप होता है।

कारकों के उदाहरण

अविकारी ग०—पश्चिम का वीरन भारी जोर लगाये [सामान्य भूत सकर्मक]
कु०—पछौं का पैकले बड़ो जोर लगायो
हि०—पश्चिम के वीर ने भारी जोर लगाया
ग०—मैंन आज बरत रख्ण [भविष्यत करणीय]
कु०—मैंले आज बरत रखण ,,
हि०—मुझे आज व्रत रखना है। ,,

परसर्ग रहित कर्म।
ग०—वीर की नोनी साट्टी कुटणी छई।
कु—पैक को चेलि धान कुटणि लागि रैछि।
हि०—वीर की लड़की धान कूट रही थी।
ग०—मैं वै का वास्ता रोटी लिजांदू।
कु०—मैं वी कणि र्वाटा दिण जांछु।
हि०—मैं उसको रोटी देने जाती हूं।
ग०—मैं द्वियौं की लड़ाई देखलौ।
कु०—मैं द्विन की लड़ाई देखलौ।
हि०—मैं दोनों की लड़ाई देखूंगी।

सपरसर्ग कर्म (क, कणि)।
ग०—हाथी कू अनोखो कोड़ो देखो क।
कु०—हाति कणि अनोखो किड़ो देखिबेर।
हि०—हाथी को अनोखा कीड़ा देखकर।
ग०—यूं सब कीड़ौं सणि विराला कू दे दे।
कु०—युं सब किड़न कणि विराल हुणि दिदे।
हि०—इन सब कीड़ों को बिल्ली को दे दो।
करण [ते, ले न परसर्ग], [मारा, मारियां, विना परसर्गवत् शब्द]
ग०—किलकार ते वै वीर की नीद खुली।
कु—चिल्लाट ते वी पैक कि नीन टुटि गई।
हि०—चिल्लाहट से उस वीर की नींद टूट गई।
ग०—डरा का मारा भितर भाजि का गई।
कु०—डरा का मारियां भितेर भाजि गई।
हि०—डर के मारे भीतर भाग गई।
ग०—अन्न बिना चैन नी छ।

कु०—अन्न बिना चैन नि छ।

हि०—अन्न के बिना चैन नहीं है।

ग०—अपणा हाथन भोजन बणाए।

हि०—अपने हाथ से भोजन बनाया।

सम्प्रदाम—[कू, कणि, सणि, सुं हुणि, थैं], [बानूं, लिज्यां परसर्गवत् शब्द]

ग०—हमारा बिराला कू दे दे।

कु०—हमारा बिराल कणि दि दे।

हि०—हमारो बिल्ली को दे दो।

ग०—ऊं सणि एक बुड्ली मिले।

कु०—उनन कणि एक बुड़िया मिली।

हि०—उनको एक बुढ़िया मिली।

कु०—सातू को थैलो जो बाटा हुणि चैंछियो।

हि०—सत्तू का थैला जो रास्ते के लिए चाहिए था।

कु०—एक बण हाति लै पाणि पिण सुँ बी तलो में आयो।

हि०—एक जंगली हाथो भी पानी पीने के लिए उस तालाब में आया।

कु०—द्वीन ले बुड़िया यैं क़यौ।

हि०—दोनों ने बुढ़िया से कहा।

कुमाउंनी में कहना क्रिया का गौण कर्म सम्प्रदान क़ारक में रहता है। गढ़वाली में बोलना क्रिया का गौन कर्म अधिकरण में होता है।

हिन्दी में जहां 'के पास' का प्रयोग होता है वहां कुमाउंनी में सम्प्रदान के परसर्ग 'थें' आता है। और गढ़वाली में अधिकरण का परसर्ग मां आता है या कभी कभी हिन्दी के समान 'के पास' का प्रयोग भी होता है।

कु०—एक दिन वामदेव ऋषि राजा थै आयौ।

हि—एक दिन वामदेव ऋषि राजा के पास आया।

ग०—देश का बानूं गांधो जी न प्राण देईव।

हि०—देश के लिए गांधी जी ने प्राण दिए।

कु०—सामल का लिज्यां सात् को थैलो।

हि०—सम्बल के लिए सत्तू का थैला।

अपादान.—(ते, है, है वेर, बटि, परसर्ग)

ग०—आंखा ते निकालो क।

कु०—आंखा है निकालिवेर।

हि०—आंख से निकाल कर।

ग०—एक को घर दूसरा का घर ते ।

कु०—एका का घर है दोहरा का घर ।

हि०—एक के घर से दूसरे के घर ।

ग०—जब बटि मैं जवान हो यूँ ।

कु०—जब बटि मैं ज्वान भयूँ ।

हि० जब से मैं जवान हुआ ।

ग०—एक ते एक बड़ो और एक ले एक छोटो छ ।

कु०—एक है एक ठुलो और एक है एक नानो छ ।

हि०—एक से एक बड़ा है और एक से एक छोटा है ।

ग०—हम तेरी सृष्टि माँ सबते छोटा छवां ।

कु०—हम तेरी सृष्टि में सबन है नाना छूं ।

हि०—हम तुम्हारी सृष्टि में सब से छोटे हैं ।

कुमाउंनी में हिन्दी के 'में से' के स्थान पर 'में है' का प्रयोग होता है और गढ़वाली में (माँ) ।

कु०—सब बस्तुन में है ।

ग०—सब वस्तुओं मां ।

हि०—सब वस्तुओं में से ।

संबंध :— (को, के, कि)

ग – एक को नाम सूणी क ।

कु० – याका को नाम सुणि बेर ।

हि० – एक का नाम सुनकर ।

ग० – पूर्व दिसा का कोणा ।

कु० --पूरब दिशा का कुणा ।

हि० — पूर्व दिशा के कोने ।

ग० – पछिम का वीर कि नौनी ।

कु० – पछों का पैक कि चेलि ।

हि० — पश्चिम के वीर की लड़की ।

कुमाउंनी में अकारान्त शब्दों पर का परसर्ग लगने पर अकारान्त, आकारान्त हो जाता है ।

ग० – वण का मिरग ।

कु० —वणा का मिरम ।

जैसा कि पहिले बताया जा चुका है कि मध्य-पहाड़ी में शीघ्र भाषण के

कारण संबंध कारक की विभक्तियां का, के, कि कभी लुप्त हो जाती हैं। और भेदक का अंतिम स्वर लुप्त हो कर क्रमशः औ आ और ऐ का आगम हो जाता है। इस अंतिम स्वर पर स्वराघात होता है। जैसे राजौ नौनो च्यालो, राजा नौना या च्याला, राजै नौनि या चेलि (राजा का लड़का, राजा के लड़के, राजा की लड़की)

यदि भेदक शब्द इ या ईकारान्त हो तो उसमें कोई परिवर्तन नहीं होता केवल संबंध कारक की विभक्तियों का विकल्प से लोप हो जाता है।

ग०	कु०
नौनी, ससुरो या नौनी को ससुरो।	चेली, ससुरो या चेलि को ससुरो।
नौन, लट्टुला (बाल) या नौनी का बात।	चेली, बाव या चेलि का बाल।
नौनी, सास या नौनी की सासु	चेली सासु या चेलि कि सासु।

भेदक शब्द यदि ह्रस्वान्त हो तो वह दीर्घान्त हो जाता है।

अधिकरण :—(में, मां, पर, तलक, जांलै परसर्ग),

ग०—तलौ माँ डाल दिन्या।

कु०—तलौ में खिति दिया।

हि०—तालाव में डाल दिये।

मध्य-पहाड़ी में 'मां' ओर 'में' का प्रयोग पर के स्थान पर भी होता है। जैसे :—

ग०—अपणा मुंड मां।

कु०—आपणा रव्वरा में।

हि०—अपने सिर पर।

ग०—मैं पर विपद आईं छ।

कु०—मैं पर विपत ऐरै छ।

हि०—मुझ पर विपत्ति आई हुई है।

ग०-दोफरा तलक चले।

कु०—दोफरि जांलै हिटो।

हि०—दोपहर तक चला।

ग०—त्वे दगड़ी मिलन की इच्छा छई।

कु०—त्वे दगड़ि भेंट करण कि इच्छा छि।

हि०—तुम्हारे साथ भेंट करने की इच्छा थी।

गढ़वाली में बोलना क्रिया का गौण कर्म अधिकरण कारक में होता है।

ग०—दूसरी जनानी मां बोले।

हि०—दूसरी स्त्री ने कहा।

गढ़वाली में हिन्दी 'के पास' के स्थान पर 'मां' का ही प्रयोग होता है जबकि कुमाउंनी में सम्प्रदान की विभक्ति 'थैं' का प्रयोग होता है।

ग०—मातंग राजा माँ गए या राजा का पास गए।

कु०—मातंग राजा थैं गयो।

हि०—मातंग राजा के पास गया।

गढ़वाली में हिन्दी 'में से' के स्थान पर माँ प्रयोग होता है।

ग०—मैं सणि अपणा नौकरौं माँ एक का बराबर वणावा।

हि०—मुझे अपने नोकरों में से एक के बराबर बनाओ [समझो]

सम्बोधन :—

गढ़वाली में सम्बोघन के समय अंतिम स्वर पर बलान्तमक स्वराघात होता है। एक वचन में यदि अंतिम स्वर ह्रस्व हो तो दीर्घ हो जाता है जैसे—ये गोविन्द! के स्थान पर ये गोविन्दा ! हो जाता है। बहुवचन में शब्द का अंतिम स्वर दीर्घ भी हो तो ह्रस्व कर लिया जाता है। और उस पर औ या यौ जोड़ लिया जाता है।

कुमाउँनी में सम्बोधन के एक वचन में उपान्त्य स्वर पर बलात्मक स्वराघात होता है और बहुवचन में गढ़वाली के ही समान कुमाउँनी में भी अन्त में औ या यौ का आगम हो जाता है।

ग०		कु०	
ए० व०	ब० व०	ए० ब०	ब० व०
ये डाकु।	ये डाकुऔ :	ये डाकु।	ये डाकुऔ।
ये नौना।	ये नौनाऔ।	ये च्याल।	ये च्यालाऔ।

परसर्गों की व्युत्पत्ति

हिन्दी तथा मध्य पहाड़ी के परसर्ग वास्तव में संस्कृत के अनुसार विभक्तियाँ नहीं हैं। संस्कृत से बिभक्तियाँ शब्द से संश्लिष्ट रहती हैं किन्तु हिन्दी तथा मध्य पहाड़ी में से परसर्ग शब्द से अलग रहते हैं सम्बन्ध सूचक अव्यय घिसते घिसाते हिन्दी और मध्य-पहाड़ी के विश्लिष्ट विभक्तियों या परसर्गों का रूप धारण करते हैं और कालान्तर में शब्द से संश्लिष्ट हो जाती हैं। हिन्दी के कुछ विद्वानो ने इन्हें विभक्ति[1] माना है, कुछ विद्वान इन्हें कारक चिन्ह या परसर्ग[2] भी कहते हें। हिन्दी की ही समानता पर यहाँ इन्हें परसर्ग कहा गया है।

१—का० गु० हि० व्या० पृ० २५५-२५८।

२—बा० अं० मा० पृ० २१२।

परसर्गों की व्युत्पत्ति के सम्बन्ध में हिन्दी के ही समान मध्य-पहाड़ी में भी अस्पष्टता है। क्रमिक साहित्य की उपलब्धि के कारण हिन्दी के भाषा विज्ञानियों ने कुछ परसर्गों के विकास पर प्रकाश डाला है किन्तु कुछ का विकास अभी संदिग्ध है। साहित्य के अभाव में मध्य-पहाड़ी के परसर्गों के सम्बन्ध में अनुमान का ही सहारा लेना पड़ता है। मध्य-पहाड़ी के परसर्ग पश्चिमी हिन्दी तथा अवधी से साम्य रखती है।

कर्ता—न (ग), ले (कु०) का सम्बन्ध हिन्दी के ने' परसर्ग[1] से है। 'ने' की की व्युत्पत्ति के सम्बन्ध में अनेक अनुमान लगाए गए हैं। 'ले' परसर्ग नेपाली में भी पाया जाता है अन्तर इतना ही है कि कुमाउँनी में कर्ता के पश्चात् ले रखने पर क्रिया कर्म के अनुसार बदलती है जबकि नेपाली में कर्ता पर 'ले' लगाने पर भी क्रिया 'कर्ता के अनुसार ही रहती है। 'ने', 'न' आदि 'ले' को रूपान्तर मात्र है जिसकी व्युत्पत्ति अधिकांश भाषा विज्ञानी लग्ने से करते हैं। लग्य.—>लग्गि—>लागि—>लाइ—>ले। ल का न बनाना कई स्थानों पर पाया जाता है यथा लवण—>नोंन। गढ़वाली और कुमाउँनी में 'न' या 'ले' करणीय भविष्यत् के कर्ता पर भी लगता यथा मैले जाण, मैन जाण (मुझे जाना है)।

कर्म-सम्प्रदान—कू (ग), कणि, कन (कु०) का सम्बन्ध हिन्दी के को, कौं से है[2] जिसकी व्युत्पत्ति कक्ष से की जाती है। कक्षं —>कवंख, कहं—>कौं या कौ, को—>क् (ग०); मणि कन (कु०)। अवधी में कहं का प्रयोग होता है। कुमाउँनी पर अवधी का प्रभाव अधिक होने से कणि, कन में अनुनासिकता बनी हुई है।

सणि (ग०) और सूँ (कु०) का सम्बन्ध हिन्दी[3] अवधी[4] तथा राजस्थानी[5], के सूँ,से, सन से है जिनकी व्युत्पत्ति समंसे की जाती है। हिन्दी, अवधी राजस्थानी में सूँ, से, मन करण-सम्प्रदान के परसर्ग हैं। परसर्ग का विषय अन्य भाषाओं में भी पाया जाता है। उदाहरणार्थ गुजराती और मारवाड़ी का 'नैं' कर्म का परसर्ग है किन्तु हिन्दी में कर्ता पर लगता है जिसकी क्रिया सामान्य भूतकाल में सकर्मक हो।

कुमाउँनी 'हुणि', 'हूँ' का सम्बन्ध अवधी 'हिं' से है। रामहिं (राम को)

१—हि० भा० इ० पृ० २६०।
२—हि० भा० इ० पृ० २६१।
३—हि० भा० इ० पृ० २६२।
४—वा० अ० भ० पृ० २२२।
५—र० भा० स० पृ ३८।

यही हिं, सूँ और साणि के अनुकरण पर हूँ, हुणि हो गई है। हिं, अवधी में विभक्ति है किन्तु कुमाउँनी परसर्ग।

कुमाउँनी तथा पूर्वी गढ़वाली की 'थैं'। जिसका अर्थ कुमाउँनी में 'के पास' और पूर्वी गढ़वाली में 'को' अर्थ होता है संस्कृत स्थाने व्युत्पन्न है। स्थाने—›ठाने—› ठाईं—›थाई—›थैं।

करण—गढ़वाली में 'ते' परसर्ग का सम्बन्ध ब्रज और अवधी के ते या तैं से है। ब्रज और अवधी में ते करण का परसर्ग है। संस्कृत तृतीया ब व के तैः से इसकी व्युत्पत्ति की जाती है। तैः—›तेहि—›ते या तै, तैं। 'न' परसर्ग का प्रयोग भी गढ़वाली में करण के लिए होता है।

कुमाउँनी में करण का परसर्ग 'ले' है जिसका उल्लेख कर्ता के परसर्ग के अन्तर्गत किया जा चुका है।

अपादान—गढ़वाली में अपादान में भी करण के समान ही 'ते' का प्रयोग होता है जिस प्रकार हिन्दी में करण अपादान के लिए 'से' का प्रयोग।

'बटि' परसर्ग गढ़वाली और कुमाउँनी दोनों में प्रयुक्त होता है। उसकी उत्पत्ति संस्कृत वर्त्मन् से हुई है। वर्त्मन्—›वत्ता—›बटा—›बाटे—›बटि। यह शब्द रास्ते के अर्थ में अभी भी प्रयोग में आता है।

है, है बेर का प्रयोग कुमाउँनी में होता है। दो धातु के पूर्वकालिक कृदंत है पर बेर लगाकर कुमाउँनी में है बेर (होकर) पूर्वकालिक क्रिया बनती है। इसी है बेर का प्रयोग अपादान के परसर्ग के लिए भी होता है। कभी बेर छोड़ भी दिया जाता है और केवल है से काम चल जाता है।

संबंध—गढ़वाली और कुमाउँनी में संबंध के परसर्ग को, के, कि हैं। इनका सम्बन्ध ब्रज तथा खड़ी बोली के को या का, के, की से है। सम्बन्ध कारक में को, के, की का प्रयोग भेद्य के लिंग, वचन के अनुसार होता है। इसकी व्युत्पत्ति संस्कृत कृतः से मानी जाती है। कृतः—›कतो—›कओ—›को अथवा प्रा० करितो—›करिओ—› केरिओ—›केरो—›केरो—›कर—›को या का।

अधिकरण का परसर्ग गढ़वाली में माँ और कुमाँउँनी मे में है जिनकी व्युत्पति हिन्दी के समान संस्कृत मध्य से की जाती है। मध्ये—›मज्झे—›मेंहँ या माँहि—›में या माँ।

५—विशेषण

१—मध्य-पहाड़ी में विशेषणों का प्रयोग हिन्दी के ही समान होता है। जिस प्रकार हिन्दी में आकारान्त विशेषण आकारान्त संज्ञाओं के समान ही विकारी रूप धारण करते हैं। उसी प्रकार मध्य-पहाड़ी में ओकारान्त विशेषण भी ओकारान्त

शब्दों के समान ही विकारी रूप धारण कर लेते हैं। कर्त्ताकारक एकवचन के विशेष्य के साथ ओकारान्त विशेषणों में कोई परिवर्तन नहीं होता किन्तु अन्य कारकों के एकवचन तथा बहुवचन शब्दों के साथ वे आकारान्त हो जाते हैं। स्त्रीलिंग विशेष्य के साथ वे ईकारान्त या इकारान्त हो जाते हैं। अन्य विशेषणों में कोई रूपात्मक परिवर्तन नहीं होता है। यहाँ ओकारान्त विशेषणों के रूप दिए जाते हैं।

	कर्ता कारक		अन्य कारक	
	ए० व०	ब० व०	ए० व०	ब० व०
ग०—पु०	भलो	भला	भला	भला
स्त्री०	भलि	भलि	भलि	भलि
कु०—पु०	भालो	भाला	भालो	भाला
स्त्री०	भलि	भलि	भलि	भलि

२—गुण के अनिश्चय पर विशेषण पर मध्य-पहाड़ी में सि या जसो लगा देते हैं। हिन्दी में इन स्थानों पर सा लगता है।

ग०—क़ाळोसी वल्द। क़ाळी सी बिराळी। सफ़ेद सी घोड़ो। तेरो सी नौनो।

कु०—कावो जसो बहड़। कालि या काइ जसि बिराई या बिरालि। सफ़ेद जसो घबाड़ो। तेरो जसो च्यालो।

हि०—काला सा बैल। काली सी बिल्ली। सफेद सा घोड़ा। तेरा सा लड़का।

गढ़वाली में लिंग के साथ सि या सी का परिवर्तन नहीं होता जैसा कि हिन्दी या कुमाउँनी में होता है।

३—मध्य-पहाड़ी में विशेषण में गुण की मात्रा की कमी या हल्कापन दिखाने के लिए विशेषण की द्विरुक्ति भी होती है।

ग०—क़ाळो क़ाळो सि बल्द। काळी काळी सी बिराली। सफ़ेद सफ़ेद सी घोड़ो।

कु०—कावो कावो जसो बहड़। काइ काइ या कालि कालि जसि बिराइ या बिरालि। श्येतो श्येतो जसो घ्वाड़ो।

हि०—हल्का काला बैल। हल्के काले रंग की बिल्ली। हल्के सफ़ेद रंग का घोड़ा।

हिन्दी में गुणाधिक्य को प्रगट करने के लिये विशेषण से पूर्व वहुल या बहुत अधिक शब्द जोड़े जाते हैं। किन्तु मध्य-पहाड़ी में विशेषण शब्द के अन्तिम स्वर को प्लुत कर देते हैं। यदि अन्तिम स्वर ह्रस्व हो तो उपान्त्य दीर्घ स्वर को प्लुत कर दिया जाता है। कभी कभी गुणाधिक्य प्रगट करने के लिये अंतिम स्वर पर बलात्मक स्वराघात भी होता है।

ग०—मिठोऽ आम। छोटाऽ नौना। भलीऽनौनी। सफ़ेऽदे घोड़ो।

कु०—मिठोऽ आम। छोटाऽ च्याला। भलीऽ चेलि। सफेऽद ध्वाड़ो।

हि०—बहुत मीठा आम। अत्यन्त छोटा लड़का। बहुत भली लड़की। अत्यन्त सफ़ेद घोड़ा।

उपान्त्य स्वर पर बलात्मक स्वराघात :—

खट्टो आम। मिट्ठो सेव।

५—हिन्दी तथा मध्य-पहाड़ी के पूर्ण संख्यावाचक विशेषणों में विशेष अन्तर नहीं है। कहीं कहीं कुछ उच्चारण भेद हो गया है। उदाहरणार्थ हिन्दी मे ग्यारह, बारह, तेरह कहा जाता है तो गढ़वाली में अग्यारा, बारा, तेरा और कुमाउँनी में में ग्यार, बार, तेर उच्चारण होता है। विशेष अन्तर केवल तीन संख्याओं मे है। हिन्दी में जहाँ दो, तीस, नवासी कहा जाता है वहाँ गढ़वाली और कुमाउँनी में द्वी, त्रीस, और उन्नवे कहा जाता है। हिन्दी के प्रभाव से पढ़े-लिखे गढ़वाली तथा कुमाउँनी भाषा-भाषी अब तीस और नवासी कहने लगे हैं।

६—क्रमसंख्या वाचक, आवृत्तिसंख्यावाचक और अपूर्णसंख्यावाचक विशेषणों में भी हिन्दी और मध्य पहाड़ी में अधिक अन्तर नहीं है। हिन्दी के क्रम संख्यावाचक और आवृत्ति संख्यावाचक विशेषण आकारान्त होते हैं और मध्य पहाड़ी के ओकारान्त। अतः लिंग, वचन और कारकों के अनुसार दोनों भाषाओं में वे विकारी रूप धारण करते रहते हैं।

क्रम : हि०—पहिला, दूसरा, तीसरा, चौथा, पाँचवाँ, छठा, सातवाँ …………

ग०—पहिळो, दूसरो, तीसरो, चौथो, पांचो या पाँचूँ, छटो, सातौं या सातूँ ……………

कु०—पहिळो, दूसरो या दोहरो, तिसरो, चौथो, पँचु, छठ, सतुँ ………

आवृति :—

हि०—एगुना, दुगना, तिगुना, चौगुना, पंचगुना, छगुना, सतगुना…………

ग०—एगुणो, दुगणो, तिगुणो, चौगुणो, पंचगुणो, छँगुणो, सतगुणो ………

कु०—एगुणो, दुगणो, तिगुणो, चौगुणो पंचगुणो, छगुणो, सतगुणो ………

पहाड़े कहते समय गढ़वाली में क्रमशः एका, दुणा, तियाँ, चौका, पंजा, छक्का, सत्ता, अठ्ठा- नमा तथा दसांई और कुमाउँनी में एक, दुण, तिं, चौक. पंज, छक, सत, अठ, नम तथा दहि का प्रयोग भी होता है।

अपूर्ण :—

हि०—पाव, आधा, पौन, सवा, ड्योढ़ा, ढाई।

ग०—पो, अदा, पौणो, सवा, ड्योढ़ो, ढैइ।

कु०—पो, आध, पौण, सवा ड्योढ़, ढै।

पहाड़े कहते समय ढाई को ढाम और सवा को सवयां भी कहते हैं।

७–समुचय बोधक विशेषणों के लिए हिन्दी में पूर्ण संख्याओं के अन्तिम अ का लोप करके ओं का योग कर देते हैं किन्तु दो के आगे नों और छ के आगे हों जोड़ा जाता है। हिन्दी में इनके विकारी और अविकारी रूप एक ही होते हैं किन्तु मध्य-पहाड़ी में अलग अलग रूप होते हैं। मध्य-पहाड़ी में अविकारी पूर्ण संख्या वाचक विशेषणों क उपान्त्य स्वर ह्रस्व कर दिया जाता है और अन्तिम स्वर का लोप होकर गढ़वाली में इ और कुमाउँनी में ऐ का आगम हो जाता है। द्वि, छ, नौ मे अन्तिम स्वर का लोप नहीं होता है केवल इ या ऐ का आगम हो जाता है। विकारी रूप में गढ़वाली में औ और कुमाउँनी में न प्रत्यय जोड़ दिया जाता है।

हि०–दोनों, तीनों, चारों, पाँचों, छहों, सातों, आठों, नवों, दसों।

ग०—अविकारी–द्विइ, तिनि, चरि, पंचि, छइ, सति, अठि, नौइ, दसि।

विकारी द्वियौं, तिन्यौं, चर्यौं, पंच्यौं, छयौं सत्यौं, अठ्यौं, नऊँ, दसौं।

कु०–अविकारी–द्वियै, तियै, चरै, पंचै, छयै, सतै, अठै, नवै, दसै।

विकारी—द्विन, तिनन, चरिन, पंचिन, छैन, सतिन, अठिन, नवन, दसम।

कुछ शब्द समुदाय के अर्थ में मध्य-पहाड़ी में अधिक प्रयुक्तः होते हैं जैसे बिसि (बीस), चौका (चार), चौक।

कु०—एक बिसि ढेपुआ। एक चौक आखोड़।

ग०–एक बिसि कलदार। एक चौका खरौंट।

८—सार्वनामिक विशेषण–मध्य-पहाड़ी में हिन्दी के समान ही कई सर्वनाम तथा उनसे बने हुए विशेषण काम में लाए जाते हैं। उत्तम तथा मध्यम पुरुष सर्वनाम तथा निज वाचक 'आप' विशेषणवत् प्रयोग में नहीं आते। शेष सभी सर्वनाम विशेषण का काम भी देते हैं।

मूल सर्वनाम जो विशेषणवत् प्रयोग में आते हैं–

ग०—यो, वो, जो, को, वचा, क्वी, कुछ या किछु।

कु०—या, उ, जो, को के वचै।

यौगिक सर्वनाम जो विशेषणवत् काम में आते हैं।

ग०-इनो, उनो, जनो, कनो, इतगो, उतगा, जतगा, कतगा।

कु०-यसो, बसो, जसो, कसो, एतुक उतुक, जतुक, कतुक।

हि०-ऐसा, वैसा, जैसा, कैसा, इतना, उतना, जितना और कितना।

गुणवाचक और परिमाणवाचक विशेषणों की तुलना के लिए हिन्दी के ही समान मध्य पहाड़ी में उपमान को अपादान कारक में रखकर उपमेय के पश्चात् विशेषण रखा जाता है। जैसे:—

ग०-तेरो घोड़ो ते मेरो घोड़ो बढ़ो छ।

कु०-त्यारा घ्वाड़ है म्यारो घ्वाड़ ठुंली छ।

गढ़वाली में कभी कभी ते के स्थान पर चुलै का प्रयोग भी होता है।

मेरो कुकुर तेरा कुकुर चुलै अच्छो छ।

इसी प्रकार वस्तु की सर्वोत्तमता सूचित करने के लिए भी यही नियम काम में आता है।

गढ़वाली-हम तेरी सृष्टि मां सबों ते छोटा छवां।

कुमाउंनी-हम तेरी सृष्टि में सबन है नाना छूं।

६—सर्वनाम

१—मध्य-पहाड़ी के मूल सर्वनाम नीचे दिये जाते हैं। उनके साथ हिन्दी और राजस्थानी के भी मूल सर्वनाम दिए जाते हैं जिससे ज्ञात हो जाता हैं कि मध्य-पहाड़ी का हिन्दी से राजस्थानी की अपेक्षा अधिक निकट का सम्बन्ध है।

हि०	राज०	ग०	कु०
मैं	मैं, हूं	मैं, मि	मैं
तू	तूं, थूं	तू	तु
वह, सो	वो, सो	वो, स्यो	उ, तौ
यह	यो	यो	यो
जो	जो, जिको	जो	जो
कौन	कुण	को	को
क्या	काँई	क्या	के
कोई	कोई	क्वी	क्वे
कुछ	काँई, क्यों	कुछ, किछु	के, कुछ
आप	आपाँ	अफु, अफि	आपूं

इस सर्वनामों के लिंग, वचन और कारकों के कारण कई रूप हो जाते हैं। गढ़वाली में उत्तम और मध्यम पुरुषवाचक सर्वनामों को छोड़कर अन्य सर्वनामों में लिंग भेद भी होता है। कारकों में परसर्ग लगने पर सर्वनाम ए० व० और ब० व० में जो रूप धारण करते हैं वे विकारी रूप कहलाते हैं।

२—पुरुषवाचक सर्वनाम

हि० मैं	ग०		कु०	
	ए० व०	ब० व०	ए० व०	ब० व०
अविकारी	मैं	हम	मैं	हम
विकारी	मैं	हम	मैं	हमन

संबंध	मेरो	हमरो	म्यारो	हमरो
हि० तू				
अविकारी	तु	तुम	तु	तुम
विकारी	त्वे	तुम	त्वि	तुमन
संबंध	तेरो	तुम्हारा	त्यारो	तुम्हरो

गढ़वाली में तू का विकारी रूप त्वे और कुमाउँनी में त्वि हो जाता है। कुमाउँनी में गढ़वाली के समान ही बहुवचन का रूप तुम होना चाहिए था किन्तु परसर्ग के योग से पूर्व, तुम पर बहुवचन में न प्रत्यय और ऊपर से जोड़ा जाता है। यह कुमाउँनी की विशेषता है।

हि० वह :	ग० (वो)			कु० (उ)	
	ए० व०	ब० व०		ए० व०	ब० व०
	पु०	स्त्री०			
अविकारी	वो	वा	वो	उ	ऊ
विकारी	वे	वीं	ऊँ	वि	उनन, उन

गढ़वाली में वो का विकारी रूप वे हो जाता है। और कुमाउँनी में उ का वि हो जाता है कुमाउँनी में यह विशेषता है कि बहुवचन का विकारी रूप उन के बजाय उनन है। और संबंध कारक बहुवचन विकारी वि पर को, के कि लगाने के बजाय उन पर रो लगाकर उनरो हो जाता है स्त्रीलिंग रूप कुमाउँनी में नहीं हैं। वो सर्वनाम के गढ़वाली में एक वचन के स्त्रीलिंग रूप पाए जाते हैं जो राजस्थानी का प्रभाव है। क्योंकि राजस्थानी में भी वह और यह के बहुवचन रूप पाए जाते हैं।

३—निश्चयवाचक सर्वनाम :—

हि०—यह	ग० (यो)			कु० (यो)	
	ए० व०	ब० व०		ए० व०	ब० व०
	पु०	स्त्री०			
अविकारी—	यो	या	यो	यो	यो
विकारी —	ये	यीं	यूँ	ये	इनन इन

सम्बन्ध कारक में उनरो (उनका) के समान ही इनरो (इनका) हो जाता है।

वह के रूप पुरुषवाचक सर्वनाम के अन्तर्गत दिए जा चुके हैं।

सो और तौ —गढ़वाली में स्यो (सो) और कुमाउँनी में तौ के भी निश्चयवाचक रूप चलते हैं। वो या उ अदृष्ट या दृष्टिगत (अत्यन्त दूर) के लिए प्रयुक्त होता है।'स्यो' और 'तौ' दृष्टिगत (थोड़ी दूरी) के लिए प्रयुक्त होते हैं और 'यह' अत्यन्त निकटता को प्रकट करता है।

	ग०			कु०	
	ए० व०		ब० व०	ए० व०	ब० व०
	पु०	स्त्री०			
अविकारी	स्यो	स्या	स्यो	तौ, ते	तौ, ते
विकारी	से	सीं	स्यूँ	तैं, त्यौं	तनन, तन

सम्बन्ध कारक ब० व० मे कुमाउंनी में अन्य सर्वनामों की भांति तनरो हो जाता है।

४—सम्बन्ध वाचक सर्वनाम—

हि० : जो	ग० (जो)			कु० (जो)	
	ए०व०		ब० व०	ए० व०	ब० व०
	पु०	स्त्री०			
अविकारी	जो	जो या ज्वा	जो	जो	जो
विकारी	जै	जैं	जौं	जै ज्यै	जनन जन

कुमाउंनी में सम्बन्ध कारक ब० व० में जनरो हो जाता है। परसर्ग को, के की नहीं लगाने पड़ते।

गढ़वाली में जो के साथ में नित्य सम्बन्धी सर्वनाम, वो के रूप लगाए जाते हैं किन्तु कुमाउंनी में तौ के नित्य सम्बन्धी रूप काम मे आते हैं।

५—प्रश्न वाचक सर्वनाम —

हि० : कौन	ग० (को)			कु० (को)	
	ए० व०		ब० व०	ए० व०	ब० व०
	पु०	स्त्री०			
अविकारी	को	क्वा	को	को	को
विकारी	कै	कैं	कौं	कै	कनन

कुमाउंनी में सम्बन्ध कारक ब० व० में विकारी कनन के स्थान पर कनरो हो जाता है।

हि० क्या के स्थान पर गढ़वाली में क्या ही रहता है और कुमाउंनी में के हो जाता है। के तथा क्या के अविकारी रूप ब० व० में भी 'के' और 'क्या ही रहते हैं। विकारी रूप गढ़वाली में क्या का 'के' हो जाता है। कुमाउंनी मे 'के' ही रहता है।

गढ़वाली में क्या का प्रयोग वस्तु के लिए होता है और को का प्रयोग व्यक्ति के लिए होता है। कुमाउँनी में भी 'के' वस्तु के लिए और 'को' व्यक्ति के लिए काम में लाया जाता है। किन्तु गढ़वाली और कुमाउँनी दोनों मे जब कभी अनेवो

में से एक को छाँटना हो तो व्यक्ति और वस्तु दोनों के लिए 'को' का प्रयोग होता है।

ग०--द्वीडालों माँ को लम्बो छ ? (दोनों पेड़ों में से कौन लम्बा है ?)

कु०--द्वि वोटन में को लाम्बो छ् ?

६—अनिश्चयवाचक सर्वनाम—

हिन्दी में कोई और कुछ अनिश्चयवाचक सर्वनाम हैं। उनके स्थान पर गढ़वाली में 'क्वी' और 'कुछ' या 'किछु' तथा कुमाउँनी में 'क्वे' और 'के' का प्रयोग होता है। जिस प्रकार हिन्दी में कोई व्यक्ति के लिए और कुछ वस्तु के लिए प्रयुक्त होता है उसी प्रकार गढ़वाली में 'क्वी' और कुमाउँनी में 'क्वे' व्यक्ति के लिए तथा गढ़वाली में 'कुछ' और 'किछु' और कुमाउँनी में 'के' वस्तु के लिए काम में आता है।

हि०-कोई कुछ-	ग० (क्वी)		कु० (क्वे)	
	ए० व०	ब० व०	ए० व०	ब० व०
अविकारी--	क्वी	क्वी	क्वे	क्वे
विकारी—	कै	कौं	कै	कननै

कुमाउँनी के सम्बन्ध कारक ब० व० में परसर्ग को, के की न लगकर कनरै या कनर्नै हो जाता है।

अविकारी--	कुछ किछु	कुछ किछ्	के	के
विकारी —	कै	कुछौं	कै	कननै

ग०-क्वी नी छ (कोई व्यक्ति नहीं है), कुछ नी छ (कुछ वस्तु नहीं है)।

कु-क्वै नी छ, के नी छ।

जब क्वी या क्वे तथा कुछ या के विशेषणवत् प्रयोग में आते हैं तो क्वी या क्वे संख्या का बोध और कुछ या के मात्रा का बोध कराते हैं।

ग०-क्वी डाला नीछन, कुछ दुःख नीछ।

कु०-क्वै व्वाटा नीछन, के दुःख न्हाति।

गढ़वाली में 'कुछ' सर्वनाम का प्रयोग विशेषणवत् होने पर संख्या का बोध भी होता है जब संख्या में से कुछ को अलग किया जाए। जैसे. ग० कुछ विद्यार्थी पास ह्वै गैन (कुछ विद्यार्थी पास हो गए)

ऐसे स्थल पर कुमाउंनी में के का प्रयोग नहीं होता है बल्कि के स्थान पर कतुकैक का प्रयोग होता है। जैसे :-

कु० कतुकैक विद्यार्थि पास हैगिं।

७—हिन्दी का आदर सूचक सर्वनाम 'आप', मध्य-पहाड़ी बोलियों में नहीं होता है। आदर के लिए तुम का प्रयोग एक वचन की संज्ञा के लिए भी होता है।

ग०-अजी पंडित जी ! तुम कखते औणा छवा।

कु०—अहो पंडित ज्यू ! तुम काँ बटि उण्त लैरौ ?

हि०-पंडित जी ! आप कहाँ से आ रहे हैं ?

अन्य पुरुष में आदर के लिये वह या यह के बहुबचन के विकारी या अविकारी रूप काम में लाए जाते हैं।

ग०-हमारा गुरू जी बड़ा पंडित छन। वो आज यख आयां छना। ऊंमा मैं यह सवाल पुछुलो।

कु०-हमारा गुरू ज्यु बाड़ा पंडित छन। उ आज यां ऐ रैं। उनन है मैं यो सवाल पुछुलो।

हि०—हमारे गुरू जी बड़े पंडित हैं। वे आज यहाँ आए हुए हैं। उनसे मैं यह प्रश्न पूछूंगा।

हिन्दी में कभी कभी आप का प्रयोग अन्य पुरुष में भी होता है जैसे :- ' मैथिली शरण गुप्त झांसी के रहने वाले थे। आप का कवि समाज में बड़ा मान था।" मध्य-पहाड़ी में इस प्रकार आप शब्द का अन्यपुरुष में प्रयोग नहीं होता है। आज कल हिन्दी के प्रभाव से मध्यम पुरुष में आदर के लिए गढ़वाली में आप और कुमाउंनी में आपूं का प्रयोग होने लगा है।

ग०-क्या आप भी नैनीताल चलिला।

कु०-आपु ले नैणिताल चलिला।

हि०-क्या आप भी नैनीताल चलेंगे।

८—निज वाचक सर्वनाम आप का प्रयोग मध्य-पहाड़ी बोलियों में हिन्दी के ही समान होता है। हि० आप, ग० अफु, कु० आपूं। गढ़वाली में अफू के रूप बदलते हैं किन्तु कुमाउंनी में केवल संबंध कारक और अधिकरण कारक को छोड़ कर आपूं के रूप नहीं बदलते।

	ग०		कु०	
	ए० ब०	ब० व०	ए० ब०	ब० व०
अविकारी-	अफु	अफु	आपूं	आपूं
विकारी-	अफूं	अफूं	आपूं	आपूं
संबंध कारक-	अपणो	अपणा	आपणो	आपणा
संबंध + अधिकरण-	आपस	आपस	आपस	आपस

हिन्दी के आप ही या अपने आप का प्रयोग बल देने के लिए होता है।

मध्य-पहाड़ी में हि के स्थान पर इ हो जाता है। अतएव गढ़वाली में आप ही के स्थान पर अफी और कुमाउंनी में आफि का प्रयोग होता है।

ग०-वेन अफु खाए। अफु सणि बड़ो नी समझणो चैंद।

अपणो नौनो। हम आपस में लड़ूंला। आपस को झगड़ा।

कु०-विले आपूं खायो। आपूं कणि ठुलो नि समझणो चैन।

आपणो च्यालो। हम आपस में लड़ूला। आपस को झगड़ा।

हि०-उसने आप भोजन किया। अपने को बड़ा नहीं समझना चाहिए।

अपना लड़का। हम आपस में लड़ेंगे। आपस का झगड़ा।

९—सर्वनामिक विशेषण—सभी निश्चयवाचक, अनिश्चयवाचक, प्रश्नवाचक तथा संबंधवाचक सर्वनामों के मूल रूपों पर या विकारी रूपों पर प्रत्यय लगा कर मध्य-पहाड़ी में हिन्दी के समान ही नए सर्वनाम बनाए जाते हैं जो विशेषण का भी काम देते हैं।

ग०—इनो उनो जना कनो इतगा उतगा जतगा कतगा।

कु०—एसो वसो जसो कसो एतुक़ उतुक़ जतुक़ कतुक़।

इनमें से इनो उनो जनो कनो या एसो वसो जसो कसो गुणवाचक विशेषण का काम भी देते हैं। इनके लिंग तथा वचन के अनुसार रूप बदलते रहते हैं।

ग०—इनो नौनो, इना नौना, इनी नौनी।

कु०—एसो च्यालो - एसा च्याला - एसी चेलि।

म० प० में हिन्दी के समान ही आपस से आपसी सार्वनामिक विशेषण बनता है।

व्युत्पत्ति

पुरुष वाचक—

मैं :—यह सर्वनाम अधिकांश वर्तमान आर्य-भाषाओं में पाया जाता है। डाक्टर चटर्जी ने मैं की व्युत्पत्ति अस्मत्[1] के तृतीया एक वचन के रूप मया से बताई है। मैं पर अनुनासिकता का आगम अकारान्त संज्ञा शब्दों के तृतीया एकवचन के एन से बताई है। सभी हिन्दी भाषा विज्ञानियों[2-3] ने उन्हीं के मत को स्वीकार किया है। मध्य पहाड़ी और हिन्दी के 'मैं' में कोई अन्तर नहीं है। मध्य पहाड़ी में 'मैं' सभी कारकों के एक वचन में काम में लाया जाता है। हिन्दी में उसके स्थान पर विकारी मुझे या मुझ हो जाता है।

१—च० व० ल० पृष्ठ ८०८।

२—वां० अ० भा० पृष्ठ १६३।

३—हि० भा० इ० पृष्ठ २८०।

हम :—इस सर्वनाम की व्युत्पत्ति चटर्जी[१] महोदय ने वैदिक अस्मे से की है। जो वयं के स्थान पर काम में लाया जाता था। मध्यकालीन भारतीय आर्य भाषाओं में विशेषकर मागधी[२] में प्रथमा बहु वचन के रूप अम्ह-अम्हे-अम्मी पाए जाते हैं। अस्मे ध्वनि विर्पयय से अम्हे हो गया है। यही अम्हे वर्तमान कालीन आर्य भाषाओं में हम हो गया है। हिन्दी के सभी भाषा विज्ञानियों[३] ने इसी व्युत्पत्ति को स्वीकार किया है। हिन्दी के हम और मध्य पहाड़ी के हम में कोई अन्तर नहीं है।

तू :—तू की व्युत्पत्ति के सम्बन्ध में डाक्टर चटर्जी[४] तथा डाक्टर सक्सेना[५] के विचारों में कुछ अन्तर है। चटर्जी महोदय तू की व्युत्पत्ति त्वम्—से करते हैं। त्वम तुम-तु(प्राचीन बंगाली, तथा तू(पूर्वी और पश्चिमी हिन्दी)। वे साथ ही यह अनुमान भी लगाते हैं कि कदाचित् प्राचीन आर्य भाषाओं ही में त्वम् का एक रूप तू भी रहा होगा। क्योंकि वर्तमान पश्चिमी भारतीय आर्य-भाषाओं—सिन्धी, गुजराती, मराठी, राजस्थानी और पंजाबी में तू के स्थान पर तूँ है। जिसमें त्वम् की अनुनासिकता है। किन्तु हिन्दी, बंगला आदि के तू या तु में अनुनासिकता नहीं है। डाक्टर सक्सेना तू तथा तूँ दोनों की व्युत्पत्ति त्वम् से करते हैं जिसका प्राकृत रूप वे तुमं बताते हैं। उन्होंने तुम या तुम्ह की व्युत्पत्ति प्राकृत तुम्हें से की है। कुछ भी हो तुम तथा तू दोनों का मूल त्वम् ही है, जब तक कि चटर्जी महोदय का अनुमान स्वीकार नहीं कर लिया जाता। क्योंकि प्राकृत के तुम्हें की व्युत्पत्ति भी त्वम् से ही की जा सकती है। मध्य-पहाड़ी में मागधी और शौ से उत्पन्न वर्तमान भारतीय आर्य भाषाओं के समान ही तू या तु अननुनासिक हैं।

मेरो तेरो हमरो हमारो—की व्युत्पत्ति में तू तथा हम के रूपों पर प्राकृति की केर और अपभ्रंश की केरक प्रत्ययों के योग से बताई जाती है। हिन्दी के सभी भाषा विज्ञानी[६] इस मत को स्वीकार करते हैं। कुमाउँनी के अन्य पुरुष बहुवचन के रूप उनरो या उनर अवधी के ओंकर के ही समान है। जिसमें कालान्तर में क का अ बनकर ओंअर या उनर या उनरो बन गया है।

त्वे या त्वि :—गढ़वाली के मध्यम पुरुष—एक वचन का विकारी रूप त्वे

१—च० व० ल० पृष्ठ ८०९।

२—पा० स० म० पृष्ठ ४३।

३—बा० अ० भा० पृष्ठ १६३। हि. भा. इ. पृष्ठ २८१।

४—च० व० ल० पृ० ८१६।

५—बा० अ० भा० पृ० १७०।

६—बा आ० भा० पृष्ठ १६३ और १७० तथा श्या०हि० भा० स० पृष्ठ १४७।

और कुमाउँनी का त्वि है जो हिन्दी से नहीं मिलते। हिन्दी में इनके स्थान पर तुझ या तुझे है। जिनकी व्युत्पत्ति प्राकृत और अपभ्रंश के तुज्झ से की जाती है। सम्भव है कि तुज्झ–तुह-तुहे-त्वे या त्वि रूप बन गए हों। यह भी सम्भव है कि जिस प्रकार अवधी[1] तथा बंगला[2] की तुइ की व्युत्पत्ति त्वया से की जाती है उसी प्रकार मध्य पहाड़ी में भी त्वे या त्वि की व्युत्पत्ति त्वया से हो। त्वया–तए (प्रकृति)–तुइ इसी प्रकार त्वि या त्वे।

निश्चयवाचक सर्वनाम :—ओ (यह)

हिन्दी के कुछ भाषा-विज्ञानी[3] वह दूरदर्शी सर्वनाम की व्युत्पत्ति अदस् के अम् रूप से करते हैं। किन्तु डाक्टर चटर्जी[4] के अनुसार संस्कृत और पाली के अम् का विकसित अवूँ या ओं होना चाहिए था। न कि वो या वह। अतएव रूप उनका विचार है कि प्राचीन आर्य-भाषाओं मे दूरवर्ती निश्चयवाचक सर्वनाम के लिए अव शब्द था। जिसका रूप प्राचीन और आर्वाचीन इरानी तथा दरद भाषाओ म पाए जाते हैं। प्राचीन फारसी–अव, अवेस्ता–अव पहलवी–वो, फारसी—ऊ, शिणा—ओ। रम्वानी—ओ। जिप्सी (योरोपियन)— औव, इसी अव[5] के रूप है। भारतीय आर्य भाषाओं—वैदिक-संस्कृत पाली-प्राकृत के साहित्य में यद्यपि अव के रूप नहीं मिलते किन्तु बोलचाल मे इसके रूपों का प्रयोग रहा होगा। जो अपभ्रंश तथा वर्तमान भारतीय आर्य-भाषाओं के साहित्य में प्रवेश कर गया। डा० सक्सेना का यह विचार कि इ या ए जब समीपवर्ती निश्चयवाचक सर्वनाम की आरिम्मक ध्वनियाँ हो गई तो दूर के लिए उ या ओ ध्वनियाँ स्वीकृत कर ली गई किन्तु इ का समीप से और उ का दूर से कोई स्वाभाविक संबंध नहीं है। वर्तमान भारतीय आर्य-भाषाओं में समीपवर्ती निश्चयवाचक सर्वनाम की आरम्भिक ध्वनि इ या ए इसलिए हुई कि प्राचीन भारतीय आर्य भाषाओं में समीपवर्ती निश्चयवाचक सर्वनाम के लिए एतद् या इदं के रूप काम मे लाए जाते थे। दूरवर्ती निश्चयवाचक सर्वनाम के लिए तद् और अदस् के रूप काम में आते थे अतः इन्ही के विकसित रूप हिन्दो आदि वर्तमान भारतीय आर्य-भाषाओं में होने चाहिए। तद् से विकसित रूप तौ, ते ओर सो वर्तमान भारतीय आर्य-भाषाओं में है किन्तु

१—व० अ० म० पृष्ठ १७०।

२—च० व० ल० पृष्ठ ८१७।

३—हि० म० स० पृष्ठ १५५।

४—च० व० ल० पृष्ठ ८३७।

५—लि० स० इ० वौ० १ भाग २ पृष्ठ ४५।

अदस् के नहीं। ऐसा प्रतीत होता है कि अव का प्रयोग प्राचीन और मध्यकालीन बोलचाल की भाषा में रहा होगा जैसा कि डाक्टर चटर्जी का विचार है जब कि साहित्य में अदस् के रूप प्रयोग मे आते रहे। जब अपभ्रंश ने साहित्यिक रूप धारण किया तब उसके साथ बोलचाल की भाषा के अव के विकसित रूपों ने धीरे-धीरे अदस् के रूपों का स्थान ग्रहण कर लिया और जैसे जैसे भारतीय आर्य-भाषाओं पर ईरानी प्रभाव बढ़ता गया 'अव' के विकसित रूप उ या ओ ने अदस् के रूपों का साहित्य से भी दूर कर दिया। एक बार जब अव के विकसित रूपों को बोलचाल के साथ साथ साहित्य में भी स्थान मिल गया तब सादृश्य के कारण समीपवर्ती सर्वनाम यह के रूपों के समान ही उ या ओ के रूप भी प्रचलित होने लगे। इसीलिये मध्य-पहाड़ी में सभी सर्वनामों के विकारी रूप अनुकरण पर बने हैं। जैसे—मैं; त्वे या त्वि; ये; वे या वि; कै या के; जै या जे आदि।

स्यो (सो) :—गढ़वाली का स्यो तथा कुमाउंनी का सो और उनसे विकसित तौं और ते सर्वनाम तथा उनके रूपों के विकास तो स्पष्ट ही प्राचीन भारतीय आर्य-भाषा के तद् शब्द के अनेक रूपों से हुआ है। गढ़वाली में स्यो के एक वचन स्त्रीलिंग रूप संस्कृत के समान ही चलते हैं संस्कृत सा, गढ़वाली—स्या। गढ़वाली के सभी सर्वनामों के एक वचन स्त्रीलिंग रूप भी हैं। गढ़वाली में स्यो निश्चयवाचक सर्वनाम है और कुमाउंनी में सो नित्यसम्बन्धी सर्वनाम है।

थो (यह) :-इस सर्वनाम की व्युत्पत्ति संस्कृत के एषः[1] से की जाती है। डाक्टर चटर्जी इसकी व्युत्पत्ति प्राचीन भारतीय आर्य भाषा के एता[2] से करते हैं।

प्रश्नवाचक सर्वनाम को और संबधवाचक सर्वनाम जो की व्युत्पत्ति स्पष्ट ही प्राचीन भारतीय आर्य-भाषा के कः और यः से की जा सकती है। इनके विकारी रूप 'कै' या 'जै' अन्य सर्वनामों के अनुकरण पर बन गए हैं।

वस्तु के लिए प्रयुक्त होने वाला कुमाउँनी का 'के' किम् का ही विकसित रूप है। संस्कृत —किम , प्राकृत[3]–कि या किं। कुमाउँनी— के। गढ़वाली–के 'क्या' प्रश्नवाचक सर्वनाम की व्युत्पत्ति हिन्दी के ही समान की जा सकती है। डाक्टर श्याम सुन्दर दास[4] ने क्या की व्युत्पत्ति संस्कृत के किम् से की है। संस्कृत—किम्, प्राकृत-अपादान कारक आ रूप काँह, अपभ्रंश—कांइ, ग० —क्या। डाक्टर वर्मा इसकी व्युत्पत्ति के सम्बन्ध में किसी निर्णय पर नहीं पहुंचे हैं। किम् से क्या की

१-हि० भा० इ० पृष्ठ २८३।
२--च० ब० ल० पृष्ठ ८३०।
३–प० स० म० पृष्ठ ३०४।
४–श्या० हि० भा० सा० पृष्ठ १५६।

व्युत्पत्ति दूसरे रूप से भी हो सकती है। क्योंकि कुमाउँनी की ग्रामीण बोलियों तथा गढ़वाली की राठी आदि बोलियों में ए का उच्चारण य के समान करने की प्रवृत्ति है। अतः संस्कृत किम् , प्राकृत—कि या किं। कुमाउँनी—के या क्ये, गढ़वाली—क्ये या क्या।

अनिश्चयवाचक सर्वनाम क्वे या क्वी हिन्दी के कोई का ही विकसित रूप है। जिसकी व्युत्पत्ति इस प्रकार की जाती है। को+अपि—कोवि—कोई क्वे या क्वी।

कुछ या किछु जो गढ़वाली में है कुमाउँनी में नहीं संस्कृत के किंचिद् से निकला हुआ है।

निजवाचक सर्वनाम आपूँ या अफु हिन्दी के आप के समान ही आत्मन् से निकले हैं। आत्मन्—अत्ता—अप्पा—आपूँ या अफु। इसी प्रकार आप ही के स्थान पर मध्य पहाड़ी में अफी या अफि है।

७—क्रिया

जिन मूल शब्द में विकार होने से क्रिया बनती है और वह वाच्य, काल, अर्थ, पुरुष, लिंग और वचन को प्रगट करने में समर्थ होती है उसे धातु कहते हैं। मध्य-पहाड़ी में हिन्दी की सभी धातुएं प्रायः ज्यों की त्यों पाई जाती हैं। कहीं कहीं थोड़ा सा उच्चारण भेद हो जाता है। मध्य-पहाड़ी में धातुओं पर णो जोड़ने से क्रिया का सामान्य रूप बनता है। जैसे – जा धातु पर णो जोड़ने से जाणो क्रिया का सामान्य रूप बना। रड़ और ढ़ से अन्त होने वाली धातुओं पर क्रिया के सामान्य रूप बनाने में णो के बदले नो जोड़ा जाता है।

क्रिया के वाच्य, काल, अर्थ, पुरुष लिंग आदि प्रगट करने के लिये कभी धातु से ही काम चल जाता है और कभी धातु पर विशेष प्रत्यय जोड़ कर कृदन्त बनाये जाते हैं जो वाक्य में क्रिया का काम देते हैं। धातु या कृदन्तों के रूपों के साथ सहायक क्रियाओं के योग से भी क्रिया के वाच्य, अर्थ, काल आदि प्रगट किए जाते हैं। कभी किसी धातु से बने हुए कृदंत रूपों पर अन्य धातुओं के कृन्दत रूप जोड़ने पर संयुक्त क्रिया वाक्य में वाँछित अर्थ प्रगट करने में समर्थ होती है। अतः मध्य पहाड़ी की धातुओं, कृदन्तों, सहायक क्रियाओं और उन प्रमुख क्रियाओं पर जो संयुक्त-क्रिया के लिए काम म लाई जाती है बिचार करना आवश्यक है।

धातु—मध्य पहाड़ी और हिन्दी की धातुओं में जैसा कि पहले कहा गया है विशेष अन्तर नही हैं।

मूल धातु :—बैठ, उठ, चल, जा, खा, रो, हंस आदि। कुछ धातुओं में

उच्चारण भेद भी हो जाता है जैसे-मध्य-पहाड़ी से (हि० सो) ग० (औ), कु० (ऊँ), हि० (आ)

यौगिक धातु-

१—कुछ मूल धातुओं में प्रत्यय जोड़ कर प्रेरणार्थक क्रियाएँ बनाई जाती हैं। धातु के अंतिम अ को लोप करके गढ़वाली में औ और अवा जोड़ा जाता है और कुमाउंनी में ऊं और अऊँ जोड़ा जाता है।

मूल धातु	ग०		कु०	
	प्र० प्रे०	द्वि० प्रे०	प्र० प्रे०	द्वि० प्रे०
चल हिट	चलौ	चलवा	हिटूँ	हिटऊं
देख	देखौ	देखवा	दिखूं	दिखऊ
गिर	गिरौ	गिरवा	गिरूँ	गिरऊं

मूल धातु	ग०		कु०	
	प्र० प्रे०	द्वि० प्रे	प्र० प्रे०	द्वि० प्रे०
पढ़	पढ़ौ	पढ़वा	पढ़ूँ	पढ़ऊं
गा	गवौ	—	गऊँ	—
खो	—	खिवा	—	खिऊं
दौड़	दौड़ौ	दौड़वा	दौड़ूँ	दौड़ऊँ

ग०—मैं चलणो छऊं। मैं हऽल चलौणो छऊं। मैं नौकर ते हऽल चलवाणों छऊं।

कु०—मैं हिणो छुं। मैं हल चलूंणो छुं। मैं हल नौकर ले चलऊंणों छुं।

हि०—मैं चलता हूं। मैं हल चलाता हूं। मैं नौकर से हल चलवाता हूं।

कृदंत:—मध्य पहाड़ी की क्रिया बनाने में निम्नांकित कृदंत काम में लाए जाते हैं। इनके अतिरिक्त कुछ अन्य कृदंत भी यहां दिए जाते हैं जिनका काल से सम्बन्ध है।

१—**क्रियार्थ संज्ञा**—धातु पर णो या नो जोड़ने से बनती है ओकारान्त होने से इसका विकारी रूप, नियमानुसार आकारान्त होना चाहिए! किन्तु बोलने में अकारान्त भी हो जाता है। अतः दोनों विकारी रूप प्रयोग में आते रहते हैं। गढ़वाली में प्रायः आकारान्त और कुमाउंनी में अकारान्त रूप काम में लाया जाता है। अविकारी और विकारी रूपों को क्रमशः स्थाई रूप कहना उचित होगा। जैसे—

जा + णो = जाणो — जाण।

लड़ + नो = लड़नो — लड़न।

कुमाउँनी में कुछ धातुएँ के सामान्य रूप या विकारी रूप बनाने में इस नियम का पालन नहीं होता। बल्कि उन पर उणों जोड़ना पड़ता है। जैसे, आ (ऊँणो या ऊँण); कहना (कुणों या कूण); रहना (रुणो या रूण), लाना (ल्यूणो या ल्यूण)। सभी प्रेरणार्थक धातुऐं भी इसी नियम का पालन करती हैं।

२-वर्तमान कालिक कृदंत—धातु पर गढ़वाली में दो और कुमाउँनी में नो लगाकर बनता है। कुमाउँनी में बोलचाल में कभी न और कभी केवल मां मात्र रह जाता है।

हि०	ग०	कु०
चलता	चलदो	हिटन हिटां
खाता	खांदो	खान, खाँ
मरता	मरदा	मरन, मरां

कुमाउँनी में क्रियार्थक संज्ञा के अन्त में णो होता है और वर्तमान कालिक कृदंत के अन्त में नो, न, या आँ हो जाता है। कुमाउँनी में इस कृदत का प्रयोग कम होता है। इसके विपरीत गढ़वाली में वर्तमानकालिक कृदत का क्रिया के रूप बनाने में तथा विशेषणवत प्रयोग अधिक होता है। इस कृदंत का प्रयोग विशेषणवत् होने पर ओकारान्त विशेषणों के समान हो विकारी रूप भी बनते हैं।

हि०	ग०	कु०
चलता, चलता हुआ,	चलदो	चलनो, चलन (प्रयोग में नहीं आता)

इस कृदंत का विकारी रूप कभी अव्यय के समान भी प्रयोग में आता है। तब यह प्राय: पुनुरुक्त भी होता है।

हि०	ग०	कु०
चलते देर हो गई	चलदा देर ह्वै गए	—
चलते चलते देर हो गई	चलदा चलदा देर ह्वै गए	हिटन हिटन देर ह्वै गे

३—भूतकालिक कृदंत—इस कृदंत को बनाने में गढ़वाली में धातु के अन्तिम अ के स्थान पर ए कर देते हैं। यदि धातु आ, ए अथवा ओकारान्त हो तो धातु के अन्तिम स्वर का लोप नहीं होता केवल ए जोड़ दिया जाता है। कभी कभी गढ़वाली में यो जोड़ कर भी भूतकालिक कृदंत बनाया जाता है। कुमाउँनी में भूतकालिक कृदंत सदैव यो जोड़ कर ही बनता है।

हि०	ग०	कु०
हुआ	होये, होयो	भयो
गया	गये, गयो	गयो

चला	चले, चल्यो या चलो	हिटो, हिट्यो

इस कृदंत का विशेषणवत् प्रयोग होने पर कार्य की पूर्णता प्रगट होती है। और गढ़वाली में अन्त में यो या यूं और कुमाउँनी में यों जोड़ा जाता है। इसके रूप तब ओकारान्त विशेषणों के समान बदलते रहते हैं। जैसे—

हि०	ग०	कु०
चला या चला हुआ	चल्यौं, चल्यूं	चल्यों

इस कृदंत का क्रिया विशेषणवत् भी प्रयोग होता है। जैसे, हि० चले हुए देर हो गई, ग० चल्यां देर ह्वै गए, कु० चल्यां देर ह्वै गई।

अधिकारी कृदंत:—इनका संबंध भी क्रिया के कालों से है अतएव ये भी यहीं दिए जाते हैं।

४—पूर्वकालिक कृदंत—गढ़वाली और कुमाउंनी दोनों में धातु पर इ जोड़ पर पूर्वकालिक कृदंत बनाया जाता है। जिस धातुओं के अन्त में आ, ओ या औ हो उन पर ओ और औ का लोप करके ऐ जोड़ा जाता है। इसके पश्चात् गढ़वाली में इस विकारी रूप पर क और कुमाउंनी में बेर लगाया जाता है। गढ़वाली में भाषण के समय कभी कभी क का लोप होकर अन्तिम इ दीर्घ हो जाती है। कुमाउंनी में कभी कभी बिना बेर लगाए भी पूर्वकालिक कृदंत का काम चल जाता है। यह प्रवृत्ति उस स्थान पर अधिक दिखाई देती है जहाँ दो या दो से अधिक पूर्वकालिक क्रियाएं आती हैं।

हि०	ग०	कु०
चलकर	चलिक या चली	चलिवेर या चलि
जोड़कर	जोड़िक या जोड़ी	जोड़िबेर या जोड़ि
देखकर	देखिक या देखी	देखिवेर या देखि
पछताकर	पछतैकि या पछतै	पछतै बेर या पछतै
जाकर	जैक, जैकि	जैवेर या जै

ग०—मैं पाँच मील चलिक आयों या मैं पांच मील चली आयों।

कु०—में पाँच मील चलिवेर आयों या मैं पाँच मील चलि आयों।

४—तत्कालिक कृदंत—वर्तमानकालिक कृदंत के विकारी रूप पर ही लगाकर बनता है।

ग०—जांदा + ही→जाँदि या जैंदि या जंदै।

कु०—जाना + ही→जानै जौ।

हि०—जाते ही।

६—कर्मवाच्य कृदंत:—धातु का अंतिम स्वर लुप्त करके कुमाउँनी में इ और

गढ़वाली में यां जोड़कर बनाया जाता है। जैसे, कु०–खाइ, बोलि, मारि, पकड़ि, ग०–खायाँ, बोल्याँ, मार्याँ, पकड्याँ। इन रूपों पर धातु के रूप जोड़कर कर्मवाच्य बनाया जाता है।

सहायक क्रिया

१—सहायक क्रियाओं में मुख्य 'छ' है। इसके रूप गढ़वाली और कुमाउंनी में इस प्रकार है।

वर्तमान:–

ग०		कु०		
ए० व०	ब० व०	ए० व०		ब० व०
		पु०	स्त्री०	
१–छऊँ	छवाँ	छुँ	छूँ	छुँ
२–छई	छयाँ	छै	छैं	छौ
३—छ	छम	छ	छया	छन

भूत–

पु०	स्त्री०				
१— छयो,	छई	छया	छियुं या छ्यूं		छियाँ छ्याँ
२— छयो,	छई	छया	छिये	छि	छिया
३— छयो,	छई	छया	छियो	छि	छिया छिन् (स्त्री)

३—जिस प्रकार अवधी में अस् धातु के अन्य पुरुष एक वचन के रूप अस्ति से आथि बनता है उसी प्रकार कुमाउंनी में हाति रूप बनता है। अस्ति→ अत्थि—आथि→हाति किन्तु यह रूप न के साथ सदैव निषेधार्थ में प्रयुक्त होता है। न्हाति। नहीं है।

कु०

ए० व०		ब० व०	
पु०	स्त्री०	पु०	स्त्री०
१—न्हातुँ	न्हात्युं	न्हातुं	न्हातियुं
२—न्हातै	न्हात्ये	न्हातो न्हाता	न्हातियौं या न्हातिया
३—न्हाति	न्हाते	न्हातन	न्हातन या नै

यह केवल स्थिति दर्शक क्रिया है। यह कभी र (रह्) धातु के साथ सहायक क्रिया के रूप में भी आती है। जैसे :—र–न्हाति। वह नहीं है। र—न्हातन। वे नहीं हैं।

३—कुमाउंनी में र धातु के साथ छ के रूप जोड़ करके रछ सहायक

क्रिया भी बनाई जाती है। इसके रूप बनाने में र अविकारी रहता है। केवल स्त्री लिंग में र के स्थान पर रै हो जाता है। और छ के रूप पूर्ववत् चलते हैं। अन्य पुरुष बहुवचन में बिना छ के केवल र से भी काम चल जाता है। ऐसे अवस्था में र के रिं या रैं रूप हो जाते हैं और दोनों लिंगों में प्रयुक्त होते हैं। किन्तु भूतकाल मे यह अपवाद नहीं होता है। कु०—व मैंश याँ रछ। दो सैंणि याँ रैछ्या।

४—उपर्युक्त मुख्य सहायक क्रियाओं के अतिरिक्त भिन्न भिन्न अर्थों को प्रकट करने के लिए मध्य-पहाड़ी में हिन्दी के ही समान संयुक्त क्रियाओं को बनाने के लिए मुख्य क्रिया के साथ कुछ सहायक क्रियायें जोड़ी जाती हैं। वे इस प्रकार हैं। जोणो, देणो, सेणो, रखणो हलणो (कुमाउंनी), अलणों (गढ़वाली) ऐंठणों (कुमाउंनी) बैठणो, (गढ़वाली) बाणो, पड़नो, होणो, सकणो, लगणो, रणो, पाणो इत्यादि।

अ—काल

मध्य-पहाड़ी में निम्नांकित काल होते हैं। ये तीन अर्थ अर्थात निश्चय, आज्ञा और सम्भावना तथा कार्य की तीन अवस्थायें पूर्ण, अपूर्ण तथा सामान्य पर निर्भर रहते हैं।

भूतकाल:—

१—सामान्य भूत—यह काल वर्तमान कालिक कृदंत के साथ हिन्दी के ही समान लिंग, वचन और पुरुष के अनुसार छ सहायक क्रिया के भूतकाल के रूपों को लगाने से बनता है। गढ़वाली में वर्तमानकालिक कृदंत के रुप भी ओकारान्त शब्द के अनुसार विकारी रूप धारण करते हैं। कुमाउंनी में बोलचाल में ओकारान्त के स्थान पर आकारान्त हो जाता है। और न का लोप होकर पूर्व आ स्वर अनुनासिक हो जाती है।

हि०—चलता था।

ए० व०

	ग०		कु०	
	पु०	स्त्री०	पु०	स्त्री०
१—	चलदो छयो	चलदी छई	हिटाँ छियुं या छ्यूं	हिटाँ छिउं या छ्यूं
२—	चलदो छयो	चलदी छई	हिटाँ छिये	छटनछि
३—	चलदो छयो	चलदी छई	छिटाँ छियो	हिटाँछि

ब० व०

१—	चलदा छया	चलदा छया	हिटाँ छियाँ	हिटाँ छियाँ

२—चलदा छ्याँ	चलदा छया	हिटाँ छिया	हिटाँ छिया
३—चलदा छया	चलदा छया	हिटाँ 'छया	हिटाँछिन

२—निश्चयार्थ भूत—यह काल भूतकालिक कृदंत से बनता है। किन्तु छ सहकारी क्रिया के समान ही लिंग वचन और पुरुष में रूप बदलते रहते हैं।

हिन्दी—चला

ए० व०

ग०		कु०	
पु०	स्त्री०	पु०	स्त्री०
१—चल्यूं	चल्यूं	हिट्यूं	हिट्यूं
२—चली	चली	हिटै	हिटि
३—चले चल्यो	चले	हिटो	हिटि

ब० व०

१—चल्याँ	चल्याँ	हिटाँ	हिटाँ
२—चल्या	चल्या	हिटा	हिटा
३—चलिन, चल्या	चलीं, चलिन	हिटा	हिटिन

इस काल में सकर्मक क्रिया के रूप भी इसी प्रकार चलते हैं। किन्तु लिंग, बचन और पुरुष हिन्दी के समान ही कर्म के अनुसार होते हैं और कर्ता पर गढ़वाली में न और कुमाउंनी में ले परसर्ग जोड़ा जाता है। जैसे ग०—वैन मैं मारयूं, मैंन वो मारे, मैंन रोटी खाये। कु० उले मैं मार्यूं, मैंले उ मारो, मैंले मैं र्वाटो खायो।

३—अपूर्णभूत—गढ़वाली में इस काल की रचना सरल है किन्तु कुमाउंनी में कई सहायक क्रियाओं के द्वारा इस काल की रचना पूरी होती है। गढ़वाली में क्रियार्थ संज्ञा के स्थाई रूप के साथ छ सहायक क्रिया के भूतकाल के रूप जोड़ दिए जाते हैं। किन्तु कुमाउंनी में क्रियार्थ संज्ञा के अस्थाई रूप के आगे लागि तथा रछ सहायक क्रियाओं के रूप जोड़कर यह काल पूरा किया जाता है। कुमाउंनी में इसीलिए प्राय: सामान्य भूत से ही इसका भी काम लिया जाता है।

हि०—चल रहा था

ए० ब०

ग०		कु०	
पु०	स्त्री०	पु०	स्त्री०
१—चलणों छयो	चलणी छई	चलण लागि र छियूं	चलण लागि रै छियूं
२—चलणों छयो	चलणी छई	चलण लागि र छिये	चलण लागि रैछि
३—चलणों छयो	चलणी छई	चलण लागि र छियो	चलण लागि रैछि।

ब० व०

पु०	स्त्री०	पु०	स्त्री०
१—चलणा छया	चलणा छया	चलण लागि रछियाँ	चलण लागि रै छियाँ
२—चलणा छया	चलणा छया	चलण लागि रछिया	चलण लागि रैछिया
३—चलणा छया	चलणा छया	चलण लागि रछिया	चलण लागि रैछिन

४. पूर्ण भूत—यह काल हिन्दी के ही समान गढ़वाली में तो भूतकालिक कृदंत के रूपों के साथ जो लिंग और वचन के अनुसार बदलते हैं, छ सहकारी क्रिया के भूतकाल के रूपों को जोड़ने से बनता है। कुमाउंनी में कृदंत पुलिंग एक वचन में ओकारान्त के अपेक्षा आकारान्त हो जाता है। जैसा कि बहुवचन में होना चाहिए।

हि०—चला था

ए० व०

ग०		कु०	
पु०	स्त्री०	पु०	स्त्री०
१—चल्यो छयो	चलि छई	हिटा छियूं	हिटि छियूं
२—चल्यो छयो	चलि छई	हिठा छै	हिटि छि
३—चल्यो छयो	चलि छई	हिटा छियो	हिटि छि

ब० व०

पु०	स्त्री०	पु०	स्त्री०
१—चल्या छया	चलि छई	हिटा छियाँ	हिटि छियाँ
२—चल्या छया	चलि छई	हिटा छिया	हिटि छिया
३—चल्या छया	चलि छई	हिटा छिया	हिटि छिनि

सकर्मक क्रिया के रूप इसी प्रकार चलते हैं केवल कर्ता पर न या ले परसर्ग लगा देते हैं और क्रिया के लिंग, वचन और पुरुष कर्म के अनुसार होते हैं।

ग०—मैंन रोटी खाई छई, मैंन आम खायो छयो।

कु०—मैंले मिठै खाइ छि, मैंले आम खायो छियो।

५. पूर्णभूत पूर्वकालिक—किसी कार्य के किसी दूसरे कार्य से पूर्व होने की अवस्था का यह काल प्रकट करता है। इसमें सकर्मक और अकर्मक पूर्वकालिक कृदंत के साथ ज धातु का गै पूर्वकालिक कृदंत सहकारी के रूप में जोड़कर पुनः छ सहकारी क्रिया के रूप जोड़ दिए जाते हैं।

हि०—चला गया था

ए० व०

ग०		कु०	
पु०	स्त्री०	पु०	स्त्री०

१—चलि गै छयो	चलि गै छई	न्है गै छियूँ	न्है गै छियूं
२—चलि गै छयो	चलि गै छई	न्है गै छै	न्है गै छि
३—चलि गै छयो	चलि गै छई	न्है गै छियो	न्है गै छि

ब० व०

ग०		कु०	
पु०	स्त्री०	पु०	स्त्री०
१—चलि गै छया	चलि गै छई	न्है गै छियाँ	न्है गै छियाँ
२—चलि गै छया	चलि गै छई	न्है गै छिया	न्है गै छिया
३—चलि गै छया	चलि गै छई	न्है गै छिया	न्है गै छिनि

सकर्मक क्रिया को कर्मप्रधान बनाने में उपर्युक्त रूपों से भिन्न, गये के स्थान पर हालणों आलणों सहकारी क्रिया के भूत कृदंत के रूप लगते हैं। कर्ता के साथ न या ले परसर्ग लग जाता है और क्रिया के लिंग, वचन और पुरुष कर्म के अनुसार होते हैं। जैसे—

ग०—वैन रोटी खाई आलि छई। मैंन लाखड़ा काटि आल्या छया।

कु०—विले र्‌वाटा खै हाले छियो। विले लाकड़ा काटि हाला छिया।

६—आसन्न भूत—इस काल को हिन्दी व्याकरणों में अंग्रेजी के आधार पर पूर्ण वर्तमान भी कहा गया है। किन्तु इसके लिए आसन्न भूत नाम ही अधिक समीचीन प्रतीत होता है क्योंकि कार्य की तो समाप्ति हो ही चुकती है। इस काल का मध्य-पहाड़ी में कोई निश्चित स्वरूप नहीं है अतः इस काल को प्रकट करने के लिए गढ़वाली में कभी पूर्वकालिक कृदंत के साथ जा धातु के भूत कालिक कृदंत के रूपों को जोड़ते हैं। कभी भूतकालि: कृदंत के रूपों के साथ छ सहकारी क्रिया के वर्तमान काल के रूपों को जोड़ते हैं। यदि क्रिया सकर्मक हुई तो पूर्वकालिक कृदंत के साथ आलणों सहकारी क्रिया के भूतकालिक कृदंत के रूप जोड़े जाते हैं। कुमाउंनी में पूर्वकालिक कृदंत के साथ रछ सहकारी क्रिया के वर्तमान कालिक रूप जोड़े जाते है। कभी भूतकालिक कृदंत के रूपों के साथ जा धातु के कृदंत रूप गै को जोड़ कर और उस पर छ सहायक क्रिया के रूप लगाए जाते हैं। सकर्मक क्रियाओं के पूर्वकालिक कृदंत के साथ हालणो के भूत कृदंत रूपों को जोड़कर छ के वर्तमान कालिक रूपों को भी जोड़ा जाता है। जैसे—

हि०	ग०	कु०
चला गया हैं	चलि गये या गै	न्है गैछ
गया हुआ है	ज्यूँ छ	गै रछ
उसने खा लिया हैं	वन खाइ आले	बिले खै हाल छ

जहाँ भूत कृदंत उपरोक्त काल के बनाने में काम आते हैं वहाँ उनके रूप, लिंग, बचन और पुरुष के अनुसार बदलते रहते हैं।

७—संभाव्य भूत—वर्तमान कालिक कृदंत के पूर्व अगर लगा कर और कृदंत के रूपों को लिंग, वचन और पुरुष के अनुसार बदलते रहने पर यह काल बनता है।

हि०—चलता

ए० व०

ग०		कु०	
पु०	स्त्री०	पु०	स्त्री०
१—चलदो	चलदी	जानूं	जानि
२—चलदो	चलदी	जानै	जानि
२—चलदो	चलदी	जानो	जानि
ब० व०			
१—चलदा	चलदी	जाना	जानि
२—चलदा	चलदो	जाना	जाना
३—चलदा	चलदी	जाना	जानिन

वर्तमान काल

१. सामान्य वर्तमान—गढ़वाली में वर्तमान कालिक कृदंत में रूप पुरुष, लिंग और वचन के अनुसार बदलते हैं किन्तु कुमाउँनी में वर्तमान कालिक कृदंत के अस्थाई रूप पर छ सहायक क्रिया के वर्तमान काल के रूपों को जोड़ा जाता है। उत्तम पुरुष एक वचन में कभी कृदंत के अन्त में ऊँ भी आ जाता है। उत्तम पुरुष और अन्य पुरुष बहुवचन में कुमाउँनी में छ सहायक क्रिया नहीं लगती है।

हि०—चलता है

ए० व०

ग०		कु०	
पु०	स्त्री०	पु०	स्त्री०
१—चलदू	चलदू	हिटाँ या हिटन या हिटुँ छुँ	हिटाँ या हिटन या हिटूँ छुँ
२—चलदी	चलदी	हिटाँ या हिटन छै	हिटाँ या हिटन छै
३—चलदा	चलदा	हिटाँ या हिटन छ	हिटाँ या हिटन छया
ब० व०			
१—चलदवाँ	चलदवाँ	हिटनूँ	हिटनूं

२—चलदवा	चलदवा	हिटाँ छै	हिटाँ छै
३—चलदिना	चलदिना	हिटनी, हिटिन	हिटनिन

गढ़वाली में कभी निश्चय के अर्थ में वर्तमान कालिक कृदंत के रूपों के साथ छ सहायक क्रिया के वर्तमान काल के रूप भी जोड़ दिए जाते हैं।

ग०

ए० व०		ब० व०	
पु०	स्त्री०	पु०	स्त्री०
१—चलदो छऊँ	चलदी छऊँ	चलदा छवां	चलदी छवां
२—चलदो छै	चलदी छै	चलदा छवा	चलदी छवा
३—चलदो छ	चलदी छ	चलदा छना	चलदी छना

काल

२—अपूर्ण वर्तमान—यह गढ़वाली मे क्रिया के सामान्य रूप पर छ के वर्तमान कालिक रूप जोड़े जाने से बनता है। कुमाउँनी में इस काल का काम कभी सामान्य वर्तमान से ही लिया जाता है और कभी क्रियार्थ संज्ञा के अस्थाई रूप के साथ लागि जोड़ कर पुन: रछ सहायक क्रिया के वर्तमान कालिक रूप जोड़ें जाते हैं।

हि०—चल रहा हूं

ए० व०

ग०		कु०	
पु०	स्त्री०	पु०	स्त्री०
१—चलणों छऊं	चलणो छऊं	हिटण लागि रछूं	हिटण लागि रैछूं
२—चलणों छै	चलणी छै	हिटण लागि रछै	हिटण लागि रैछ
३—चलणों छ	चलणों छ	हिटण लागि रछ	हिटण लागि रैछया

ब० व०

१—चलणा छवाँ	चलणी छवाँ	हिटण लागि रछूं	हिटण लागि रैछूं
२—चलणा छयाँ	चलणी छयाँ	हिटण लागि रछौ	हिटण लागि रैछौ
३—चलणा छन	चलणी छन	चलण लागि रछम	हिटण लागि रैं छन

३—आज्ञार्थ तथा संभाव्य वर्तमान – निकट भविष्य मे कार्य करने तथा कार्य होने की सम्भावना इसकाल से प्रकट की जाती है। साथ ही आज्ञा लेने के लिए भी यही काल काम में लाया जाता है। आज्ञा लेने के अर्थ में अन्तिम स्वर पर बलात्मक स्वराघात होता है। आज्ञार्थ में मध्यम पुरुष नहीं होता।

ग०		कु०	
ए० व०	ब० व०	ए० व०	ब० व०
१—जऊं	जवां	जूं	जौं

२—जई	जवा	जै	जौ
३—जाव	जावन	जौ	जावन

सम्भाव्य वर्तमान के अर्थ में क्रिया से पूर्व अगर लगाना आवश्यक है।

भविष्यत् काल

१—सामान्य भविष्यत्-मध्य पहाड़ी में धातु पर लो जोड़ने से सामान्य भविष्यत् बनता है। जिसके लिंग, वचन और पुरुष के अनुसार रूप बदलते रहते हैं। भविष्यत् का लो प्रत्यय राजस्थानी से मिलता है। किन्तु राजस्थानी में लो एक रूप रहता है।

हि०—चलेगा।

ए० व०

ग०		कु०	
पु०	स्त्री०	पु०	स्त्री०
१—चलुँलो	चलुँली	हिटुँलो	हिटुँलि
२—चाललो	चालली	हिटलौ	हिटलि
३—चललो	चलली	हिटलो	हिटलि
	व० व०		
१—चलुँला	चलुँली	हिटुँला	हिटुँला
२—चलिला	चलिली	हिटला	हिटला
३—चलला	चलली	हिटाला	हिटलिन

२—सम्भाव्य भविष्यत् - गढ़वाली में क्रियार्थ संज्ञा के स्थाई और कुमाउंनी में अस्थाई रूप पर हो सहायक क्रिया के रूपों को जोड़ देते हैं। और उस पर भविष्यतकाल का लो प्रत्यय जोड़ा जाता है।

हि०—चलता होगा।

ए० व०

ग०		कु०	
पु०	स्त्री०	पु०	स्त्री०
१—चलणा हूंलो	चलणी हूंली	हिटण हुवंलो	हिटण हुनंलो
२—चलणा ह्वैलो	चलणी ह्वैली	हिटण हुनलै	हिटण हुनलि
३—चलणा होलो	चलणी होली	हिटण हुनलो	हिटण हुनलि
	ब० व०		
१—चलणा हूंला	चलणी हूंली	हिटण हुनुँला	हिटण हुनुँला
२—चलणा ह्वैला	चलणी ह्वैली	हिटण हुनला	हिटण हुनला
३—चलणा होला	चलणी होली	हिटण हुनाला	हिटण हुनलि

३—करणीय भविष्यत् - मध्य-पहाड़ी में एक भविष्यत्काल करणीय अर्थ में

प्रयुक्त होता है जो क्रियार्थ संज्ञा के अस्थाई रूप से बनता है। सकर्मक क्रिया के रूप कर्म के अनुसार केवल बचन में बदलते रहते हैं। बहुवचन में इ या ई प्रत्यय लगाया जाता है।

ग०—मैंन चलण। हमन चलण। मैंन बखरा मारण। मैंन बखरा मारणी।

कु०—मैंले चलण। हमले चलण। मैंले बाकरो मारण। मैंले बाकरा मारणि।

अर्थ:—अनेक अर्थ तो काल के अन्तर्गत ही आ गए हैं। यहाँ केवल विधि के अर्थ में क्रियाओं के रूप दिए जाते हैं। हिन्दी के ही समान मध्य-पहाड़ी में भी विधि के दो रूप होते हैं। प्रत्यक्ष और परोक्ष प्रत्यक्ष मध्यम और अन्य दोनों पुरुषों में होता है किन्तु परोक्ष केवल मध्यम पुरुष में होता है।

प्रत्यक्ष विधि:—मध्यम पुरुष तथा अन्य पुरुष एक वचन में गढ़वाली और कुमाउंनी दोनों में धातु ही क्रिया का काम देती है। और मध्यम पुरुष बहुवचन में गढ़वाली में आ प्रत्यय और कुमाउंनी में ओ प्रत्यय जोड़ा जाता है। अन्य पुरुष बहुवचन में गढ़वाली में इन या ईं प्रत्यय जोड़ा जाता है और कुमाउंनी में आ या न प्रत्यय जोड़ा जाता है।

हि०—चल-चलो; चले-चलें

	ग०		कु०	
	ए० व०	ब० व०	ए० व०	ब० व०
२–	चल	चला	हिट	हिटो
३–	चल	चलिन, चली	हिट	हिटाँ हिटन

एक वर्ण के धातु के आगे मध्यम पुरुष बहुवचन में गढ़वाली में व और कुमाउँनी में अन्तिम स्वर का लोप करके औ जोड़ा जाता है जैसे—गढ़वाली—तुम खावा। कुमाउंनी—तुम खौ।

परोक्ष विधि:—गढ़वाली में धातु पर इ और कुमाउंनो में ए प्रत्यय जुड़ता है। बहुवचन में गढ़वाली में याँ और कुमाउंनी में या अथवा याँ जोड़ा जाता है।

हिन्दी—चलना

	ग०		कु०	
	ए० व०	ब० व०	ए० व०	ब० व०
२–	चलि	चल्याँ	हिटे	हिट्याँ हिटिया

कर्मवाच्य

मध्य-पहाड़ी में धातु पर इ प्रत्यय जोड़ कर उसे कर्म वाच्य बनाया जाता है। जैसे, खा से खाई या खै। मार से मारि कर्म वाच्य धातु बनती है। इनके रूप

सब कालों में पुनः कर्तृवाच्य के समान ही चलते हैं। कुमाउंनी में धातु पर इन् प्रत्यय लगाया जाता है। और वह अविकारी रहता है उस पर पुनः छ सहायक क्रिया के रूप जोड़े जाते हैं। कभी कभी कर्मवाच्य धातु पर जा धातु के रूप भी जोड़े जाते हैं। ऐसे अवस्था में कर्मवाच्य धातु पर कुमाउंनी में केवल इ प्रत्यय लगता है और गढ़वाली में अन्तिम स्वर को लोप करके या प्रत्यय लगता है। यहाँ केवल सामान्य वर्तमान के रूप दिए जाते हैं।

हि०—मैं मारा जाता हूं

ग०		कु०	
ए० व०	ब० व०	ए० व०	ब० व०
१—मारिंदू	मारिन्दवाँ	मारिन्छूं	मारिन्छूं
२—मारिंदी	मारिन्दवा	मारिन्छै छै	मारिन्छौ
३—मारिन्दा	मारिन्दिन	मारिन्छ छया	मारिन्छिन
	अथवा		
१—मार्या जांदू	मार्या जांदवाँ	मारिजा छूं	मारिजा छूं
२—मार्या जांदी	मार्या जांदवा	मारि जां छै	मारिजाँ छौ
३—मार्या जांदा	मार्या जाँदिन	मारि जाँ छ-छया	मारि जाँ छिन

भाव-वाच्य

जिस प्रकार सकर्मक क्रियाओं का कर्मवाच्य होता है उसी प्रकार अकर्मक क्रियाओं का भाववाच्य होता है। इसमें कर्ता अव्यक्त रहता है उसे करण कारक में समझा जाता है। यह प्रायः असक्तता के अर्थ में प्रयुक्त होता है और हमेशा क्रिया अन्य पुरुष में होती है।

	ग०	कु०
भूत -	चल्या गयो	हिट्यो
वर्तमान -	चल्योंदो या चल्या जाँदो।	हिटिण
भविष्यत् -	चल्या जालो या चल्योलो।	हिटियो।

इस प्रयोग में कालों के भिन्न भेद प्रायः नहीं होते हैं।

ग०	कु०
मेरि कै नि चल्या गयो।	मेरि कै नि हिटियो।
मेरि कै नि चल्या जाँदो।	मेरि कै नि हिटिन।
मेरी कै नि चल्या जालो।	मेरि कै नि हिटियो।

इसका प्रयोग कालों के भिन्न भिन्न भेदों में बहुत कम किया जाता है।

कर्तृवाचक संज्ञाएं—मध्य पहाड़ी में कर्तृवाचक संज्ञाओं से भी भविष्यत्

काल में क्रिया के नैश्चित्य का बोध कराया जाता है। कुमाउँनी में धातु पर नेर या णिया प्रत्यय लगा कर कर्तृवाचक संज्ञाएँ बनाई जाती हैं जैसे खानेर (खाने वाला) जानेर (जाने वाला), करनेर या करणिया (करने वाला), हुनेर या हुणिया (होने वाला)। गढ़वाली में देर प्रत्यय लगाया जाता है या क्रियार्थ संज्ञा के अस्थाई रूप पर वालो प्रत्यय लगा देते हैं जैसे जांदेर, खांदेर, ढूढ़देर या जाणवालो खाणवालो होणवालो।

ग०—वो जाण वालो नी छ। मेरा दगड़िया राजो होण वाला नी छना। वा मिलणवाली नीछ।

कु०—उ जानेर न्हाति। मेरा दगड़िया राजी हुनेर न्हातन। उ मिलनेर न्हाते।

हि०—वह जानेवाला नहीं है। मेरे साथी राजी होने वाले नहीं हैं। वह मिलने वाली नहीं है।

संयुक्त क्रियाएँ

जाणो, होणो, हलणो या अलणो, रहणो या रुणो सहायक क्रियाओं से बनी हुई कुछ संयुक्त क्रियाओं का वर्णन काल प्रकरण में हो चुका है। यहाँ कुछ अन्य सहायक क्रियाएँ दी जाती हैं जिनके द्वारा मुख्य क्रिया भिन्न-भिन्न अर्थों को प्रकट करने लगती है।

१—चाणो—इससे इच्छा का बोध होता है। गढ़वाली में इसके पूर्व क्रियार्थ संज्ञा का स्थाई रूप और कुमाउँनी में अस्थाई रूप जोड़ा जाता है।

ग०—मैं अपणा काका सणि नी मारणो चाँदो।

कु०—मैं अपाणा काका कणि मारण नी चान्यूँ।

लि० स० इ० ९–४ पृष्ठ १५५।

इसका कर्मवाच्य चैणो कर्तव्य और आवश्यकता के अर्थ में आता है। जैसे कु० घमंड नी करणों चैंनो। ग० घमंड नी करणों चैंदो।

२—सकणो—इस सहायक क्रिया से समर्थता या आज्ञा का बोध होता है। इसके साथ सदैव मुख्य क्रिया का पूर्वकालिक कृदंत रूप प्रयोग में आता है। इसके रूप भी काल, लिंग, वचन और पुरुष के अनुसार बदलते रहते हैं। इसके साथ कभी कभी विशेषकर भूतकाल में छ सहायक क्रिया के रूप भी जोड़े जाते हैं।

कु०—जतुक दुख दि सकुँला।

ग०—जतना दुख दे सकुँला।

हि०—जितना दुख दे सकेंगे।

आज्ञा देने के अर्थ में—

कु०—उ देखि सकनीं ।

ग०—वो देखी सकदीं या सकदीना ।

भूत काल में—

कु०—उ देखि सकन छिया ।

ग०—वो देखि सकदा छया ।

३—लगणो और पैठणोः—इन दोनों सहायक क्रियाओं के पूर्व, क्रियार्थ संज्ञा के अस्थाई रूप लगते हैं। ये दोनों कार्य के आरम्भ के बोधक हैं। गढ़वाली में प्रायः लगणो और कुमाउँनी में पैठणो का प्रयोग होता है। पठणो का उच्चारण गढ़वाली में हिन्दी के समान ही बैठणो होता है।

कु०—कामण पैठा ।

ग०—काँपण लग्या ।

हि०—कांपने लगा ।

४—देणो, लेणो—इन दोनों का प्रयोग प्रायः आज्ञार्थ होता है। देणों में व्यापार प्रायः कर्म के लिए और लेणों में कर्ता के लिए होता है। यह दोनों पूर्वकालिक कृदंत के साथ आती हैं। भूतकाल में पूर्णता के अर्थ में भी इसका प्रयोग होता है।

कु०—ये कणि छाड़ि दिया । अंच्छो तुइ लि लियाँ ।

ग०—ये सणि छोड़ि दियाँ । अच्छो तुइ ले लियाँ ।

हि०—इसको छोड़ देना । अच्छा तूही ले लेना ।

पूर्णतया के अर्थ में—

कु०—धरि दियो । बात मानि लि ।

ग०—धरि देए । बात मानि लेए ।

हि०—रख दिया । बात मान ली ।

रखणों या थाकणोंः—ये सहायक क्रियायें भी कार्य की पूर्णता के अर्थ में प्रयुक्त होती हैं। इनके साथ भी मुख्य क्रिया के पूर्वकालिक कृदंत काम में लाया जाता है।

कु०-मातंग कणि बतै राख छियो । यो बात याद रखिया ।

ग०—यो काम करि थाकि । या बात याद रख्यां ।

पड़नो :—यह सहायक क्रिया बाध्य होने के अर्थ में या अकस्मात् कार्य होने के अर्थ में आती है। इसके साथ क्रियार्थ संज्ञा का प्रयोग होता है।

कु०—अन्यारा में हिट्ण पड़ो ।

ग०—अन्धेरा मां हिटण पड़े ।

हि०—अंधेरे में चलना पड़ा ।

कु०—यो बात है पड़ि ।

ग०—या बात ह्वै पड़े ।

हि०—यह बात हो पड़ी ।

पाणो :—इस सहायक क्रिया का प्रयोग प्रायः निषेधार्थ में होता है । इसके साथ भी क्रियार्थ संज्ञा का ही प्रयोग होता है । गढ़वाली में इसका प्रयोग कभी-कभी क्रोध प्रगट करने के लिए भी होता है ।

कु०—के दुःख नि हुण पौं छियो ।

ग०—क्वी दुख नी हूण पांदो छयो ।

हि०—कोई दुख नहीं होने पाता था ।

ग०—वो नि आण पांदो ।

हि०—वह नहीं आने पाता (क्रोध में) ।

अलणो, हलणो, चुकणो:—गढ़वाली में प्रायः सकर्मक क्रिया के पूर्वकालिक कृदंत के साथ आलणो ओर चुकणो दोनों का पूर्णता के अर्थ में प्रयोग होता है । अकर्मक क्रिया के साथ आलणो का प्रयोग नहीं होता । कुमाउंनी में आलणो के स्थान पर हालणो का प्रयोग होता है । इनके प्रयोगों के उदाहरण काल विवेचन में दिये गए हैं ।

इनके अतिरिक्त मध्य पहाड़ी में पुनुरुक्त संयुक्त क्रियाएँ भी हिन्दी के ही समान होती है । लिखणो-पढ़णो, चलणो-फिरणो, करणो-धरणो, खाणो-पीणो, मिलणों-जुलणो, देखणो- भालणो ।

सहायक तथा स्थिति दर्शक—क्रियाओं की व्युत्पत्ति—

छ:—यह स्थिति दर्शक तथा सहायक क्रिया भी है। मध्य-पहड़ी के अतिरिक्त पूर्वी-पहाड़ी, राजस्थानी, गुजराती, बंगला तथा कुछ दरद बोलियों में छ का प्रयोग होता है । बंगला में यह आछे के रूप में है । डाक्टर चटर्जी इसकी व्युत्पत्ति भारोपीय परिवार की एक कल्पित धातु अच्छू[१] से करते हैं जिसको वैदिक भाषा तथा संस्कृत ने स्थान नहीं दिया किन्तु बोलचाल में होती हुई अच्छ् धातु तथा उसके रूप वर्तमान भारतीय आर्य-भाषाओं तक पहुँच गए हैं । कुछ में उसका लोप भी हो गया है । टर्नर महोदय उसकी व्युत्पत्ति संस्कृत आ + क्षे[२] धातु से करते हैं ।

र (रह) यह सहायक क्रिया कुमाउँनी में ही प्रयोग में आती हैं । गढ़वाली

१–च० ब० ल० पृष्ठ १०३३ ।

२–ट० ने० डि० पृष्ठ १९१ ।

में नही है। इसका प्रयोग सदैव 'छ' के साथ रछ के रूप में होता है। इसकी व्युत्पत्ति अनिश्चित[1] है।

न्हाति—यह निषेधात्मक स्थिति-दर्शक सहायक क्रिया है। यह कई पश्चिमी पहाड़ी बोलियों में भी पाई जाती है किन्तु उनमें इसका रूपान्तर वचन और लिंग के अनुसार नहीं होता जैसा कि कुमाउंनी में होता है।

नास्ति—नात्थि—न्हाति।

८—अव्यय

मध्य-पहाड़ी के अधिकांश अव्यय हिन्दी से मिलते हैं। केवल कुछ उच्चारण भेद हैं। कुछ अव्यय ऐसे अवश्य हैं जो हिन्दी तथा अन्य भारतीय भाषाओं में न होकर केवल मध्य-पहाड़ी में हैं। कुछ अव्यय एसे भी हैं जो दोनों बोलियों में भी समान नहीं हैं। व्युत्पत्ति की दृष्टि से मध्य-पहाड़ी में अव्यय चार प्रकार के हैं। प्रथम श्रेणी में वे अव्यय आते हैं जो प्राचीन भारतीय आर्य-भाषाओं में भी अव्यय ही थे और मध्य कालीन आर्य-भाषाओं में से विकसित होते हुए मध्य पहाड़ी में आ गये हैं। जैसे—संस्कृत वहि:। प्राकृत—बहि। हिन्दी बाहिर या बाहर। म० प० भैर। दूसरी श्रेणी में वे अव्यय हैं जो प्राचीन भारतीय आर्य भाषाओं में दो भिन्न भिन्न शब्दों के योग से बने हैं। किन्तु मध्यकालीन और अर्वाचीन आर्य-भाषाओं में दोनों शब्द ऐसे मिल गये हैं कि अब वे अलग नहीं किये जा सकते। जैसे संस्कृत—पर: + श्वः। हिन्दी—परसों। ग०—परसे या परस्यूँ। कु०—पोरूँ। तीसरी श्रेणी में वे अव्यय हैं जो वर्तमान भाषा के दो शब्दों के योग से बने हैं। जैसे कु०—ये जागा (यहाँ)। ग०—यीं जगा। चौथी श्रेणी में वे अव्यय हैं जो सर्वथा देशज हैं। जिनकी व्युत्पत्ति प्राचीन भारतीय आर्य-भाषाओं से नहीं की जा सकती। जैसे कु० तथा ग० दगाड़ि या दगड़ी। कु०—टाड (दूर)।

व्याकरण की दृष्टि से अव्यय चार प्रकार के हैं। इनमें से विस्मयादिबोधक अव्ययों का उल्लेख, शब्द प्रकरण में हो चुका है। संबंधसूचक अव्ययों का भी उल्लेख कारक प्रकरण में आ चुका है। यहाँ केवल क्रियाविशेषण और समुच्चय-बोधक अव्ययों पर विचार किया जायेगा।

क्रिया विशेषण

क्रिया विशेषण चार प्रकार के होते हैं। काल वाचक, स्थान वाचक, परिमाण वाचक और रीति वाचक।

सर्वनाम मूलक क्रिया विशेषण :—चारों प्रकार के सर्वनाम-मूलक नीचे दिये जाते हैं। जो हिन्दी से बहुत अधिक मिलते जुलते हैं।

१—हि० भा० ई० पृष्ठ २९४।

कालवाचक क्रिया विशेषण :—ग०, कु०, हि० में समान हैं।

सर्वनाम मूलक कालवाचक क्रिया विशेषण —ग०, कु० और हि० में समान हैं।

ग०—अब जब कब तब, अबि जबि कबि तबि।

कु०—अब जब कब तब, अबै जबै कबै तबै।

हि०—अब जब कब तब, अभी जभी कभी तभी।

स्थानवाचक सर्वनाम मूलक क्रियाविशेषण कुमाउँनी में दो प्रकार के हैं और गढ़वाली मे तीन प्रकार के हैं। कुमाउँनी में तीसरे प्रकार के केवल दो रूप हैं। हिन्दी और कुमाउँनी के प्रथम श्रेणी के स्थानवाचक क्रियाविशेषण मिलते जुलते हैं किन्तु गढ़वाली में भिन्न हैं।

ग०—यख वख कख जख, इनै उनै कनै जनै या इथैं उथैं जथैं कथैं।

कु०—यां वां कां जां, येति उति कति जति या यथ उथ।

हि०—यहाँ वहाँ जहां कहां, इधर उधर किधर जिधर।

रीतिवाचक क्रिया-विशेषण भी कुमाउँनी और हिन्दी में कुछ कुछ समान हैं। इसके विपरीति गढ़वाली में कुछ भिन्नता है।

ग०—इलै, उलै, जिलै, किलै, इनकै, उनिकै, कनिकै, जनिकै।

कु०—इले, उले, जिले, किले, यसिकै, उसिकै, कसिकै, जसिकै।

हि०—इसलिए, उसलिए, किसलिए या क्यों, जिसलिए। यों, त्यों, ज्यों।

परिमाणवाचक क्रिया विशेषण हिन्दी और गढ़वाली में एक ही हैं किन्तु कुमाउँनी में भिन्न हैं।

ग०—इतना उतना कतना जतना, इतगा उतगा कतगा जतगा।

कु०-एतुक उतुक जतुक कतुक।

हि०-इतना उतना जितना कितना।

व्युत्पत्ति

सार्वनामिक कालवाचक क्रिया-विशेषण अब जब आदि सर्वनामों की प्रथम ध्वनि तथा ब के योग से बने हैं। बीम्स[1] के अनुसार इस ब प्रत्यय का सम्बन्ध बेला से है। चटर्जी[2] महोदय वैदिक एव या एवा से अब की व्युत्पत्ति बताते हैं। एव या एवा वैदिक भाषा में इस प्रकार के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। प्राकृत में एव[3] अवधारण के अर्थ में प्रयुक्त होता रहा है। किन्तु 'इस प्रकार' के अर्थ में एव का विकसित रूप

१—हि० भा० इ० पृष्ठ ३०९।

२—च० व० ल० पृष्ठ ९५६।

३—प० स० म० पृष्ठ २४३।

संस्कृत तथा प्राकृतों में एवं, एव्वं या एव्व या एव्वा हो गया इसी पर अपभ्रंश की सप्तमी की विभक्ति हो लगा कर एव्वहि बन गया है जो इस समय के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। इस एव्वहि[1] के रूप घिस कर अबे या अब रह गए हैं। इसी के अनुकरण पर तबे या तब, जबे या जब, कबे या कब, रूप भी बन गए हैं। बीम्स महोदय की व्युत्पत्ति में बेला की ल ध्वनि का क्या हुआ कुछ पता नहीं चलता। डाक्टर चटर्जी की व्युत्पत्ति युक्ति संगत है। एव्वा के सप्तमी के रूप एव्बहि बनने में अचानक अर्थ परिवर्तन कर देने में कुछ संकोच अवश्य प्रतीत होता है। पाइअसद्दमहण्णवो[2] म एव्बहि का संस्कृत प्रतिशब्द इदानीम् दिया गया है। किन्तु इदानीम् का एव्बहि कैसे बना यह नहीं बताया गया।

गढ़वाली के अबि, जबि, कबि, तबि, तथा कुमाउंनी के अबै, जबै, कबै, तबै, अब तब आदि पर ही जोड़ने से बने हैं। अब + ही–अबही–अबि या अबै।

२—स्थानवाचक सार्वनामिक क्रिया-विशेषण :—हिन्दी और कुमाउंनी के स्थानवाचक सार्वनामिक क्रिया विशेषणों में साम्य है। प्रथक प्रकार के सार्वनामिक क्रिया विशेषणों में सर्वनाम की प्रथम ध्वनि पर हाँ लगा देने से बनते हैं जो मध्य-पहाड़ी के अल्प प्राण्त्व की प्रवृत्ति के कारण कुमाउंनी में याँ वाँ जाँ काँ रह गए हैं। डाक्टर चटर्जी[3] बंगाली इथे उथे की व्युत्पत्ति बताते हुए उनका सम्बन्ध हिन्दुस्तानी के यहां, वहां से जोड़ते हैं। प्राचीन भारतीय आर्य भाषा के एतत् के पंचमी रूप एतस्मात् से यहां की व्युत्पत्ति की गई है। संस्कृत-एतस्मात्। प्राकृत-एअम्हा। अपभ्रंश-एअहाँ। हिन्दी--यहां। हिन्दी के त्र—त्थ—थ—ह से कुछ भाषा विज्ञानियों[4] [5] ने डाक्टर चटर्जी का उल्लेख करते हुये यहां के ह की व्युत्पत्ति की है। किन्तु डाक्टर चटर्जी ने बंगाली के तेथा ऐथा की व्युत्पत्ति पालि के तत्थ एत्थ से बताते हुए पिशल का उल्लेख किया है जिन्होंने एत्थम से उपर्युक्त शब्दों की युत्पत्ति की है, डाक्टर चटर्जी ने डबल्यु जीजर का उल्लेख भी किया है जिन्होंने तत्र, अत्र, यत्र और कुत्र से उपर्युक्त शब्दों की व्युत्पत्ति की है। तहाँ, यहां, जहां, कहां की तत्र, यत्र, अत्र, कुत्र से व्युत्पत्ति करने की अपेक्षा डाक्टर चटर्जी की पचमी के रूपों एतस्मात् आदि से व्युत्पत्ति अधिक संगत ज्ञात होती है। द्वितीय

१— प. स. म. पृष्ठ २४३।

२—प. स. म. पृष्ठ २४३।

३—च. व. ल. पृष्ठ ।

४—हि. भा. इ. पृष्ठ ३१०।

५—व. आ. भा. पृष्ठ ३०५।

श्रेणी के स्थानवाचक सार्वनामिक क्रिया विशेषण कुमाउँनी में एति, उति, जति और कति हैं और ब्रजभाषा में इतै, तितै, कितै हैं इनमें अंतिम व्यंजन महाप्राण की अपेक्षा अल्पप्राण है और साथ ही अन्त में अनुनासिकता भी नहीं है। अत: इनकी व्युत्पत्ति अत्र, तत्र यत्र कुत्र से की जा सकती है। ब्रजभाषा के तितै के स्थान पर कुमाउँनी में उति है। त ध्वनि तद् सर्वनाम के रूपों के कारण है। जब तद् के रूप (सो या तो) के स्थान पर अब के रूप (वह आदि) दूरवर्ती निश्चयवाचक सर्वनाम के लिए ग्रहण कर लिए गए तब किसी किसी वर्तमान भारतीय आर्य-भाषाओं में सार्वनामिक क्रियाविशेषणो में भी यह परिवर्तन उपस्थित हो गया इसीलिए कुमाउँनी में तति के स्थान पर उति है।

पूर्वी गढ़वाली के इथैं उथैं तथैं कथैं जथैं और अवधी[1] के यथाँ उथाँ जेथाँ केथाँ की व्युत्पत्ति एतत्स्थाने, तत्स्थाने, यत्सथाने से की जाती है। क्योंकि अन्त में थ की महाप्राण ध्वनि और ने की अनुनासिक ध्वनि दोनों उपस्थित है। तत्सथाने–तथाएँ–तथैं। गढ़वाली में तथैं और उथैं दोनों रूप मिलते हैं। क्योंकि दूरवर्ती निश्चयवाचक सर्वनाम के वो और स्यो दो रूप होते हैं। तथैं दृष्टिगत (तुलनात्मक सामीप्य) प्रकट करता है। इनमें से कुमाउँनी में केवल यथ और उथ रूप रह गए हैं।

गढ़वाली में प्रथम प्रकार के सार्वनामिक स्थानवाचक क्रिया विशेषण यख, वख, जख, कख, तख, है। इनके मूल में संस्कृत का कक्ष शब्द प्रतीत होता है। संस्कृत में कक्ष का अर्थ और या तरफ भी होता है। एतत्कक्ष-एअक्ख--यख। इसी प्रकार बख, जख, कख तथा तख शब्द भी बने हैं। यहाँ भी वख और तख में वही अन्तर है जो उपर्युक्त उथैं और तथैं में बताया गया है। गढ़वाली में इथैं उथैं जथैं कथैं के साथ साथ इनै उनै जनैं कनै तनै लप भी पाए जाते हैं। गढ़वाली में इनके सार्वनामिक विशेषण भी इनो उनो जनो कनी और तनो हैं। जबकि कुमाउँनी में हिन्दी से मिलते हुए यसो वसो जसो कसो हैं। यसो वसो जसो कसो तो स्पष्ट ही सर्वनामों पर दृश के योग से वने है। एतादृश—एरिसा—ऐसा। किन्तु इनो की व्युत्पत्ति वैदिक एना से की जाती है। एना[2] + इव—एनैव—इनउ—इनो। इसी के अनुकरण पर उनो, जनो, कनो और तनो भी बने है। इन्हीं के आधार पर गढ़वाली में स्थानवाचक सर्वनामिक क्रिया विश्लेषण इनै, -उनैं, जनै, कनै और तनै बने हैं।

१—व० अ० भा० पृ० ३०५।
२—घ० व० ल० पृष्ठ ८३०।

३—रीतिवाचक सार्वनामिक क्रिया-विशेषण :—सार्वनामिक विशेषणों पर कर धातु के पूर्वकालिक कृदत कै या केवल क के योग से बनते हैं।

ग०-इवो+कै—इनकै।

कु०—यसो+कै-यसिकै।

अन्तिम ए स्वर का प्रभाव उपान्त्य ओ पर पड़कर उससे भी इ बना देता है। मध्य-पहाड़ी में इनके अतिरिक्त इलै उलै किलै जिलै आदि रीति वाचक सार्व-नामिक क्रिया विशेषण भी हैं। यह ले प्रत्यय संस्कृत के लगने से बना हुआ है। लगने—लग्गे-लग्गी—लई—लें।

४—परिणाम वाचक सार्वनामिक क्रिया विशेषण :—गढ़वाली और कुमाउंनी के परिमाण वाचक सार्वनामिक क्रिया-विशेषण और परिमाण वाचक सार्वनामिक विशेषणों में कोई अन्तर नही है। गढ़वाली के परिमाण वाचक सार्वनामिक विशे-षण ओकारान्त होते हैं अतएव लिंग, वचन के अनुसार रूप बदलते रहते हैं। गढ़-वाली और हिन्दी के 'इतना'[1] का सम्बन्ध संस्कृत इयत् और प्राकृत एतिय[2] से बताया जाता है। वर्तमान आर्य-भाषाओं में ना[3] का योग और हो गया है। वास्तव में इतना उतना आदि शब्द गढ़वाली में हिन्दी के प्रभाव से आ गए हैं। प्राचीन रूप इतिगा उतगा हैं जो कुमाउँनी के उतुक एतुक जतुक कतुक आदि से मिलते हैं। यह रूप दरद भाषाओं में भी पाए जाते हैं।

कु०	ग०	शिणा[4]	कश्मीरी[5]	मैंया[6]	ब्रोकप[7]
कतुक	कतगा	कताक	कुत	कतुक	कताक

ये रूप गढ़वाली और कुमाउंनी में पुराने प्रतीत होते हैं। जेतिक और केतिक पुरानी अवधी[8] में भी पाए जाते हैं। वर्तमान अवधी के कुछ क्षेत्रों में अभी भी इसका प्रयोग होता है। बंगला के एतेक जतेक कतेक आदि सार्वनामिक विशे-षणों का सम्बन्ध भी इन्हीं से है।

१—हि० भा० इ० पृष्ठ २८७।
२—प० स० म० पृष्ठ २४१।
३—व० आ० भा० पृष्ठ २११।
४—लि० स० इ० व० ८ भा० २ पृष्ठ १५९।
५— ,, ,, ,, ५०४।
६— ,, ,, ,, ५४७।
७— ,, ,, ,, २३२।
८—बा० आ० भा० पृ० २०९।

डाक्टर चटर्जी[1] हिन्दी के इतना उतना और जितना तथा बंगाली के एतेक ततेक का मूल यत् से अन्त होने वाले वैदिक परिमाण वाचक इयंत या इयत् । कियत या कियत् को मानते हैं । ऐसा प्रतीत होता है कि वैदिक इयत् या कियत् से पालि के एत्तका और केत्तका निकले हैं जिनमें स्वार्थे क का योग किया गया है । इसी से मध्य-पहाड़ी के एतुक कतुक या इतगा कतगा तथा वंगला के एतेक कतेक रूप निकले हैं । खड़ी बोली हिन्दी तथा उससे प्रभावित गढ़वाली में इतना और कितना आदि परिमाणवाचक वैदिक इयंत और कियत के विकसित रूप हैं । इयंत और कियंत के विकसित रूप बोलचाल में रहे होगे किन्तु प्राकृत और अपभ्रंश के साहित्य में उन्होंने स्थान नहीं पाया ।

इयत् और कियत् पर पुनः तिय और ति प्रत्यय[2] जोड़कर एत्तिय और केतिय रूप बने हैं । इन्हीं से एति, केति या किति रूप बने हैं ।

अन्य क्रिया विशेषण तथा उनकी व्युत्पत्ति

हिन्दी से सादृश्य रखने वाले अन्य क्रिया विशेषण भैर (बाहर), भितेर भितर (भीतर , दूर, पाछिन या पिछाड़ी (पीछे) आगिन या अगाड़ी (आगे) क्रमशः, वहिः, अभ्यंतर, दूर, पश्चात् और अग्रतः से निकले हैं । हिन्दी का आगे अग्रे से निकला है ।

काल वाचक :—दोफरा या दोफरि (दोपहर) परस्यूं या परों (आगामी परसों) परश्वः से परसे गत परसों भी परश्वः से निकले है । आज(अद्य) झटपट; अचाणचक (अचानक); एकदम ।

रीतिवाचकः—न नी या नि (नहीं); झन या जन (जनि, जिसका अर्थ मत होता है); तो (ततः); विना ।

परिमाणवाचकः—भौत या बहौत (बहुत); कम; हि या ही;

कुछ क्रिया-विशेषण हिन्दी यथा मध्य-पहाड़ी में समान रूप से विदेशी भाषाओं से आ गये हैं । जगा या जागा (जगह); तरफ; नजीक (नजदीक); गिरद (गिर्द); आखिर, जल्दी या जल्दि; वखत, वकत (वक्त); ज्यादा (जियादा); काफि (काफी) जरा; बेकार; खुद; जरूर; वगैर; बेशक;

मध्य पहाड़ी में कुछ क्रिया-विशेषण ऐसे हैं जो हिन्दी में नहीं हैं । हिन्दी के क्रिया-विशेषणों की व्युत्पत्ति हिन्दी भाषाविज्ञानी[3] कर चुके हैं । मध्य-पहाड़ी के अपने क्रियाविशेषणों की व्युत्पत्ति यहाँ की जाती है ।

१--च० व० ल० पृ० ८५५ ।
२—च० व० ल० पृष्ठ ८५५ ।
३—हि० भा० इ० पृष्ठ ३११ तथा व० अ० भ० पृष्ठ २१० या २११ ।

काल वाचक :–

ब्याले (ग०), बेलिया या ब्याल (कु०) इनका अर्थ हिन्दी में संध्या या गत दिन होता है। इन शब्दों की व्युत्पत्ति संस्कृत वेला-समय से की जाती है। इसी प्रकार कुमाउँनी के व्याल—(संध्या) की उत्पत्ति वेला से ही है।

ब्यखुनि :–गढ़वाली में संध्या को कहते हैं। ब्यखुनि (विक्षण, वह क्षण जो दिन को रात से अलग करे)

भोल :–(आगामी कल) यह हिन्दी के भोर शब्द से मिलता है जिसका अर्थ हिन्दी में प्रातःकाल होता है। भोर की व्युत्पत्ति के संबंध में हिन्दी के भाषा विज्ञानी संदेह में हैं। कदाचित् इसके मूल में भास[1] धातु हो।

पोंरु (पारसाल) :—परुत् (संकृत)

परार (त्योरा साल) :–पर + परुत् (संस्कृत)।

अबेर (देर) :–यह शब्द अवेला से बना हुआ है।

रत्ताई :—कुमाउंनी में प्रात. तड़के सुबह को कहते हैं। यह रात ही से बना हैं।

फजल :- गढ़वाली में सुबह को कहते हैं। यह फारसी के फज़र से निकला हुआ है।

सदनि (हमेशा) :-सदातन (संस्कृत)⟶सदाअन⟶सदान⟶सदनि।

दौं या दां :—इसका प्रयोग मध्य पहाड़ी में बार या दफा के अर्थ में होता है। इस शब्द की व्युत्पत्ति अनिश्चित है।

परिमाणवाचक :–

भिडै (बहुत) :—यह गढ़वाली बोली का ही शब्द है। सस्कृत भाण्ड्य से इस शब्द की व्युत्पत्ति की जा सकती है जिसका अर्थ संग्रह करना होता है। भाण्ड्य⟶भिडेइ[2] या भिडै।

मणि (बहुत थोड़ा) :—यह कुमाउंनी का शब्द है। संस्कृत मनाक्। प्राकृत–मणयं। कुमाउंनी–मणि।

रीतिवाचक :—

दगड़ी या दगाड़ी (साथ साथ) :—इस शब्द की व्युत्पत्ति भी संदिग्ध है। यह देशज शब्द प्रतीत होता है।

सुदे (व्यर्थ में) :–इसकी व्युत्पत्ति संस्कृत के स्विद् अव्यय से की जा सकती। जो अनिश्चय के अर्थ में प्रयुक्त किया जाता है।

१–हि० म० इ० पृष्ठ ३११।
२–पा० स० म० पृष्ठ ७९३।

मठु मठु (धीरे धीरे) :—यह पुनुरुक्त शब्द संस्कृत मत्तं मत्तं से निकला है।

स्थान वाचक :-

मथे ऊपर):—यह गढ़वाली बोली का शब्द है। यह संस्कृत के मस्त या मस्तिष्क का शब्द के सप्तमी के रूप मस्ते से निकला है। मस्ते—→मत्थे—→मथे।

मूड़े या मुणि (नीचे) :—यह संस्कृत के मूल शब्द के सप्तमी के एक वचन रूप मूले से निकला हुआ है। मूले—→मूरे—→मूड़े या मुड़ि या मुणि।

तलि या तला :—इसकी व्युत्पत्ति संस्कृत के तलम् शब्द से की जाती है। तलं—तलि—→तल्ला।

मलि या मला (ऊपर) :—इसकी व्युत्पत्ति पालि के मल्हको शब्द से की जाती है जिसका तात्पर्य आयु में बड़ा होता है। ऊँचे स्थान को इसीलिए मल्हको—→मल्हो —→मलो—→मंला कहा गया है।

उवाँ या उव :- संस्कृत उद्वेघ—→प्राकृत अव्वेह[1]—→मध्य पहाड़ी—उवाँ या उवैं या उव। इसका अर्थ ऊपर होता है। इसी प्रकार उंदाँ उँद या उँन भी बना है। यह वैदिक अध से निकला है किन्तु उवाँ के अनुकरण पर ही उदाँ या उँन हो गया है।

बेड़, ढोस, टाड :—बेड़ और ढोस गढ़वाली शब्द हैं जिनका अर्थ क्रमशः नीचे और ऊपर की ओर होता है। टाड कुमाउँनी शब्द है (यह शब्द खसकुरा और नैपाली में भी पाया जाता है)। इन्हें देशज या मूल निवासियों के शब्द कहा जा सकता है जिनके लिए कोई निश्चित व्युत्पत्ति नहीं दी जा सकती है। टाड शब्द सम्भव है तिब्बत-वर्मी भाषा का हो और खसकुरा से होते हुए कुमाउँनी में आ गया हो।

उपर्युक्त, सार्वनामिक तथा अन्य क्रियाविशेषणों पर परसर्ग लगा कर नए अर्थ में क्रिया-विशेषणों का प्रयोग किया जाता है जैसे –

ग०-वह पाँच मील दूर ते आए।

कु०-वो पांच मैंल टाड़ वटि आयो।

नया अर्थ प्रगट करने के लिये दो क्रिया विशेषण आपस में जोड़ लिये जाते हैं। जैसे—

गढ़वाली—कख कख। कबि-कबि। जब-तब। जख-तख।

कुमाउँनी—काँ-काँ, कवै-कबै, जब तब, जाँ काँ।

१—पा० स० म० पृष्ठ २३२।

आ—समुच्चयबोधक

संयोजक:—मध्य-पहाड़ी में मुख्य संयोजक अव्यय हौर या और या अर, व, भी, लै हैं।

१—और, हौर, अर। कुमाउँनी में हौर होता है। प्रयोग हिन्दी के ही समान है।

२—व—का प्रयोग कुमाउँनी में नहीं होता है और गढ़वाली में भी बहुत ही कम होता है। इसका प्रयोग और के अर्थ में होता है।

३—भी—इसका प्रयोग गढ़वाली में होता है।

कुमाउँनी में नहीं होता है इसके स्थान पर कुमाउँनी में लैं है। प्रयोग हिन्दी के समान ही है।

४—लैं—केवल कुमाउँनी में है (तुम मैं दगाड़ि व्या लैं करो राज लै लिया)।

विभाजक—विभाजक समुच्चयबोधक अव्यय इस प्रकार हैं। या, कि, न—न नथर।

१—या—प्रयोग हिन्दी के समान ही है।

२—कि— प्रयोग या के अर्थ में होता है, ग०—(क्या खैलो भात कि रोटी);
कु० (के खैल; भात कि ख्वाट)।

३—न+न:—इसका प्रयोग हिन्दी के समान है—ग० (न मैंन पढ़े न वैंन);
कु० (न मैले पढ़ो न त्विले); हि० (न मैंने पढ़ा न तू ने)।

४—नथर (नहीं तो)।
ग० (वैंन मेरी बात मान लेई नथर मैं वे सणि मारवो)।
कु०—(बिले मेरी बात मान लि नथर मैं वै कणि मारनूँ)।

विरोध दर्शक—हिन्दी गढ़वाली और कुमाउँनी में विरोधदर्शक अव्यय 'पर' है। हिन्दी में मगर भी है। जोकि फारसी का प्रभाव है। मध्य-पहाड़ी में भी कभी कभी इसका प्रयोग हो जाता है। पर तथा मगर का प्रयोग हिन्दी के समान है।

कु० (कि, जसिक, जो, त, जोत, किलै, जनो बोलनि, जब-तब)।

व्यधिकरण:— ग० कि० जतिकैं, जो, त्, जोता, किलाइ, जनो, बोलदी, जब-तब (कि, जिस प्रकार, जो, तो, जो तो, क्योंकि, जब तब) इनका प्रयोग हिन्दी के समान ही है। केवल जनो बोलदीं या बोलनी या म० प्र० का अपना व्यधिकरण समुच्चयबोधक है। इसका प्रयोग गढ़वाली में (वैंना इनो खेल दिखाये जनो बोलदीं मरि गए) कु० (विलै यसो खेल दिखायो, जनो बोलनीं मरि गोछ) हि० (उसने ऐसा खेल दिखाया मानो मर गया)।

व्युत्पत्ति

१—और[1]:—और की व्युत्पत्ति संस्कृत अपर से की जाती है। अपर→ अवर→ अउर→ और।

२—भी[2]:— भी व्युत्पत्ति अपि हि से की जाती है। अपि हि→ विहि→ भी।

३—लै (भी): — लै की व्युत्पत्ति भी अनिश्चित है। संभव है कि यह प्राकृत शब्द लाइअ[3] से बना हो। जिसका अर्थ लगा हुआ होता है।

४—कि:—'कि' की व्युत्पत्ति डाक्टर सक्सेना[4] किम् से करते हैं। प्राकृत में किम् सर्वनाम का रूप कि हो जाता है। यही कि अव्यय में भी ग्रहण कर लिया गया है। डाक्टर वर्मा[5] कि को फारसी से आया हुआ बताते हैं। प्राचीन भारतीय आर्य-भाषाओं से उसकी व्युत्पत्ति संदिग्ध बताते हैं।

५—नथर:—यह संस्कृत के अन्यथा शब्द से बना हुआ है। अन्यथा→ नथा→नथर।

६—पर:-इसकी व्युत्पत्ति संस्कृत के परम् से की जाती है।

७—जो[6]:—जो की व्युत्पत्ति यदि से की गई है यदि–जदि जद→जअ→जो

८—तो या त की व्युत्पत्ति संस्कृत ततः से मानी जाती है।

ततो→तओ→तो।

९—पद क्रम

१—सभी वर्तमान भारतीय आर्य भाषाओं में विधानार्थक वाक्य में पदक्रम प्रायः एक ही जैसा रहता हैं। मध्य-पहाड़ी में भी पहिले कर्ता, पुनः सम्बन्धकारक या सम्बोधन को छोड़कर अन्य कारकों को सविभक्ति शब्द, और अन्त में क्रिया-पद होता है। सबंधकारक में भेदक, शब्द, को, के, की या रो, रा, री परसर्गों के सहित में भेद्य शब्द से पूर्व आता है। वाक्य के बीच में आनेवाले संज्ञा-शब्द, कर्म को छोड़कर, सभी सपरसर्ग होते हैं। कर्म कभी सपसर्ग और कभी सपसर्ग रहित होता है। अन्य कारकों की अपेक्षा कर्म कारक क्रिया के अधिक समीप रखा जाता है—जैसे गोविन्द बाजार ते मैकूँ किताब लाए।

१–हि० भा० इ० पृष्ठ २१९।

२–हि० भा० इ० पृष्ठ २१९।

३–प० स० म० पृष्ठ ८९९।

४—व० अ० भ० पृ० ३११। हि० भ० इ० पृष्ठ २१९।

५–हि० भा० इ० पृष्ठ २१९।

६—हि० भ० इ० पृष्ठ २१९।

ग० गोविन्द बाजार है मैं हुणि किताब लायो। इन वाक्यों में बाजारतै या बाजार है अपादान और मैंकू या मैं हुणि सम्प्रदान का क्रम बदला जा सकता है। किन्तु किताब शब्द कर्म-कारक में होने से सदैव लायो या लाए के समीप होगा। गौण कर्म प्राय: मुख्य कर्म से पहिले आता है।

मैंलेवि कणि किताब दी। कु०।

मैं न वे सणि किताब देये। ग०।

यहां गौण कर्म वे मुख्य कर्म, किताब से पहिले आया है।

विशेषण हिन्दी के समान ही प्राय: विशेष्य से पूर्व आता है किन्तु स्थिति सूचक क्रिया के साथ पूरक के रूप में विशेष्य के पश्चात् आता है। जैसे—आम मिठो छ।

क्रिया-विशेषण प्राय: हिन्दी के समान ही क्रिया से अव्यवधान पूर्व आता है किन्तु कालवाचक और स्थानवाचक विशेषण क्रिया से पूर्व कहीं रखा जा सकता है।

मातंग की व्या कालिंदि दगड़ि धूम-धाम लै है गयो। कु०।

मातंग को व्यो कालिंदी का दगड़ो धूम-धाम ते ह्वै गये। ग०।

इसमें धूम-धाम ले या धूमधाम ते, गयो, गया क्रिया से पूर्व आया है किन्तु मैं अब स्कूल जांदू या जानू में वाक्य में अब कर्ता से पूर्व भी आ सकता है। अब मैं स्कूल–जानूं या जादूं।

भाषण में प्रसंग के अनुसार वाक्य में कभी केवल एक शब्द से भी काम चल सकता है। चाहे वह कर्ता, क्रिया, कर्म विशेषण या क्रिया विशेषण ही क्यों न हो।

२—विधानार्थक वाक्य में अवधारण के लिए उपर्युक्त पदक्रम में भी परिवर्तन हो सकता है। जैसे—चलि गये वो ? (ग०)। चलि गौछ उ ? (कु०) इसमें चलना पर बल देने के लिए चलि को वाक्य के आरम्भ में रखा गया है। यही बात वाक्य के अन्त पदों के संबंध में भी है चाहे वे किसी कारक में हों। संस्कृत जैसी संश्लिष्ट सविभक्तिक भाषाओं में पदों के वाक्य में किसी स्थान पर रखने पर भी अर्थ वैभिन्य उपस्थित नहीं होता किन्तु मध्य-पहाड़ी में हिन्दी के समान ही पदक्रम का सदैव ध्यान रखना पड़ता है। अतएव यह विपर्यय केवल अवधारण के लिए ही होता है।

३—कविता में भी हिन्दी के समान ही पदक्रम बदला जाता है। जैसे 'ऊन दिनीं खाल दिनीं दिनीं पै शिकार'। इसमें 'शिकार' कर्म दिनी क्रिया के पश्चात् आया है।

४—किसी के कथन को दोहराने के पूर्व कि का प्रयोग होता है किन्तु हिन्दी के समान यह आवश्यक नहीं है जैसे—"नौनी न जवाब दिने मेरो बाप लाखड़ा काटन

कू जायू छ" (ग०) "चेलि ले जवाब दियो मेरो बाबा लाकड़ा काटण हुणि जैरछ" (कु०)। यहाँ देना क्रिया के पश्चात् कि का प्रयोग नहीं किया गया है।

५—कथन के अन्त में संस्कृत के इति के स्थान पर कु० में 'कै' का प्रयोग होता है। जैसे—

मेरा दगड़िया ये बात में राजी हुनेर न्हातन कै विले उनन थैं के निकयो। इसके स्थान पर ग० में करीक आता है।

वेन तेरो बाप्प क ख छ करीक पश्चिम का वीर की नौनी ते पूछे।

६—जब सुनी हुई बात दूसरे से कही जाती है तब यदि वक्ता को इस बात का निश्चय हो तो वह सामान्यतः बोलता है। किन्तु यदि उसे कुछ सन्देह होता है या बात को किसी कारण निश्चित रूप से नहीं कहना चाहता तो बल शब्द का प्रयोग करता है। जैसे—

वो पास ह्वै गये बल (सुना जाता है) (ग०)

उ पास है गौछ बल (कु०)

मध्य-पहाड़ी बोलियों का साहित्य

मध्य पहाड़ी बोलियों में साहित्य नाम मात्र के लिए है। खस काल में गीत और पंवाड़ों के अतिरिक्त काव्य-चर्चा की आशा रखना व्यर्थ है क्योंकि खस लोग परिश्रमी अवश्य थे किन्तु उनकी संस्कृति बहुत पिछड़ी हुई थी। कत्यूरी, चंद, प्रमार आदि राजाओं के दरबारों में जो ब्राह्मण आदि विद्वान रहते थे वे संस्कृत में ही रचना करते थे। लोक-भाषा की ओर उनका ध्यान नहीं गया अतः लोक-भाषा ग्राम गीतों तक ही सीमित रही।

गढ़वाल और कुमाऊं में करुण और शृंगार रस के अनेक लोक-गीत या ग्राम्य-गीत स्त्रियाँ जंगलों में घास या लकड़ी काटते हुये अत्यंत मधुर ध्वनि से गाती रहती है। प्रायः ये गीत स्थानीय होते हैं। कभी किसी का एक मात्र पुत्र नदी में बह जाता है या पर्वत से गिर जाता है अथवा कोई नव विवाहिता युवती ससुराल से दुखी होकर अपने नवजात शिशु का अंतिम बार चुम्बन कर किसी जलाशय में गिर पड़ती है तब स्थानीय लोगों में सहानुभूति का ज्वार करुण गीत के रूप में प्रकट हो जाता है। कभी किसी युवती का किसी पर-पुरुष के साथ प्रेम हो जाता है। ऐसी अवस्था में यदि बात सब पर प्रगट हो जाती है तो उस युवक और परकीया नायिका के प्रेमोद्गार तथा मिलन प्रयत्न लोक-गीत का रूप धारण कर लेते हैं। इस प्रकार के गीत विशेष कर, शृंगार रस सम्बन्धी, समय-समय पर होने वाले मेलों में युवक और युवतियाँ कभी कभी उमंग में आकर गा भी लेते हैं जिससे उनका प्रचार दूर दूर तक हो जाता है। परन्तु यह गीत स्थाई नहीं होते। साधारणतः दस पन्द्रह वर्ष

के अन्तर्गत ही इनका अवसान हो जाता है और उनके स्थान पर नये ग्राम-गीतों का प्रचार हो जाता है। इनका प्रचार अनपढ़ जनता तक ही सीमित रहता है अतएव ये कभी भी लिपिबद्ध नहीं होते।

पढ़े लिखे ब्राह्मण-क्षत्रिय जिनके पूर्वज समय समय पर महाराष्ट्र, राजस्थान अवध, पश्चिमी उत्तर प्रदेश से गढ़वाल-कुमाऊं में बस गये वे अधिकांश में संस्कृत भाषा के पंडित हैं। वे प्राचीनकाल से ही संस्कृत में कभी कोई रचना कर लिया करते थे। कभी साहित्यिक ब्रजभाषा में भी कोई रचना उपस्थित हो जाती थी। टिहरी दरबार के चित्रकार तथा कवि मोलाराम ने १९वीं शताब्दी विक्रम के आरम्भ में गढ़राजवंश नामक काव्य-ग्रंथ ब्रजभाषा में लिखा था। आज कल पढ़े लिखे लोग खड़ी बोली में ही रचना करते हैं क्योंकि अंग्रेजी शासन के पश्चात् धीरे धीरे इस प्रान्त की साहित्यक भाषा खड़ी बोली हिन्दी हो गई है। अतः कभी कोई उत्साही व्यक्ति अलमोड़ा, पौड़ी या देहरादून से प्रकाशित होने वाले हिन्दी की पत्र पत्रिकाओं में गढ़वाली या कुमाउंनी बोली में अपनी रचना प्रकाशित करवा लेते हैं। ऐसी रचनाओं के कभी संग्रह भी प्रकाशित हो जाते हैं जैसे गढ़वाली-कवितावली।

अंग्रेजी शासन के पश्चात् कुमाऊं के चन्द राजाओं का राज्य समाप्त हो गया, अतएव कुमाऊं के लोग उसी समय से अपनी भिन्न सत्ता को भूल कर धीरे धीरे उत्तर प्रदेश के राजनैतिक तथा साहित्यिक क्षेत्र में कूद पड़े। फलतः वहां गत कुछ वर्षों से हिन्दी के अच्छे साहित्यिक उत्पन्न होते जा रहे हैं। आधुनिक हिन्दी काव्य के मधुर भावों के सर्वश्रेष्ठ कवि सुमित्रानन्दन पन्त, श्रेष्ठ नाटककार गोविन्दवल्लभ पन्त, उच्च कोटि के आलोचक और गद्य लेखक इलाचन्द जोशी आदि की जन्म भूमि कुमाऊं ही है। टिहरी के नाम से गढ़वालियों का एक अलग राज्य बना रहा है अतएव उनकी दृष्टि सदैव उसी ओर लगी रही। वे अपनी अलग सत्ता की भावना हृदय से दूर न कर सके और आज भी कुछ लोग गढ़वाल को एक अलग प्रान्त बनाने का स्वप्न देखा करते हैं। अतएव गढ़वाली उत्तर-प्रदेश के राजनैतिक और साहित्यक क्षेत्र में कम आये। हिन्दी के प्रथम डी-लिट् स्वर्गीय डा० पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल गढ़वाल के ही रहने वाले थे, किन्तु गढ़वाल में ऐसे व्यक्तियों की संख्या कम रही। अतएव गढ़वालियों की इस भिन्नत्व की भावना के कारण गढ़वाली-बोली में गत चालीस पचास वर्षों में कुमाउंनी की अपेक्षा अधिक कविताएँ भी निकलीं और सुन्दर भी। कुमाउंनी में गोरखाली राज्य काल की भी कुछ कविताएं उपलब्ध हैं। आजकल की कविताओं में संस्कृत और हिन्दी की शब्दावली ही नहीं कभी कभी शब्दानुशासन भी हिन्दी का ही होता है। ये बोलियां हिन्दी के प्रभाव से धीरे धीरे अपना स्वाभाविक स्वरूप खाती जा रही हैं।

१९वीं शताब्दी के आरम्भ में कुमाऊं में गुमानी पन्त प्रसिद्ध कवि हो गये हैं जिनकी रचनाओं का संग्रह 'गुमानी कवि विरचित काव्य-संग्रह' के नाम से प्रसिद्ध है। उनकी एक रचना गुमानी नीति है जिसमें तीन चरण संस्कृत के और चौथा चरण कुमाउंनी का है।

कुमाउंनी भाषा के, कृष्णप्यारे भी अच्छे कवि हो गये हैं। उन्होंने गोरखालीशासन के अत्याचारों का अच्छा वर्णन किया है। शिवदत्तसती की 'मित्रविनोद' नामक पुस्तक में भावर, जंगलात और गोपी गीत, तीन सुन्दर ग्राम्यगीत कुमाउंनी भाषा में हैं।

उपर्युक्त रचनाओं के अतिरिक्त कई संस्कृत पुस्तकों के अनुवाद भी कुमाउंनी भाषा में मिलते हैं कभी कभी पत्र पत्रिकाओं में मौलिक रचनाएं भी देखने को मिलती हैं। कभी गीतों के संग्रह भी प्रकाशित हो जाते हैं।

गढ़वाली में गत चालीस पचास वर्ष से पूर्व की रचनाएं उपलब्ध नहीं हैं। श्री सत्यशरण रत्यूडो की 'उठा गढ़वालियों' नाम की कविता सन् १९०५ में प्रकाशित हुई थी। उसके पश्चात् अनेक फुटकर रचनाएं समय समय पर प्रकाशित होती रहीं जिनका सँग्रह 'गढ़वाली कवितावली' में किया गया है। श्री तारादत्त गैरोला रायबहादुर द्वारा रचित 'सदेई' नामक पुस्तक सन् १९२१ में प्रकाशित हुई। पंडित भवानीदत्त थपलियाल ने सन १९३१ में 'प्रहलाद नाटक' गढ़वाली भाषा में लिखा है।

भाषा के अध्ययन में उपर्युक्त सभी रचनाएं अधिक सहायता नहीं पहुंचाती व्याकरण और कोष के अभाव में भाषा का सामान्य स्वरूप इन रचनाओं में उपलब्ध नहीं होता। लेखकों ने स्थानीय बोलियों का प्रयोग किया है जिससे शब्दों में ध्वन्यात्मक तथा भाषा या रूपात्मक वैभिन्य भी स्पष्ट लक्षित होता है। यहाँ कुछ उदाहरण गढ़वाली और कुमाउंनी बोलियों की रचनाओं के दिए जाते हैं।

साहित्यिक रचनाएं और गीत।

यहाँ गढ़वाली और कुमाउंनी दोनो बोलियों की कुछ साहित्यिक रचनाएं तथा गीत दिए जाते हैं। प्रत्येक रचना और गीत के शब्दार्थ भी दिए गए हैं। जहाँ आवश्यकता समझी गई है वहाँ शब्द पर भाषा वैज्ञानिक टिप्पणी दी गई है। पुनः हिन्दी में भाषान्तर भी किया गया है। कुमाउंनी के अन्तर्गत प्रथम दो छन्द वास्तव में संस्कृत के हैं। उनका केवल चतुर्थ पद कुमाउंनी का है। अतएव इन दो पदों का केवल भाषान्तर किया गया है।

अ—कुमाउँनी

गुमानी कवि–काव्य संग्रह

(१)

रुतमत्युच्चैरसकृन्मायी कुरुते काकः पुरतः स्थायी।
अहिरखूनां गृह्मशायी 'काणुकचवायी डुनु अन्यायी' ।।

इस छन्द में चौथा पद समस्या पूर्ति के रूप कुमाउँनी भाषा का है। प्रथम तीन पद सस्कृत के हैं। समस्या :—'काणु कचवायो डुनु अन्यायी' = काना झगड़ालू और लंगड़ा अन्यायो होता है।

हिन्दी भाषान्तर :—कपटी कौवा सामने स्थित होकर बार बार उच्च स्वर से काँ काँ का शब्द करता है। साँप चूहों के बिल में वास करता है। काना झगड़ालू और लंगड़ा अन्यायी होता है। (कौवा काना माना जाता है। कहा जाता है कि इसकी दोनों आँखों में एक ही गोलक काम करता है। वह काँ काँ करते हुए झगड़ता रहता है। साँप के पैर नहीं होते अतएव कवि ने उसे लंगड़ा माना है। वह ऐसा अन्यायी होता है कि चूहों के बिल में घुसकर वहीं उनको खा जाता है)।

(२)

स्वप्नगतसमरसुनुनिमितं कष्मलमाप्तबतीमपिचिताम् ।।
हेतुमपृच्छदुपामिति वाण 'पीड़ कुठौर कि वैद बेठाणौ ।।

समस्या:–पीड़ कुठौर कि वैद जेठाणौ'। मर्मस्थल की वैदना और वैद्य जेठ जेठ (पति का बड़ा भाई)। चौथा पद कुमाउँनी भाषा का हैं।

हिन्दी भाषान्तर :—स्वप्न में प्राप्त पद्युम्न के पुत्र अनिरुत्त के निमि चित् में खेद करती हुई अपनी पुत्री ऊषा से वाणासुर ने कारण पूछा। (अतः वह लोकोक्ति ठीक ही है) 'मर्मस्थल की पीड़ा और वैद्य जेठ' (पति के बड़े भाई से हिन्दू समाज की स्त्रियाँ बहुत अधिक पर्दा करती हैं। पहाड़ो प्रदेशों में यदि अनुज बधू से वस्त्र का स्पर्श भी हों जाय तो दोनों जेठ और अनुजबधु को स्नान करना पड़ता है। अत अनुजबधू अपने मर्मस्थल की पीड़ा को जेठ से कैसे व्यक्त कर सकती है ? इसी प्रकार ऊषा अपने पिता वाणासुर से अपनी प्रेमवेदना कैसे प्रकट कर सकती है ?)

(३)

गोरखालीराज व्याजनिन्दा।
दिन दिन खजाना का भार वोकनाले।
शिव शिव चुलि में का बाल गै एक कैका।।
तदपि मुलुक तेरो छोड़ि नै कोई भाजा।
इति वदति गुमानी धन्य गोरखालि राजा।।

शब्दार्थ :—बोकनाले = बोझ उठाने से। शिव शिव = हाय हाय। चुलि = चोटी। गै = नहीं। कैका = किसी का। तेरो – तेरा। छोड़ि = छोड़कर। कोइ =

यहाँ मात्रा पूर्ति के लिए कोई लिखा गया है अन्यथा कुमाउँनी में अनिश्चयवाचक सर्वनाम क्वै है। माजा = भागे। गोरखलि राजा = गोरखों का राजा। यहाँ तात्पर्य राज्य से है। मध्य-पहाड़ी भाषा प्रान्त पर, कुमाउंनी में सन् १७९७ से सन् १८१५ तक और गढ़वाल में सन् १८०३ से सन् १८१५ तक गोरखों अर्थात् नेपालियों का शासन रहा। गोरखालि शासन के अत्याचार नादिरशाह के अत्याचारों से भी अधिक बढ़े हुए कहे जाते हैं। अतः जहाँ मैदान के लोग नादिरशाही का प्रयोग करते हैं वहाँ गढ़वाल और कुमाऊं में गोरखाली शब्द का प्रयोग किया जाता है।

हिन्दी भाषान्तरः—दिन प्रति दिन खजाने (गोरखों के सरकारी कोष) का भार उठाने से हाय ! हाय ?! चोटी में किसी के एक बाल भी नहीं है। तिस पर भी तेरे (गोरख सरकार के) देश अर्थात राज्य को छोड़कर नहीं भागा। गुमानी कहता है कि हे गोरखाली राजा (सरकार) तुम्हारे लिए धन्य है। (पहाड़ी प्रान्तवाले बेचारे भागते भी कहाँ। मैदान ही गर्मी तथा बुरे जलवायु से तो वे प्राचीन काल में बहुत अधिक भयभीत रहते थे)।

(४)

हिसालु की प्रशंसा।
छनाई छन मेवा रत्न सगला पर्वतन में।
हिसालू का तोफा छन् बहुत तोफा जनन में ॥
पहर चौथा ठंडा बखथ जनरो स्वाद लिण में ॥
अहो मैं समजलुं अमृत लग वस्तु क्या हुनलो ॥

शब्दार्थ :—हिसालु—यह फल पर्वतों पर गर्मी की ऋतु में होता है इसका रंग काला या पीला होता है। इसीको अंग्रेजी में बेरी कहते हैं। यह अंगूर से भी अधिक स्वादिष्ट होता है। छनाई छन—हैं ही यहाँ छ धातु का छन् रूप दो बार आया है। इसका ठीक हिन्दी रूपान्तर हैं ही है। किन्तु हिन्दी में इस प्रकार प्रयोग नहीं होता है। गढ़वाली में इसका रूप 'छई छन्' है। वास्तव में यह 'छन ही छन' है। इसमें 'ही' 'इ' में परिणत हो गई है। हिसालू में 'ऊ' मात्रा पूर्ति के लिए रखा गया है। मेवा = फल। सगला = नाना। जनन में = जिन में। बखत = समय जनरो = जिनका। लिण में = लेने में। समजुछं = समझता हूँ। लग = भी। हुनलो = होता होगा। यह शब्द हुनो और होलो दो शब्दों के प्रयोग से बना है। गढ़वाली में इसका रूप हूँदो होलो है। हिन्दी में होता होगा है। कुमाउँनी में संश्लेषण की प्रवृत्ति गढ़वाली और हिन्दी से अधिक है अतः हुनो होलो संश्लेषण के कारण एक शब्द हुनलो हो जाता है।

हिन्दी भाषान्तर :—पर्वतों में नाना बहुमूल्य फल होते हैं जिनमें हिंसालू बहु-मूल्य वस्तु है। चौथे प्रहर जब ठंडा समय होता है तब जिनका स्वाद लेने में अहा! मैं समझता हूं कि अमृत भी क्या वस्तु होती होगी। (अर्थात् हिंसालु के समान अमृत भी नहीं है)।

(५)

कटुफलोक्ति

खाणा लायक इन्द का हम छिया भूलोक आईं पड़ाँ।
पृथ्वी में लग यो पहाड़ हमरी थाती रची देवले।।
येई चित्त विचारि काफल सबै राता भया क्रोध ले।
कोई और बुढ़ा खुड़ा शर्म ले नीला घुमैला भया।।

शब्दार्थ :—कटुफल = काफल (एक प्रकार का फल जो पहाड़ों पर ग्रीष्म ऋतु के आरम्भ में होता है। एक छोटी गुठली ऊपर से अत्यन्त स्वादिष्ट पदार्थ से ढकी रहती है। फल पकने पर लाल हो जाता है। जब अत्यधिक पक जाता है तो नीला या हलका काला रूप धारण कर लेता है। खाणा = खाने। छिया = थे। आई पड़ाँ = आ पड़े। लग = भी। थाती = धरोहर सम्पत्ति, यहां रहने का स्थान। दैवले = विधाता ने। येई = यही। राता = लाल। भया = हुए। क्रोध से = क्रोध से। यहां भी कोई मात्रा पूर्ति के लिए है अन्यथा क्वै होना चाहिए। बुड़ा = बूढ़ा। खुड़ा = निरर्थक पुनरुक्त शब्द है। शरमले = शर्म से। घुमैला = हलका काला। इसमें हेतूत्प्रेक्षा है।

हिन्दी भाषान्तर :—हम इन्द के द्वारा खाए जाने लायक थे। भू लोक में आ पड़े। पृथ्वी में भी दैव ने यह पहाड़ हमारे रहने का स्थान बनाया। इसी बात को चित्त में विचार कर सब का फल क्रोध से लाल हो गए। कोई बूढ़े खूड़े शर्म से नीले तथा धूमिल रंग के हो गए।

जब हिन्दी रीतिकाल की परम्परा में बंधी हुई अपनी स्वच्छन्द गति को खो चुकी थी तब गुमानी कवि कुमाउँनी में स्वच्छन्द गति से नाना विषयक कविता बना रहे थे। कवि का ध्यान अपने आस पास की छोटी छोटी वस्तु पर गया था।

शिवदत्त सती—'मित्र विनोद'

(१)

ईश्वरऽ भगवानऽ तुम है जाया दयालऽ।
परवतऽ रूँणों भलो जन पड़ मालऽ।
आपणा मुलुक रौनि जाँ आपणी थातऽ।
मटका डुबुका भला मादिरा को भातऽ।।

मँडुवा की रोटी भली सिशोणि को सागऽ ।
माल जाई कसो होलो दगड़ै छ भागऽ ।
जैको भाग भलो छ त परवत चैनऽ ।
बिगड़िया भाग कति हैं छ खैन भैनऽ ।। १ ।।
सुख में छै परवत दुःख होलो मालऽ ।
बाराबाटा हइ जाला बिगड़ला हालऽ ।।
घाम लागि बेरि उति एक चोट होलीऽ ।
तेरि इजा दुख होलो नानि छोरि रोली ।।
परबत रइ जाले ज्यान सुख रौली ।
भावर पड़लि उति दिन रात बौली ।।
तेरि इजा न जा कंछ मानि जानि कयो ।
कसि रौली परबत एक चेलो हयो ।।
माला जाइ बेर तेरो अदिन ऐजालो ।
लालाच भाँ आई रौछ घर की को खालो ।।
हुणि बोलै रैछ तेरी आई जालो कालऽ ।
परबत रूँणों भलो जन पड़े भालऽ ।। २ ।।

इस छन्द में ह्रस्व दीर्घ का विशेष ध्यान नहीं रखा गया है । गाते समय, स्वर आवश्यकतानुसार ह्रस्व या दीर्घ हो जाता है ।

शब्दार्थ :—है=हो । जया=जाना । रूँणों=रहना । जन=मत । पड़े=रहना पड़े । माल=मैदान, यहाँ तराई भावर जिसे जलवायु की दृष्टि से पर्वतीय लोग अंडमान से भी भयंकर समझते थे और चैत्र से लेकर कार्तिक तक भावर की ओर उतरना मौत के मुंह में प्रवेश करना समझते थे । आपणा=अपने । रौनि=रहते हैं । जाँ=जहाँ । थात=स्थिति या प्रभुत्व । भटका=एक प्रकार की दाल जो सोयाबीन से मिलती है । डुबुका=उबला हुआ रस । मादिरा=समा के चावल या झंगोरा । मंड़ुवा=काले रंग का एक अनाज जिसकी रोटियाँ बनती हैं । सिशोणि=एक चौड़े पत्ते वाला पौधा जिसके पत्तों पर बारीक काँटे होते हैं । जाड़े की ऋतु में साग सब्जी के अभाव से पहाड़ों पर इसी के पत्तों का साग बनाया जाता है । जाई=जाकर । कसो=कैसा या क्या । होलो=होगा । दगड़े=साथ ही । भाग=भाग्य । जैको=जिसका । छ=है । त=तो । चैन=आनन्द । बिगड़िया=बिगड़े हुए । कति=कहाँ । हैछ=होती है । खैन-भैन=धूम-धाम । हइ=हो । मात्रा के लिए हइ हो गया है अन्यथा है होना चाहिए । जाँछ=जाता है । जन-जाल=बखेड़ा । छै=है । बाराबाटा=नष्टभ्रष्ट । हई जाल=हो जाएँगे । बिग-

ड़ाला = बिगड़ेंगे । हाल = दशा । लागिवेर = लगकर । एक चोट होलि = अकस्मात् मृत्यु होगी । इजा = माता । नानी = छोटी । छोरी = लड़की । रोली = रोएगी । रई = रहने पर । जाले = जिससे । ज्यान = प्राण । रौलि = रहेगी । पड़लि = पड़ेगी । उति = वहाँ । बौलि = मेहनत । कंछ = कहती है । मानि जानि = मान जाते हैं । कयो = कहा हुआ । कसि = किस प्रकार । हयो = हुआ । जाई बेर = जाकर । अदिन = दुर्दिन । आइ जालो = आ जायेगा । आई रौछे = आया हुआ है । को = कौन । खालो = खायेगा । हुणि = होनहार (यहाँ दुर्भाग्य) बुलै रै छ = बुला रही रही है । काल = मृत्यु ।

हिन्दी भाषान्तर :—हे भगवान तुम दयालु हो जाना । पर्वत पर रहना भला है । भाबर में न रहना पड़े । अपने मुल्क में रहते हैं अर्थात रहना चाहिए जहाँ अपनी दृढ़ स्थिति है । अपने घर पर सोयाबीन का रस और समा का भात अच्छा है । मँड़ुआ की रोटी और सिशोणी का साग अच्छा है । भावर जाकर क्या होगा । भाग्य तो साथ ही है । जिसका भाग्य अच्छा है उसके लिए पर्वत पर ही चैन है बिगड़े भाग्य की धूम घाम कहाँ होती है । भावर जाकर भयंकर जंजाल उपस्थिति हो जाता है । पर्वत पर रहना अच्छा है भावर में न रहना पड़े ।१।

पर्वत में सुखपूर्वक ही भावर में दुख होगा । नष्ट भ्रष्ट हो जाओगे । दशा बिगड़ जाएगी । वहाँ घाम लगने से अकस्मात् मृत्यु हो जाएगी । तेरी माता को दुःख होगा । छोटी लड़की रोएगी । पर्वत पर रहने से प्राण बचे रहेंगे । वहाँ (अर्थात भावर में) रात दिन मेहनत करनी पड़ेगी । तेरी माँ 'न जा' कह रही है । कहना मान लेते हैं । तू एकमात्र पुत्र हुआ । भला पहाड़ पर कैसे रहेगी । भावर जाने पर तेरा अभाग्य उपस्थित हो जाएगा । लालच में आया हुआ है घर को कौन खाएगा । तेरी भवतव्यता बुला रही है मृत्यु आ जाएगी । पहाड़ पर रहना भला है भावर पर न रहना पड़े ॥२॥

(२)

गोपी गीत से

फुटि गयो भाग जैको कटि गयो गलो ।
विधवा चेलि को बौज्यु । मरणों छ भलो ॥

छुटि गयो तुम है मैं जन करा शोकऽ ।
नसि गयो दुःख सब कटि गयो रोगऽ ॥

भेंट निहै मैं दगाड़ा योइ दुख रयो ।
भागणी है गेह कया छै मास को गयो ॥

सब दुख दूर होयो जनजाल मेरो ।
बिधवा चेहड़ि है छ मरि गै को ढेरो ।।
बाबा जी को दुख भयो इजा मेरी रोली ।
बण घर खेत पात गोपी गोपी कौली ।।१।।
दस मासा जैले बोको तै कणि दरकऽ ।
दुख दिगौ इजा बौज्यू कै मेरो नरक ।।
के सुख नि दियो मैले जनम को शोकऽ ।
कैका घर जन होया दुशमन कोखऽ ।।
बाटि देखि कौलि इजा गोपी आली आली ।
जै बाटि शौराश गयी तैइ बाटि आली ।।
मयड़ी को हियौ होयो बिनु छनी आग ।
कालजा में लागि गयो चेहड़ि को दागऽ ।।
इजा बाबा जो सतौछ नरक में रौलो ।
बिधवा चेलि को बौज्यु मरणों छ भलो ।।

शब्दार्थ:—इस गीत के रचयिता श्री शिवदत्त सती की पुत्री का नाम गोपी था । वह विधवा होने के पश्चात् शीघ्र ही मृत्यु को प्राप्त हो गई । उसी ने कवि को स्वप्न में दर्शन देकर हिन्दू विधवा का मृत्यु के साथ ही घोर दुःख का अन्त भी दिखाया है । यहाँ गोपी गीत से प्रथम दो छन्द लिए गए हैं ।

फुटि गयो--फूट गया । जैको--जिसका । कटि गयो – कट गया । गलो--गला । चेलि—लड़की । बौज्यु – पिता जी । बौज्यु बाबाजी का संश्लिष्ट रूप है । है – से । जन -- मत । करा - करो । नसि – दूर होना । निहै – नहीं हुई । दगाड़ा —साथ । योई–यही । रयो—रहा । भागणी—भाग्यवती । है गैछ—हो गई है । कया—शरीर । चेहड़ि—लड़की । हैछ—होती है । मरि-मृतक । गै—गाय । ढेरो—माँस । भयौ—हुआ । इजा—मां । रोली-रोएगी । बण—वन । खेत पात—खेती पाती का काम करते हुए । कौली-कहेगी । जैले—जिसने । बोको –बोझ उठाया । तै कणि —उसको । दरक—पीड़ा । दिगौ—दे गई । के-क्या । कै—कोई । निदियो—नहीं दिया । कैका—किसी के । होया—होवे । कोख—पेट या गोदी । बाटि—रास्ता । आली—आएगी । शौराश– ससुराल । तैइ बाटि—उसी रास्ते । मयड़ी—माँ । यहाँ स्वर्थे ड़ है । हियो-हृदय । होयो–हुआ । बिनु छनि–बिना होते हुए अर्थात् न होते हुए भी । कालजा—कलेजा । दाग—घाव । सतौछ—सताया है । रौलो—रहेगा ।

विनु छनि—इस प्रकार का वाक्यांश हिन्दी में नहीं होता है । छनि–होते हुए ।

तात्पर्य यह है कि वास्तविक आग के न होते हुए भी आग है। गढ़वाली में विनु छनि के स्थान पर बिना छंदी हो जाता है।

हिन्दी भाषान्तर:—जिस विधवा लड़की का भाग्य फूट गया गला कट गया। हे पिता जी विधवा लड़की का मरना भला है। मैं तुम से छूट गई। शोक न कीजिए। सब दु:ख दूर हो गया रोग कट गया। मेरे साथ मृत्यु के समय भेंट नहीं हुई यही दु:ख रहा। काया भाग्यशालिनी हो गई। छै महीने की (विधवा) चली गई। मेरा सब दु:ख और जंजाल दूर हुआ। विधवा लड़की मरी हुई गाय का मांस है (जिसकी ओर लोग दृष्टि डालना भी पाप समझते हैं)। पिता जी को दु:ख हुआ। मेरी माता रोएगी। बन, घर, खेती, पाती (हर स्थान पर) गोपी गोपी कहेगी।१। दस महीने जिसने बोझ उठाया (अर्थात् अपने पेट में रक्खा) उसको पीड़ा होती है। माता पिता को दु:ख दे गई मेरा क्या नरक है (अर्थात् इससे बढ़कर नरक का काम कुछ नहीं है)। मैंने कोई सुख नहीं दिया। जन्म भर के लिए शोक दिया। किसी के घर शत्रु कोख में न होए (अर्थात् दु:ख देने वाली संतान पैदा न होवे)। रास्ता देखकर माँ कहेगी—गोपी आयेगी गोपी आयेगी जिस रास्ते ससुराल गई थी उसी रास्ते आयेगी। माता का हृदय हुआ। बिना आग के होते हुए भी (आग) होती है। कलेजे में लड़की (की विदाई) का घाव लग गया। माता पिता को जो सताता है नरक में रहेगा। पिता जी! विधवा लड़की का मरना भला है॥ २॥

रामदत्त पन्त—गीता माला

[१]

नाच

कसि जून बिराजिछ फूलन में
कस उत्सव छै रछ ये बण में।
कस सुन्दर शीतल पौन चली
मन आज मनै मन छा बिचली॥ १॥
अति उच्च डनाँ बटि तान सुणी
उति बाँसुरी बाजिछ बोट मुणि।
हंसनै अति मोद भरी मन ले
तार चंदम नाच दिखूँनि भलै॥ २॥
कस शोभित आज अकाश छ, हो।
घट नाचंछ गाड़ नचूँ छ अहो।
मन कैक नि हो थिरकी थिरकी
जब गोप लली लग याँ थिरकी॥ ३॥

शब्दार्थ:–कसि—कैसी । जून–चांदनी । विराजिए–बिराज रही है। छै रछ—छाया हुआ है । ये—इस । बण—वन । मनै मन—मन ही मन । छा—है । यहां छ होना चाहिए । बिचली-चंचल । डनाँ–ऊँचा जंगल । बटि—से । सुणी—सुनी । यहां सुणी मात्रापूति के लिए है अन्यथा इसे सुंजिछ होना चाहिये जिसका अर्थ सुनाई देता है । हँसनै— हँसते हुए । मनले—मनने । । दिखूँनि–दिखाते हैं । दिखूँनी होना चाहिए । घट—घराट या पनचक्की । नाचँछ—नाचती है । गाड़—छोटी नदी । नचूँछ–नाचती है । कैक (कैको)—किसका । थिरकी–नाचना । लग–भी । याँ—यहाँ । थिरकी--नाची ।

हिन्दी भाषान्तर:—फूलों के ऊपर कैसी चाँदनी विराज रही है वन में कैसा उत्सव छाया हुआ है कैसी सुन्दर शीतल पवन चली । आज मन, मन ही मन में चंचल है (अर्थात् भीतर भीतर ही चंचल है) । अत्यन्त ऊँचे जंगल से तान सुनाई देती है । वहाँ वृक्ष के नीचे बाँसुरी बजती है । तारे और चंद्रमा मनं से हंसते हुए सुन्दर नाच दिखाते हैं । आज आकाश कैसा शोभित है । पनचक्की नाचती है और नदी नचा रही हैं । आज नाचने का मन किसका न होगा । जब गोप-लली (राधा) भी यहाँ नाचती है ।

[२]

जोड़ तोड़ (प्रश्नोत्तर)

रिटि जा रे ओ कतुआ ! घुरू घुरू रिटि जारे ।। १ ।।
साछि को रकत—
कतुवा रिटौणो को हो मिलो काँ बखतऽ ।।२ ।।
गोरू नौं छ झाली—
हिटनै बुलानै कातो नि भै रओ खालो ।। ३ ।।
कुटि हाला घानऽ–
धागू को के होलो दाज्यू हो! जो कातौ दुनिया नमानऽ ।।४।।
फोड़नि अखोड़ऽ–
कातला त बचला पैं रुपया करोड़ऽ ।
जहाजों में मगूँण को नी होलो लपोड़ऽ ।।५।।
मुसै कि जाँघड़ो–
धागै जे है जाला पै हो क्वै नी रौ नाँगड़ो ।।६।।
शौकूँ का बाकारा–
ऊन दिनीं खाला दिनीं दिनीं पै शिकारा ।
बोजो लै बोकनीं पै हो बेचनीं आकारा ।। ७ ।।

मनुवैं की दैं छऽ–
मखमल छोड़ि बेर गजि को पैरेंछऽ ।।८।।
घुगती घुरैं छऽ—
घर–कुड़ि जैं कैं चैंछ उ गजि पैरेंछऽ ।।९।।
दुदि में को गाजा—
घरैं की सभाल थैं पै कुनी हो स्वराजऽ ।।१०।।

यह कविता स्वदेशी-वस्त्र प्रयोग के महत्व पर लिखी गई है। इसमें प्रश्न और उत्तर हैं। इसके प्रत्येक पद की पहिली पंक्ति केवल तुक के लिए दी गई है। उसका पद के अर्थ से कोई सम्बन्ध नहीं है। यह पहाड़ी ग्राम्य-गीतों की विशेषता है।

शब्दार्थ :—रिटिजा=घूम जा। कतवा=लकड़ी की बड़ी तकली जिसको तकुआ भी कहते हैं। घुरू घुरू=घुर घुर का शब्द करते हुए। माछि=मछली। रकत=रक्त। रिटौण=घुमाना। मिलौ=मिलता है। मिलौ के साथ छ भी होना चाहिए। गोरू=गाय। नौं=नाम। झाली=व्यक्तिवाचक संज्ञा। हिटनै=चलते हुए। भै=हो। रओ=रहो। कुटि हाला=कूट लिए। धागूँ=तागों। के होलो=क्या होगा। दाज्यू हो=हे बड़े भाई। नमान=समस्त। फोड़नि=फोड़ते हैं। अखोड़=अखरोट। कातला=कातेंगे। बचाला=बचाएंगे। मगूँण=मँगाने। लपोड़=बखेड़ा। मुसैं=चूहे। यह शब्द मूसा है किन्तु सम्बन्धकारक में भेदक शब्द पर ऐ जोड़ दिया जाता है और कि का लोप हो जाता है या नाम मात्र के लिए उच्चारण रहता है। यद्यपि लिखने में पूरा लिखा जाता हैं। धागैं जैं है जाला=यदि धागे हो जायेंगे। क्वै=कोई। निरी=नहीं रहेंगे। नाँगड़ी=नंगे। जाँगड़ी में ड़ ऊनवाचक है और नागड़ी में तुक मिलाने के लिए ड़ ध्वनि जोड़ी जाती है। शौक=बकरी पालने वाले तिब्बतियों के वँशज हैं जो कुमाऊं और तिब्बत की सीमा पर रहते हैं और बकरियों की पीठ पर बोझा ढोते हैं। दिनीं=देते हैं। लै=भी। बोकनी=उठाते हैं। बेचनी=बिकते हैं। आकारा=अधिक कीमत में। मनुवा=काले रंग का अनाज। दैं=अनाज से भूसा अलग करने की क्रिया जिसमें अनाज के ऊपर बैलों को चक्कर कटवाया जाता है। छोड़ि बेर=छोड़कर। गजि=गाड़ा। पैरेंछ=पहनता है। घुगती=पक्षी विशेष। पुरैंछ=शब्द करती है। घर-कुड़ि=मकान जायदाद। जैकें=जिसको। चैंछ=चाहिए। उ=वह। दुदि=दूध। घरै=घर की। संभाल=सम्भाल। थैं=को। कुनी=कहते हैं।

हिन्दी-भाषान्तर :—ये तकली घूम जा। घुर घुर घूम जा। १। (मछली का रक्त)—तकली घुमाने का समय कहाँ मिलता है? । २। (गाय का नाम झाली) ?

चलते, बोलते कातो खाली मत रहो । ३ । धान कूट लिए--तागों का क्या होगा ? हे भाई साहब ! जब सारा संसार कातने लगेगा । ४ । (अखरोट फोड़ते हैं) कातेंगे तो करोड़ बचायेंगे । जहाजों में मंगाने का बखेड़ा नहीं होगा । ५ । (चूहे की जाँघ)—तागे जो हो जाएँगे तो कोई नंगा नहीं रहेगा ।६ । (शौको के बकरे) ऊन देते हैं, खाल देते हैं, शिकार भी देते हैं, बोझ भी उठाते हैं और अधिक कीमत पर भी बिकते हैं ? । ७ । (मंड़वा का खलियान है) । मखमल छोड़कर गाढ़ा कौन पहनता है ? । ८ । (धुगती घुर घुर का शब्द करती है) मकान जायदाद जिसको चाहिए वह गाढ़ा पहिनता है ।९ । (दूध के ऊपर फेन) घर ही को संभाल को स्वराज्य कहते हैं ।

ग्राम्य-गीत

शृंगार-रस सम्बन्धी

बसुलै को धारऽ—
कैंका खवारा जन पड़ऽ इशक़ की मारऽ ।। १ ।।
तमाकू की रति—
चड़ि कसो चारो दिछै त्वि भुलुँलो कति ।। २ ।।
बिछौंणों दरी को—
समझणों करि गै छै उमर भरी को ।। ३ ।
दली हाल दाल—
कित है जौ मन कसो कि निन्है जौ कालऽ ।। ४ ।।
दाड़िम को फूल—
मैं जू कुनूँ मायादार तुछै माया मूलऽ ।। ५ ।।
सिणि जालो कोट—
सुवा का जवाब उँनो गौलि कसो चाटऽ ।। ६ ।।
पाणि को गिलासऽ—
कस्तुरा मिरग जसो मैं तेरी तलासऽ ।। ७ ।।
बुति जाला धानऽ—
तेरो त बिगड़ो केनी मेरी जालि जानऽ ।। ८ ।

इस छन्द में प्रेमी, नायिका के प्रति अपने हृदय के उद्गार प्रगट कर रहा है। नायिका पर किया है । इसमें भी प्रत्येक पद की पहली पंक्ति निरर्थक है ।

शब्दार्थ:– (दातुलै की धारा – दराँती की धार) निरर्थक । कैंका — किसी के । खवारा — भाग्य में या सिर पर । जन — मत । पड़ — पड़े । इशक — प्रेम । (तमाकू की रति – तम्बाखू की चुट्की) चड़ि — चिड़िया । कसो —

सदृश्य । चारो – चारा । दिछै — देती हो । त्वि — तुझे । भुलुँलो – भूलूँगा । कति—कहाँ । विछौना—बिछौणो । समझणो—समझना करिगे छ–कर गई हो । उमर भरी को– आयु पर्यन्त के लिए । दलि हाल – दल ली है । कित— यातो । है जौ – हो जावे । मन कसी – मन की सी । निन्हैजौ – ले जावे । मैं जु कुनूं — मैं कहता रहा हूं । या समझता रहा हूं । मायादार – प्रेमवती । तुछै – तू है । माया भूल — प्रेम को भूलनेवाली । सिणि जालो – सिला जाएगा । सुवा – प्रियतमा या नायिका । ऊँनी — आते हैं । गोलि कसी – गोली के समान । चोट – चोट पहुंचानेवाला । पाणि – पानी । जसो — समान । बुति जाला – बूते जायेंगे । बिगड़ौ के नि – कुछ नहीं बिगड़ा । जालि — जाएगी ।

हिन्दी भाषान्तरः– (दरांती की धार) किसी के सिर पर प्रेम की मार न पड़े । १ । (तम्बाखू की चुटकी) चिड़िया का सा चारा देती हो । (जिस प्रकार चिड़ीमार चिड़िया को फंसाने के लिए चारा फेंकता है उसी प्रकार तुम भी अपने प्रेम के फँदे में फंसाने के लिए बनावटी प्रेम दिखाती हो) तुझे कहाँ भूलूँगा । २ । (दरी का बिछौना) उम्र भर के लिए समझना कर गई हो, (अपनी याद मेरे हृदय में जीवन भर के लिए छोड़ गई हो) । ३ । (दाल दल ली है) या तो मन की सी हो जाय या मृत्यु ले जावे । ४ । (दाड़िम का फूल) मैं तो कहता हूं (या समझता हूं) कि तुम प्रेम करनेवाली हो किन्तु (वास्तव में) तुम तो प्रेम को भूलनेवाली हो । ५ । (कोट सिला जाएगा) प्रियतमा का जवाब गोली की चोट के समान आता है, (जैसा घाव गोली करती है वैसा ही घाव नायिका का जबाब भी करता है) । ६ । (पानी का गिलास) कस्तूरा मृग के समान मैं तेरी तलाश में हूं (जिस प्रकार कस्तूरा मृग सुगन्ध को स्वयं अपने पास रखे हुए इधर उधर भटकता है उसी प्रकार तुम प्रति क्षण मेरे हृदय में निवास करती हो और मैं तुम्हें इधर उधर ढूंढता हूं । ७ । (घान बूते जाएँगे) तेरा तो कुछ नहीं बिगड़ेगा । मेरे तो प्राण चले जाएँगे ।

श्यामा चरण पन्त-दातुलै की धार ।

। १ ।

दातुलै की धारऽ। पवँती कुमारऽ।
चलै दिनी बिघन हूं जड़ि बै कुठारऽ।
मंगलदातारऽ।
श्री गणेश ज्यु हूँ पैल करो नमस्कारऽ।। १ ।।
दातुलै की धारऽ। कविता आधारऽ।
तीखी तीव्र करें बुद्धि ब्रह्मविद्यासारऽ।
गीत कैं उचारऽ।
वाक् बाणी सरस्वती देवी नमस्कारऽ।।२।।

दातुलै की धारऽ। शेष का हजारऽ।
फणन का छत्र तली पालनी संसारऽ।
सब तिरा भनारऽ।
लछिमी नरैण हुणि करो नमस्कारऽ ॥३॥
दातुलै की धारऽ। सर्पकंठहारऽ।
जटा जै की अटै रैछ गंगज्यु की धारऽ।
पहाड़ी नच्यारऽ।
हुड़का बजै थिरका मचौं विकैं नमस्कारऽ ॥४॥
दातुलै की धारऽ। ज्ञान कै प्रचारऽ।
बगट जा गाड़ी दिनी काटी अन्धकारऽ।
उर का बिकारऽ।
वि गुरू हूं बार बार मेरो नमस्कारऽ ॥५॥

यह पहिले बताया जा चुका है कि पहाड़ी गीतों में पहली पंक्ति केवल तुक मिलाने के लिए लिखी जाती है और निरर्थक होती है। यहाँ कवि ने दातुलै की धार शब्द को सार्थक रखा है। प्रत्येक गीत के आरम्भ में तुक के लिए दातुलै की धार को ही लिया है। इसमें गणेश, सरस्वती, विष्णु और शिव चार देवताओं की स्तुति की गई है। भाषा में संस्कृत शब्द अधिक हैं। हिन्दी के ही समान मध्य-पहाड़ी में भी आजकल के पढ़े-लिखे लोग तत्सम शब्दों को लाने का प्रयत्न करते हैं।

शब्दार्थ:—दातुलै — दराँती। यह दातुली शब्द है सम्बन्धकारक में भेदक शब्द पर ए जुड़ जाता है। चलै दिनि — चला देते हैं। हूं — को। हिन्दी में ऐसे स्थान पर 'पर' होना चाहिए। जाँड़ — जड़ ही। बै — सै बै, बटि का संक्षिप्त रूप हैं, जो कुमाउँनी में अपादान की विभक्ति है)। पैल — पहिले। कविता की आधारभूता। गीत के उचार — गीत उच्चार के (गीत गायन के लिए)। उचार — उच्चारण (यहाँ गायन)। कैं — के लिए। तली — नीचे। पालनी — पालते हैं। तिरा — पूर्ण। भनार — भँडार। लक्ष्मीनरैण — विष्णु। हुणी — को। जैकि — जिसकी। अटै — समाई। रैछ — (रही है, हुई है)। गंगज्यु — गंगा जी। पहाड़ी नच्यार — पहाड़ी नाचने वाला (यहाँ महादेव जी)। हुड़का — डमरू। बजै — बजाकर। थिरका — जोर से नाचना। मचौं — मचाता है (यहाँ मचौं के साथ छ और होना चाहिए) वि — उस। ज्ञान के प्रचार के स्थान पर ज्ञान को प्रचार होना चाहिए। बगट — वल्कला जा — सदृश्य या रूप। गाड़ी दिनी — निकाल देते हैं। काटी — काटकर।

हिन्दी भषान्तर:—पर्वती कुमार (अर्थात पर्वत पर रहनेवाले शिव और

पार्वती के पुत्र गणेश) विघ्न पर जड़से ही दराँती की धार के समान कुठार चला देते हैं। मंगल देनेवाले श्री गणेश जी को पहिले नमस्कार करो। १। कविता की आधारभूता, ब्रह्मविद्या की सार (रूपा) सरस्वती देवी। दराँती की तीक्ष्ण धार के समान बुद्धि को तीक्ष्ण तथा तीव्र कर देती हैं। वाक्-वाणी (रूपा) उस सरस्वती देवी को गीत-गायन के लिए नमस्कार है। २। दराँती की धार (के समान मुड़े हुए) शेषनाग के हजार फणों के छत्र छाया के नीचे जो संसार को पालते हैं सब वस्तुओं से पूर्ण उन लक्ष्मीनारायण को प्रणाम करो। ३। दराँती की धार (के समान फणवाला) सर्प जिसके गले का हार है। जिसकी जटा में गंगा जी की धार समाई हुई है जो डमरू बजाकर जोर जोर से नाचता है। उस पहाड़ी नाचने वाले (महादेव) के लिए नमस्कार है। ४। ज्ञान के प्रचार (रूपी) दराँती की धार द्वारा अज्ञानान्धकार को काटकर हृदय के विकार (रूपी) बल्कल निकाल बाहर करते हैं। उस गुरु को बार बार मेरा नमस्कार।

(२)

दातुलै की धार। दरिद्र के भार।
घर घर गंगा जसी हुँछ दुदै धार।
नौणी की बहार।
गोरू भैंसा पालन में कसि करतार। १।

दातुलै की धार। तुलना विचार।
को करँछ बाकि देख, पालन, संहार।
लड़ा तरवार।
खुकरि लै लड़ै बता कोछ जोरदार। २।

दातुलै की धार। स्वारै पर मार।
राकस खबीस हुणि बण तलवार।
अबला ओ नार।
बखत विजय दिछ हाथ हथियार। ३।

दातुलै की धार। इज्जत विचार।
उठि फण नागिणि जै छोड़ली फुँकार।
तेजवालि नार।
छेड़ि देलि छ्वै फुटला दैत्य रक्तै धार। ४।

दातुलै की धार। रख्यालि उचार।
भूतै डर भाजि जाली। सिराणा आधार।

बांदो दिशा चार ।
मंत्र जो छ कालिका को गुरू की पन्यार । ५ ।

इस गीत में प्रथम पद को छोड़कर शेष में वीर रस है। दराँती की धार की उपयोगिता बताई गई है। घास लकड़ी काटकर घर के पालन और अपने सतीत्व की रक्षा के लिए नृशंस कामी पुरुषों के संहार में दराँती समान रूप से काम में आती है।

शब्दार्थ :—कैं—को। मार—नष्ट करना। जसी—समान। हुँछ—होती है। दुदै—दूध की। नौणि—नवनीत या मक्खन। गोरू-भैंसा—गाय और भैंस। पालण मे — पालने में। कसि—कैसी। करतार—कार्य करने वाली। करँछ—करता है। बाकि—अधिक। लड़ा—लड़ा ले, तुलना करले। खुकरि—भुजाली, तलवार के स्थान पर पहाड़ियों का लड़ाई का शस्त्र। लै—भी। लड़े बता—तुलना करके बताओ। कोछ—कौन है। जोरदार—शक्तिशाली। ख्वारै—सिर ही। मार—मारो। राकस-खबीस (नृशंस कामातुर पुरुषों से तात्पर्य है)। नार—नारी। बखत—समय पर। दिछ—देती है। विचार—विचार से। उठि—उठाकर। फण, नागिणि जै—नागिनी के फन जैसी। छोड़ली—छोड़ेगी। तेजवाली—तेजस्विनी। छेड़ि देलि—छेड़ देगी यहाँ काट लेगी। छ्वै—वर्षाती सोते। फुटला—फुटेंगे। रक्तै धार—रक्त की धार। रखवाली—रक्षावली (भूत प्रेत से बचने का मंत्र)। भूतै डर—भूत की डर। भाजि जाली—भाग जाएगी। सिराणा—सिरहाने। बांदो—बांधो। जो छ—जो है। को—का। पन्यार—पहचान।

हिन्दी भाषान्तर :—दराँती की धार दरिद्रता को मारनेवाली है तथा घर घर में गंगा की धार के समान दूध की धार होती है। मक्खन की बहार हो जाती है। गाय भैंस पालने में कैसी कार्यशीला है (दराँती से ही घास काटा जाता है)। १। दरांती की धार की तुलना तलवार और खुकरी से करो। देखो पालन और संहार कौन अधिक करता है? तलवार से तुलना करो! खुकरी से भी तुलना करके बताओ कि कौन अधिक शक्तिशाली है? हे अबला स्त्री! दरांती की धार को नृशंस कामी पुरुषों के लिए तलवार बनाकर उनके भाल ही पर मार। हाथ का हथियार समय पर विजय देता है। ३। तेजस्वनी नारी अपने गौरव के विचार से दरांती की धार को नागिणी के फण जैसी उठाकर फुतकार छोड़ेगी और काटेगी तो दुराचारियों के रक्त की धारा के सोते फूटेंगे। ४। दरांती की धार भूत-प्रेत से रक्षा मंत्र के उच्चारण के समान है। सिरहाने रखने पर भूत की दर भाग जायेगा। गुरु की पहिचान दरांती की धार (के समान) जो कालिका का मंत्र है उस से चारों दिशायें बांध (वश में कर)। ५।

आ—गढ़वाली

तारा दत्त गैरोला—सदेई

(१)

हे ऊंचि डाँड्यो ! तुम नीसि जावा
घणी कुलायौं ! तुम छाँटि होवा।
मैंकू लगीं छ खुद मैत्त्ड़ा की
बाबाजि को देखण देश देवा। १

मैत कि मेरी तुतऽ पौन प्यारी
सुणो तु रैबार तऽमां को मेरी।
गाड़ऽगदीना व हिलाँस, कप्फू
मैत को मेरा तुम गीत गावा। २

बारा ऋतु बौड़लि बारा मासा
आली व जाली जनु दाँई फेरो।
आई नि आई निरभाग मैंकू
क्वी भी नि आई ऋतु मेरी दाँ ता। ३

बसन्त मैना सबका त भाई
मेंटणकु आला बहिण्यौं कु अपणी।
दीदी भुली मौलिक गीत गाली
गला लगाती खुद बीसराली। ४

मैंत्यों की भेजी कपड़ों की छालऽ
पैल्ली दिखाली कनु से मिजाज।
लठ्यालि मेरो कुछ भाइ होंदो
कलेऊ लौंदो व दुरौंदो पैणा। ५

सदेई नामक युवती का विवाह उसके माता पिता ने दूर कहीं ऊंचे पहाड़ों की ओट में कर दिया है। उसके ससुराल वाले उसे मायके नहीं भेजते। मायके वाले भी उसकी खबर नहीं लेते। उसका कोई भाई भी नहीं है। अपनी जन्मभूमि की याद करके युवती आँसू बहा रही है। इस छन्द में कवि ने मात्रा पूर्ति के लिए कई स्थानों पर ह्रस्व को दीर्घ और दीर्घ को ह्रस्व कर दिया है।

शब्दार्थ :—डाँड्यो—पर्वत श्रेणियों ! नीसि जावा—नीची हो जावो। घणी—घनी। कुलायौं—चीड़ के वृक्षों ! छाँट होवा—अलग अलग या विरल हो जाओ। मैंकू—मुझको। लगींछ—लगी हुई है। खुद—प्रवास-वेदना या स्मृति, इस शब्द का

पर्यायबाची शब्द हिन्दी में नहीं हैं। इसमें मिलनोत्कंठा, बेचैनी आदि भाव निहित हैं। मैंतुड़ा — मायका (ड़ा प्रेम-भाव को तीव्र करने के लिए जोड़ा गया है)। बबाजी – पिता जी। देखण देवा — देखने दो। मैंत — मायका। त मात्रा पूर्ति के लिए है। सुणी — सुनाओ। रैबार — संदेश। गाड़ – छोटी नदी। गदिना — बड़ी नदी। यहाँ गदीना का स्थान पर गदिना होना चाहिए था। हिलाँस और कप्फू – पक्षी विशेष। गावा — गाओ। बौड़लि — वापस आयेंगी। लि के स्थान पर दीर्घ ली होनी चाहिए थी। आली और जाली —आयेंगी और जाएँगी। जनु (जनो)—जैसा। दाँइ–खलिहान में बैलों का चक्कर काटना। क्वी–कोई। दाँ — तरफ से या लिए। मैंना – महीना। त (निरर्थक है)। आला – आयेंगे। बहिण्यौं – बहिनों। कु – को। दीदी — बड़ी बहिन। मुली — छोटी बहिन। मालिक – मिलकर। गाली — गायेंगी। लगाली – लगाएँगी। खुद – प्रवास-वेदना। बीसराली (विसराली) – भुलायेंगी। मैत्यों — मायकेवालों। भेजी – भेजी हुई। छालऽ – कपड़ों का जोड़ा। इसके अन्तर्गत सिर से लेकर पैर तक के सब आवश्यक वस्त्र आ जाते हैं। पैल्ली – पहनेंगी पैरली का संश्लेषण के कारण पैल्ली हो गया है। दिखाली—दिखाएँगी। कनु या कनो—कैसा। से (निरर्थक है)। मिजाज—सौन्दर्य। लठ्यालि--सदेई के मैके का नाम। कुह—कोई। होंदो-—होता। कलेऊ-खाने पीने की वस्तु जो मायके से लड़कियों की ससुराल भेजी जाती है। लौंदो—लाता। दुरौंदो—वापिस दिलवाता। पैणा–वह खाने पीने की वस्तु जो पहाड़ में युवतियाँ अपने मायके से अपने ससुराल की सखियों के लिए ले जाती हैं।

हिन्दी भाषान्तर :–हे ऊँची पर्वत श्रेणियों ! तुम नीची हो जाओ। घने चीड़ के वृक्षों ! तुम दूर दूर हो जाओ। मुझे मायके की स्मृति सता रही है पिता जी का देश देखने दो। १। हे मेरे मायके की प्यारी वायु ! तू तो मेरी माँ का संदेश सुना। हे छोटी बड़ी नदियो ! हे हिलाँस और कप्फू नामक पक्षियो ! तुम ही मेरे मायके का गीत गाओ। बारह महीनों बारह ऋतु वापस अयेंगी जिस प्रकार खलिहान में बैल चक्कर काटते हैं। मुझ अभागिन के लिए तो आई न आई, मेरे लिए तो कोई भी नहीं आई। बसन्त के महीने सब के भाई अपनी बहिनों को भेंटने के लिए आयेंगे। बड़ी तथा छोटी बहिनें मिलकर गीत गायेंगी, गले लगेंगी और प्रवास वेदना को भूलेंगी। मायकेवालों के भेजे हुए कपड़ों का जोड़ा पहिनेगी किस प्रकार सौन्दर्य दिखायेंगी। लठ्यालि में यदि मेरा कोई भाई होता तो कलेऊ लाता और सखियों के दिए हुए पैणे को वापस करवाता। ५।

(२)

गंगास्तुति

तुम्हारी धारा स्या कनि छ जननी हे अति भली।
जईंका दर्शन तैं मिटदन हमारा दुःख सभी।
मुनी वो महात्मा भजदन सदाने तुम सणि।
कनी तू है गुंगे ! हरदि तौं का ताप सबही। १।
तुमी कू हे माता ! तपि करिके लै छौ स्वरग ते।
भगीरथ राजा पितर अपणा तारण कू थैं।
छुटी धारा तेरी शिवजी कि जटा ते निरमलऽ।
पहाड़ूँ पहाड़ूं बिच बसिकऽआई रथ पिछैं। २।
दिने तो तू घूंटी चलादि पथ माँ जह्नु ऋषि नऽ।
पती नागुं को त्वै यम्पुरि कु ली बासुकि गए।
महा भारी भक्ती नृप नऽतव तेरी करि छई।
प्रसन्ना तुष्टा ह्वै तब दरश दीन्यौ भगीरथ कूं। ३।
पहुँचाया सीधा पितर वै का स्वरग कूं।
छई ह्वेंदी गगै पतितूँ भुगती पाप हरणी।
छऽमैंमा तेरी भी अनुपम बड़ी ख्यात जग माँ।
रंऽदी तू हे गंगेनितहि सिर माथे शिवजिका। ४
लगैंदे माँ मैरी अब डुबदि नौका पार जल्दी।
छऊं तेरा शरणागत अधम पापी अति बुरो।
तू दे माता तारी विपद दुःख रूपी भंवर ते।
मिलाई दे मैकू सदेई दिदि मेरी भगवती। ५

यह छन्द भी सदेई पुस्तक से ही लिए गए हैं। सदेई को स्वप्न में दिखाई देता है मायके में उसका भाई पैदा होकर युवक भी हो गया है और उससे भेंटने के लिए प्रस्थान करके गंगा तट पर पहुँच गया है तथा गंगा के उस बार पहुँचा देने के लिए प्रार्थना कर रहा है। इन छन्दों में भी कवि ने मात्रा पूर्ति के लिए भाषा को बहुत तोड़ा मरोड़ा है और ह्रस्व दीर्घ का ध्यान नहीं रखा है।

शब्दार्थ—स्या—वह (स्त्री लिंग)। कनि—कैसी। जई—जिस, शुद्ध रूप 'जें' है। मिटदन–मिटते हैं। वो–व का मात्रा पूर्ति के लिए वो किया गया है। सदाने—सदैव। सणि–को। हरदि–हरती है यहाँ दी होना चाहिए। तौं (दृष्टिगत) —उनको। कू—को। तपकरिक-तप करके। लैंछो – लाना था। स्वरग ते—वेद लोक से। कूं थैं – के लिए। छुटो – छूटी। धरिक - धरकर। पिछैं – पीछे।

दिनै—दी। घूँटी—घूँटना। चलदि – चलती है। यहाँ भी दी होना चाहिए)। माँ—मैं। न – ने। पती – पति। नाँगूँ=नागो। त्वै – तुझे। ली गए – ले गया। करि छई — की थी। ह्वै=होकर। दीन्यो – दिया। वैका – उसका। छई देंदी (देंदी छई) – देती रही हो। यहाँ छई के स्थान पर छै होना चाहिए था। पतित्तों—पापियों। मुगति = मुक्ति। मैंमा—महिमा। रंदी=रहती है। लगै दे—लगा दे डुबदि=डूबती हुई। (यहाँ भी दी दीर्घ होनी चाहिए)। छऊँ=हूँ। तारी—तार। मिलाई—मिला। मैंकू=मुझको। सदेई=युवती का नाम। दिदी या दीदी बड़ी बहिन।

हिन्दी भाषान्तर :--हे माता तुम्हारी यह धारा कैसी भली है जिसके दर्शन से हमारे सब दुःख मिट जाते हैं। मुनि और महात्मा तुमको सब भजते हैं। तू किस प्रकार उनके सभी ताप हर देती है।१। हे माता! तुमको स्वर्ग से अपने पित्रों को तारने के लिए राजा भगीरथ तप करके लाया था। तुम्हारी निर्मल धारा शिवजी की जटा से छूटी और पहाड़ों पहाड़ों के बीच घुसकर रथ के पीछे आई। २। जह्नु ऋषि ने रास्ते में चलती हुई तुझको घूँट लिया। नागों का पति बासुकी तुझे यमपुरी को ले गया। तब राजा ने तेरी बहुत अधिक भक्ति की थी। प्रसन्न और तुष्ट होकर तूने भगरथी को दर्शन दिए। ३। उसके पित्रों को सीधा स्वर्ग पहुँचाया। हे गंगे! पाप हारिणी तुम पापियों को मुक्ति देती हो। तेरी अनुपम महिमा भी बहुत अधिक प्रसिद्ध है। हे गंगे! तू सदैव शिव जी के भाल पर रहती है। ४। हे माँ! तू मेरी डूबती नौका को शीघ्र पार लगा दे। मैं बुरा अधम पापी तेरे शरणागत हूँ। हे माता! तू मुझे दुःख रूपी भंवर से तार दे। हे भगवती! मेरी सदेई बहिन को मुझ से मिला दे।

चन्द्रधर बहुगुणा (गढ़वाली गीतावली से)

(१)

डोटियाल

अभागी छोड़ी कऽअपणु घर और देश सणि तू।
कनै औंदी, क्या धों घरिदि मनमाँ आश सणि तू।
उहौंदो मारो छै, कण कणिक तै बाट चलदी।
खरी खोठी पौंदी पर जिकुड़ि तेरी नी दुःखदी। १।
फटीं गाती पैरी कमर कसिकि तें तु पटुवा।
अगैला की चाटी तख पर कमी लेकि बटुआ।
लंगोटी गाढ़ा की पहिरि इकली टोपि कसिली।
कड़ी कंगाली को सच बणदि तू स्वाँग असली। २

लगों मैला की क्या छन तरक तेरा बदन माँ ।
छुचा । थोड़ा भी त्वैं सणि नि लगदी घीण मन माँ ।
विरागी ह्वै गै क्या समझि दुनियाँ कू तू सुपनो ।
कभी अंक्वैकी मुख तक नि धोंदो तू अपणो । ३
दुगड्डा ते पांपी चल पड़दि तू चार मण को ।
उठैकी तैं बोझो पर नि करदो ध्यान तन को ।
चबै का पैसा का मजल चलदी तू बस चणा ।
कनै ज्यूँदो छै तू कख धरि रई प्राण अपणा । ४
चढ़ाई द्वारी की फिर करकरी गारि तख माँ ।
लग्यूँ होवो भारी अति चड़चड़ो घाम खज माँ ।
बथौं भी न हो वो तड़फड़ मची हो जगत माँ ।
कुजाणे तेरी क्या गत बणद दौं वे बगत माँ । ५
थक्यूँ प्यासो पाणी जब ढुंडदि तू आश धरि की ।
निपाँदों पेणू कू फिर कभी घीत भरिकी ।
तु पौंदी लोगो की सिरफ धमकी जांदि जख भी ।
सची त्वेकू तऽरे ! अब हरिचि गै मौत तक भी । ६
कभी हाँपी हाँपी, सुण, धरिद तू पैर अगिनै ।
कभी माथो टेकी छण भर बिसौंदी थकि सणै ।
मिटौंदी सारा तू दुख सणि कभी आह भरि की ।
कमौंदो छै पैसा तन बदन कु चूर करि की । ७
इनो त्वै देखी की कलि कलि बतौ कैत लगदा ।
न तेरा दुःखों की दलन कभी कोई दैव करदा ।
सदा पाणों होलौ करम फल औ करणि को ।
अभागी को क्वी नी बणदु खिवैया तरणि कौ । ८

यह छन्द बोझा ढोनेवाले पहाड़ी डोटियाल का वास्तविक चित्र है । अत्यन्त मर्मस्पर्शी ढंग से लिखा गया है । डोटियाल पश्चिमी नेपाल के अत्यन्त दरिद्र लोग होते हैं जो काठगोदाम, नैनीताल दुगड्डा लैन्सडौन आदि पहाड़ी स्थानों पर बोझ ढोने का काम करते हैं उनकी शब्दातीत दरिद्रता वही जान सकते हैं जिन्होंने नैनीताल के मोटर स्टड पर उन्हें खड़ा देखा है । अथवा दुगड्डा से पौड़ो चालीस मील की पैदल यात्रा में दो मन का बोझ सिर पर लादे जाते हुए देखा है ।

इस छन्द में भी व्याकरणीय नियमों का पालन नहीं किया गया है । अतः शब्दों के रूप अनिश्चित हैं । ह्रस्व और दीर्घ का भी ध्यान नहीं रखा गया है ।

शब्दार्थ :—छोड़ीक—छोड़कर । अपणों—अपना । सणि—को । कनै—कैसे । औंदी—आते हो । धरिदि=धरते हो । यहाँ भी दि के स्थान पर दी होना चाहिए । माँ—में । उठौंदी—उठाता है । भारी—बोझ । कणकणिक—कष्ट के समय मुख से निकला हुआ निरर्थक शब्द । तैं—से । चलदी—चलता है । पौंदी=पाता है । जिकुड़ि—हृदय । गाती—शरीर का वस्त्र । पट्‌खा—कमरबंद । अगेला—लोहा और चकमक पत्थर के रखने का थैला ताकि दियासलाई के अभाव में आग पैदा की जा सके । चाटी—लोहे का टुकड़ा । लेकि—लेकर । छकली टोपि—मोटी दुपल्ली टोपी । टोपि के स्थान पर टोपी होना चाहिए । कसली—कस ली है । बणदि—बनता है । छन—हैं । तरक—धारायें । छुचा !—अरे ! त्वे सणि—तुझको । लगदी—लगती है । घीण—घृणा । ह्वै गै—हो गया । कू—को । सुपनो—स्वप्न । अंवचैकी—अच्छी तरह । धौंदी—धोता है । दुगड्डा—कोटद्वार से दस मील पहाड़ की ओर एक स्थान है जहाँ से मौड़ी जाने के लिए पहले लोग कुली किया करते थे । चार मन अतिशयोक्ति है । किन्तु डेढ़ दो मन तक वे उठा लेते हैं । उठै की तैं=उठाने के पश्चात् । निकरदौ=नहीं करता । मजल—दिन भर की यात्रा । चणा—चना । कनै—कैसे । ज्यूँदी—जिन्दा । छै—है । कख—कहाँ । धरि रईं—धरे हुए हैं । द्वारी—एक स्थान जो दुगड्डा से ११ मील की दूरी पर है । और वहाँ पहुँचने के लिए भारी चढ़ाई चढ़नी पड़ती है । करकरी—पैरों में चुभने वाली । भारी—कंकड़ । तख माँ—उस रास्ते पर । डोटियालों को जूता नसीब नहीं होता । लग्यूँ होव—लगा होवे । चड़चड़ी—झुलसा देने वाला । बथौ—हवा । कुजाणें—कौन जाने । गत—दुरवस्था । बणदा—बनती है । दौं—धौं (अनिश्चय सूचक शब्द) । बगत—वक्त । थक्यूँ—थका हुआ । पाणी—पानी । ढुंडदि—ढूंडता है । धरि की—धर कर । यहां भी 'की' के स्थान पर 'क' होना चाहिए था । निपौंदी—नही पाता है । पेणू कू—पीने को । धीत—तृप्ति । भरिकी—भरकर । पौंदी—पाता है । जांदी—जाता है । जख—जहाँ । सची—सचमुच । त्वैकू तैं—तुझे । हरचिगे—खो गई है । हांपी—हांपकर । सुण—सुन । धरिदी—धतरा है । अगिनै—आगे को । माथो टेकी=माथा टेक कर । बिसौंदी=विश्राम लेता है । थकि सणि=थकावट को । मिटौंदी=मिटाता है । कमौंदी छै=कमाता है । इनो=इस प्रकार । क़लक़ली=दया । बतौ=बताओ । कै=किसको । लगदा=लगती है । क्वी=कोई । करदा=करता है । पाणो होलो=पाना होगा । करणि=करणी, भाग्य । वणद=बनता है । खिवैया=खेने वाला । तरणि=नाव ।

हिन्दी भाषान्तर:—अभागे ! तू अपने घर और देश को छोड़कर किस प्रकार आता है । न जाने किस आशा को तू मन में रखता है । तू बोझ उठाता है

और वेदना का शब्द मुँह से निकालते हुए रास्ते चलता है। बुरी भली सुनता है पर तेरा हृदय नहीं दुखता (१) तू फटे वस्त्र पहनकर और कमर में फेंटा कसकर, आग प्रकट करने के लिए लोहे की टुकड़ी रखे हुए, कभी उसी को बटुवा बनाकर, गाड़े की लंगोटी पहनकर, मोटी दोपल्ली टोपी कस लेता है। उसी समय तू घोर कंगाली का वास्तविक रूप बन जाता है (२) तेरे शरीर पर मैले की धारायें हैं। अरे! तेरे मन में थोड़ा भी घृणा नहीं आती। संसार को स्वप्नवत समझकर क्या तू वैरागी हो गया है? तू कभी अच्छी तरह मुंह तक भी नहीं धोता। (३) हे पापी! तू दुगड्ड से चार मन का बोझ लेकर चल पड़ता है। बोझ उठाने के पश्चात् तू शरीर का ध्यान नहीं करता। एक पैसे के चने चबाकर तू दिन भर की यात्रा पूरी करता है। तू कैसे जीवित रहता है? तूने अपने प्राण कहाँ छिपा रखे हैं? (४) द्वारी की चढ़ाई हो और तिसपर पैरों मे चुभने वाली तीखे कंकड़ शरीर को झुलसाने वाली तेज धूप हो। हवा भी न चल रही हो। ससार में तड़पन मची हो उस समय कौन जाने तेरी क्या दुरावस्था होती है। जब थका प्यारा तू आशा धारण कर पानी ढूंढ़ता है तो कभी तृप्ति के साथ पीने को नहीं पाता। तू जहाँ भी जाता है वहां लोगों की धमकी ही पाता है सचमुच तेरे लिए तो अब मृत्यु भी खो गई है। कभी हांफ हाँफ कर तू डग आगे बढ़ता है। कभी माल के सहारे क्षण भर अपनी थकावट को दूर करने के लिए विश्राम लेता है। कभी आह भरकर ही अपने सारे दुःख को मिटाता है। तन बदन को चूर चूर कर पैसा कमाता है। तुझे ऐसा देखकर बता किसको दया आती है? तेरे दुःखो का दमन कोई देवता भी नहीं करता। जो करनी का फल है वह तो सदा पाना ही होगा। अभागे की नाव का खिवैय्या कोई नहीं बनता।

भवानीदत्त थपलियाल—प्रहलाद नाटक से

(१)

भाई विरादर यार सखा सब छोटा बड़ा टक लाइ सुणा।
दुनिया दुरंगी कि ढकढ्याँदी ढुंगि माँ चढ़ि जंगवंगि ते प्राण निखोणा।
जमीन, जागा, जर, जोरू, खगा सब घाला दगा संग क्वी नी हूणो।
याँ ते भवानी भजन हरि ठानी सदानिकु खोणा ये स्वीणा को रूणो।।

इस छन्द में प्रहलाद संसार के सम्बन्धों को असत्य बताकर भगवान भजन की शिक्षा दे रहे हैं। इस छन्द में भी शब्दों के रूप स्थिर नहीं हैं। ह्रस्व और दीर्घ का मात्रा पूर्ति के लिए ध्यान नहीं रखा गया है।

शब्दार्थ :—टक लाइ—ध्यान से। सुणा—सुनो। ढकढ्यांदी—अस्थिर। हिलती हुई। ढुंगी—छोटा पत्थर। चढ़ि—चढ़कर। जंगवंगी—उन्मत्तता। खूणों—खोना।

सगा—सम्बन्धी। घाला—देंगे। क्वी—कोइ। हूणों—होगा। यांते—इससे। खदानी कु—सदैव के लिए। खुणा—खोना है। स्वीणा—स्वप्न। रूणो—रोना।

हिन्दी भाषान्तर :—भाई बिरादर मित्र, सखा सब छोटे बड़े ध्यान देकर सुनो दुरंगी दुनिया के हिलते हुए पत्थर पर उन्मत्तता से पैर रखकर प्राण नष्ट न करना। (दुनिया अविश्वसनीय है)। यहां पैर रखने की जगह भी निश्चित नहीं है। जमीन जगह स्त्री सम्बन्धी सब धोखा देंगे। कोई साथ नहीं होने का। इसलिए भवानी कवि कहता है कि हमने हरि भजन की ठानी है अब स्वप्न का रोना सदैव के लिए नष्ट कर देना है।

(२)

अलो ! तू विजय छै बड़ो भक्त हमारो वैकुण्ठवासी छयो प्राणप्यारो।
पर करा तुमनऽबामणों को सामणो यां ते छ तुमको असुरयोनि घुमणो।
जो कोई बामण को अपमान करदा वही लाख चौरासी योनि विसरदा।
बामणों न तुम पर यह कृपा करै सिरप तीन योन्यो उद्धार ठैरे। १
अब कुम्भकर्ण वो रावण तुम ह्वैला तब राम हम ह्वैक तुम मारिद्यूंला।
जरासंध वो कंस तुम अन्त ह्वैला तब तुमको हम कृष्ण ह्वै तार द्युंला।
कथा जब हमारी या होली पुराणी कलयुग मां धौलो 'भवानी' बखाणी।
सुणी भणि क लीला कथा या हमारी संसारि सुख पाला वो पारिवारी।

भगवान् हिरण्यकशिपु को मारते समय उसे उसके पूर्व जन्म की याद दिला रहे हैं कि तुम जय और विजय दो भाई थे ब्राह्मणों के अपमान से दैत्य योनि को प्राप्त हुए।

शब्दार्थ :—अलो ! = हे ! छै = हो। छयो = था। सामणो = सामना। यां ते = इससे। घूमणों = घूमना। करदा = करता है। विचरदा = विचरण करता है। यो = यह। करे = की। योन्यों = योनियों। ठहरे = निश्चय किया। ह्वैला = होगे। ह्वैक = होकर। मारियूंला = मार देंगे। ह्वै = होकर। या = यह (स्त्री लिंग)। होली = होगी। पुराणी = पुरानी। द्युंली = देगा। सुणीभणि = सुन और कहकर। पाला = पाएंगे। परिवारी = परिवारवाले।

हे विजय ! तू हमारा बड़ा भक्त है। प्राण प्यारा वैकुण्ठवासी था किन्तु तुमने ब्राह्मणों का सामना किया इसलिए तुमको असुर योनियों में घूमना है। जो कोई ब्राह्मण का अपमान करता है वही चौरासी लाख योनियों मे विचरता है। ब्राह्मणों ने तुम पर यह कृपा की है कि तीन योनियों में उद्धार का निश्चय किया है। अब तुम कुम्भकरण और रावण होगे तब हम राम होकर तुमको मार देंगे। अन्त में तुम जरासन्ध और कंस होगे तब तुमको हम कृष्ण होकर तार देंगे। जब हमारी यह

कथा पुरानी हो जाएगी कलियुग में भवाती कवि वर्णन कर देगा। हमारी इस कथा को सुनकर तथा कहकर ससारी तथा परिवार वाले सुख पाएंगे।

बारहमासा—ग्रामीण के मुख से

चैतऽका मैना दिशा भेंट होली।
तेरी बेटुलि ब्वै ! डबऽडबऽरोली। १।
बैसाख मैना कौथिगऽ हुरैलो।
बिना स्वामी मैं व्वै ! जिकुड़ी झुरौंली। २।
जेठ का मैना बुति जालो कोदों।
मेरा खेतों व्वै ! को बूति आलो। ३।
आषाढ़ मास कुएड़ी लगऽली।
बिना स्वामी रत्ता कनिकै कट्यैली। ४।
सौण का मैना कूड़ो चुआँलो।
जो पाणी भैरऽ ! मितरऽ भी होलो। ५।
भादौं का मैना संगराद आली।
मेरो को छ ब्वै ! घयू कैथैं द्यूँली। ६।
अनुज मास सरदा दियेला।
पितरऽ हमारा टुक टुक चाला। ७।
कातिक मास वग्वाल आली,
स्वामी जैंको घरऽ पक्वड़ा बणाली। ८।
मंगसीर बैख ब्वै ! ढाँकर जाला।
मर्च बिकैक लूण गूड़ ल्याला। ९।
पूस का मैना जड्डो छ भारी।
बिना स्वामि होली दुर्भागी नारी। १०।
मउमास बिच ब्वै मकरैण आली।
भाग्वान् छैं जो हरिद्वार जाली। ११।
फागुण मैना होली ख्यलेली।
गीत सुणी क जिकुड़ो जळली। १२।
आली जाली सबथैं रिझाली।
दुर्भागि मैं कूँ आली नि आली। १३।

इस बारहमासा को कोई विधवा युवती जिसके घर में कोई नहीं है अपनी माँ को सम्बोधन करके गा रही है। वह अपने सूनेपन का विचार करके दुःखी हो रही है। भाषा का स्वरूप इसमें भी निश्चित नहीं है।

शब्दार्थ:—मैना = महीने । दिशा भेंट = लड़की के मायके का बाजा बजानेवाला ईनाम मांगने के लिए चैत के महीने लड़की के ससुराल जाया करता है इसे दिशादान कहते हैं। लड़की दिशा कहलाई जाती है। बिटुली = बेटी। ब्वै = मां। डबडब = आखों से आंसू की बड़ी-बड़ी बूंदें गिरना। रोली = रोयेगी। कौथिग = यह शब्द कौतुक से बना है, पहाड़ में इसका अर्थ मेला होता है। हुरेलो = उमड़ेगा। जिकुड़ी–हृदय। झुरौंली — दुःखी करूंगी। बुतिजालो — बूता जाएगा। कोदो— मंडवा (अनाज)। को — कौन। कुएड़ी — कोहरा। लगली — लगेगी। रत्ता — रातें। कनिकै — किस प्रकार। कटेली — काठीजाएंगी। कूड़ो — मकान। चूअंलो — टपकेगा। पाणी — पानी। भेर — बाहर। भितर — भीतर। होलो — होगा। संगरौद—संक्राति। पहाड़ों पर सौर्य मास का प्रचार है अतएव संक्रातियों का बड़ा महत्व है। भाद्रपद की संक्राति को पहाड़ पर घिया संगराद कहते हैं। उस दिन प्रत्येक को घी अवश्य खाना चाहिए। छिउथ्यू घी। कैचौं— किसको। द्यूंली – दूंगी। सरऽदा –श्राद्ध। दियेला — दिए जायेंगे। टुकटुक चाला — दूर से झाकेंगे। चाणों का अर्थ देखना भी होता है। वग्वाल — दिवाली। जैंका – जिसके। पक्वड़ा — बड़ी पकौड़ियां। बणाली — बनाएगी। बैख — पुरूष। ढांकर — रामनगर, कोटद्वार, हलद्वानी आदि मंडियों को अपने कंधे पर मिर्च, हल्दी ले जाना और उनके स्थान पर नमक, गुड़ कपड़ा आदि खरीद कर घर लाना ढांकर कहलाती है। मर्च – मिर्च। बिकैकं = बेंचकर। लूण — नमक। ल्याला — लायेंगे। होलीं — होगी। मउ – माघ। मकरैण — मकरसंक्रान्ति। इस त्यौहार को प्रायः पहाड़ी लोग हरिद्वार नहाने जाते हैं। भाग्वान – भाग्यवान। छैं — हैं। जाली – जायेंगी। ख्यलेली – खेली जाएगी। सुणीक – सुन कर। थैं — को। जलेलो – जलेगी। रिजाली = रिझायेगी। आली निआली – आना न आना समान है।

हिन्दी भाषान्तर:—चैत के महीने बाजाबजानेवाले लड़की को भेंटने के लिए उसके ससुराल जायेंगे। हे माँ ! तेरी बेटी बड़े आँसू बहाएगी। वैशाख के महीने मेला लगेगा। पति के बिना मैं अपने हृदय को दुःखी करती रहूंगी। २। जेठ के महीने मंडुवा बोया जाएगा। हे माँ ! मेरे खेतों में कौन बो आएगा। ३। आषाढ़ के महीने कोहरा लगेगा बिना पति के रातें कैसे कटेंगी। ४। सावन के महीने मकान की छत टपकेगी जो जल बाहर वही भीतर भी होगा। ५। भाद्रपद के महीने घिया संक्राति आएगी हे माँ ! मेरा कौन है जिसको घी दूंगी। ६॥ क्वाँर के महीने श्राद्ध दिए जायेंगे। हमारे पितृलोग दूर से देखते रहेंगे। तात्पर्य यह है कि कोई श्राद्ध देनेवाला नहीं है। ७। कार्तिक के महीने दीपावली आएगी जिसके

घर में स्वामी हैं वह पकौड़ियां बनाएगी । ८ । मार्गशीर्ष में पुरूष ढाँकर जायेगे । मिर्च बेचकर नमक, गुड़ लायेंगे । ९ । पूष के महीने भयंकर जाड़ा है अभागिनी स्त्री हो बिना स्वामी के होगी । १० । माघ के महीने मकरसंक्रांति आएगी जो भाग्यशालिनी हैं वह हरिद्वार जायेंगी । ११ । फागुन के महिने होली खेली जाएगी । गीत सुनकर मेरा हृदय जलेगा । १२ । ऋतुएँ जायेंगी सब को प्रसन्न करेंगी मुझ अभागिनी के लिए आयेंगी या न आयेंगी अर्थात आना बराबर है ।

बयाधर भट्ट

गढ़वाली गीतावली से

उठा उठा हे गढ़ वीर भायो ।
कब थैं छुचो दीन बणीकऽरवैला ।
बन्दी समो क्या इनो भी दिख्यौलो ।
जब वीरता का डंका बजौंला ।१।
क्वी नीच माई संगी हमारो ।
खुट्टौन अपणा खड़ी होणा होली ।
बन्दी बणीतैं हे वीर बैखो !
संसार मां नाम कमौण होली ।२।
ऐ जा पगेता पक्का कखीक ।
गढ़वाल की लाज चला बचौला ।
बन्द भलो प्राण की बल चढ़ैक ।
संसार मां राड़तुरी बजौंला ।३।

इस छंद में गढ़वालियों को विदेशी शासन से मुक्त होने के लिए प्रोत्साहित किया गया है ।

शब्दार्थ:-राड़=तुरी बड़ी तुरही । तैं = तक । छुचो ! =अरे ! । वणीक =बनकर । र्‌वैला = रोओगे । समो=समय । किनो = इस प्रकार । दिख्यौलो = दिखाई देगा । बजौंला = बजाएंगें । कुइ = कोई । खुट्टौना = पैरों से । खड़ो हौण होलो = खड़ा होना होगा । वणी तै = बनकर । बैखो = पुरुषो । कमौण होलो = कमाना होगा । ऐ जा । व्याकरण का दोष है, बहुवचन में मेंजा के स्थान पर जावा होना चाहिए । पगेता – कमरबंद कसीक – कसकर । बचौंला — बचाएंगे ।

हिन्दी भाषान्तर:— हे गढ़वाल के वीर भाइयो ! उठो उठो कब तक दीन बनकर रोओगे । बंदी कवि कहता है कि कभी ऐसा भी समय दिखाई देगा जब वीरता का डंका बजाएंगे । भाइयो ! हमारा कोई साथी नहीं है अपने पैरों पर

खड़ा होना पड़ेगा। हे वीर पुरूषों! बन्दी बनकर संसार में नाम कमाना होगा। दृढ़ता से फेंटा कस कर आ जाओ। चलो गढ़वाल की लज्जा बचायेंगे। बन्दी कवि कहता है कि इस सुन्दर जीवन को बलि चढ़ाकर संसार में तुरही बजायेंगे। अर्थात् संसार को अपने स्वर से गुंजा देंगे।

शालिग्राम वैष्णव–गढ़वाली पखाणा (लोकोक्ति)

१. अकल को टप्पू, मुंड माँ बोदगी घोड़ा माँ अप्फू।
२. अस्वाण्या ब्वारी की कुराण्या बाच।
३. ओट्यो कात्यो चार हाथ, घाघरी फूकी बत्तीस हाथ।
४. अंग्रेजौ राज, गत्यूं कपड़ा न पेट को नाज।
५. काणसा बटि, खओणो, जेठा बटि बेओणो।
६. कितलो कऽर सर्पकी सऽर छुच्चो कितलो ताणि ताणि मऽर।
७. गुण को मार्यूं, हेरो उंद, थप्पड़ को मार्यूं हेरो उब्ब।
८. ह्यूंद हिंवाल, रूड़ी पयाल।
९. हुस्याली मौ ह्वँ जाव हिंस्याली मौ हरचि जाव।
१०. लूट नी जाणदी भौ झूट नी जाण दो न्यौ।

शब्दार्थ :—

१. को—का। टप्पू – हीन। मुंऽमाँ—सिर पर। बोदगी—गठरी। माँ—पर। अप्फू = आप।
२. अस्वाण्या—नापसन्द। ब्वारी—बघू। कुराण्या—कर्कश। बाच – आवाज।
३. ओट्यो – धुना। कात्यो – काता। घाघरी – लहंगा। फूकी–जलाई।
४. अंग्रेजौ – अंग्रेज का। गत्यूं–शरीर के लिए।
५. काणसा—छोटा। बहि—से। खभोणो—खिलाना। जेठा—बड़ा। बेओणो—विवाह करना।
६. कितलो—केंचुआ। सऽर। छुच्चो—बेचारा (यहाँ मूर्ख से तात्पर्य है)। ताणि ताणि–खिच खिच कर।
७. मार्यूं—मारा हुआ। हेरो—देखे। उंद—नीचे को। थप्पड़—चाँटा। उब्ब–ऊपर को।
८. ह्यूंद—शीतकाल। हिंवाल—हिमालय। रूड़ी—ग्रीष्म ऋतु। पयाल—मैदान।
९. हुस्याली—प्रतियोगिता करने वाली। मौ—कुटुम्ब। ह्वँ—हो। जाव–जावे हिंस्याली–ईर्ष्या करने वाली। हरचि—नष्ट।
१०. जाणदी—जानती है। भौ—भाव। नी—नहीं। न्यौ—न्याय।

उपर्युक्त लोकोक्तियों मे चिरकाल के सामाजिक अनुभव छिपे हुए हैं। हिन्दी की अपेक्षा मध्य पहाड़ी में लोकोक्तियों का बहुत अधिक प्रचार है। श्री शालिग्राम वैष्णव ने इन गढ़वाली भाषा की लोकोक्तियों को गढ़वाली परवाणा (प्रकथन) के नाम से संग्रहीत किया है।

हिन्दी के भाव—

१. अक्ल का हीन व्यक्ति सिर पर गठरी रखे घोड़े पर सवार रहता है अर्थात निरर्थक कार्यभार अपने ऊपर लेना।

२. नापसन्द वधू की आवाज में कर्कशता ज्ञात होती है। अर्थात् जो वस्तु पसन्द नहीं आती उसमें अकारण दोष निकालना।

३. चार हाथ कपड़े के लिए रूई को औटा-काता और बत्तीस हाथ का लहंगा जला दिया। अर्थात काम कम और हानि अधिक।

४. अंग्रेजों के राज्य में न शरीर के लिए कपड़ा न पेट के लिए भोजन। विदेशी सरकार की बुराई बतलाई गई है।

५. खिलाना छोटे से आरम्भ और विवाह बड़े से आरम्भ करना चाहिए। भोजन और विवाह करने का नियम बताया गया है।

६. केचुआ सर्प की बराबरी करे तो तुच्छ केंचुआ खिच खिच कर मरे। छोटा आदमी इर्ष्यावश बड़े की बरावरी करने का प्रयत्न करे।

७. गुणों का मारा हुआ नीचे को देखता है और चाँटा खाया हुआ ऊपर को देखता है। अर्थात भलाई से मनुष्य वश में होता है। शक्ति प्रयोग से वह और भी अकड़ता है।

८. वर्षा जाड़े में हिमालय से और गर्मियों में मैदान से आती है। इसमें मान· सूनों का सुन्दर अनुभव निहित है।

९. प्रतियोगिता वाला कुटम्ब उन्नति करता है इर्ष्यावाला कुटम्ब नष्ट हो जाता है। तात्पर्य यह है कि अपने से बड़े के समान बनने का प्रयत्न करना चाहिए उससे इर्ष्या नहीं करनी चाहिए।

१०. लूट भाव नहीं जानती और झूठ न्याय नहीं जानती। अर्थात लूट करते हुआ बालु का भाव नहीं पूछा जाता और झूठ बोलने में न्याय का ध्यान नहीं रखा जाता।